वेद पथ

ॐ

सम्पादक ठाकुर अमर सिंह

विरजा नन्द वैदिक संस्थान

११. पूसा रोड, नई दिल

ओ३म्

इस मास 'वेदपथ' में क्या मिलेगा

गुरुमन्त्र गायत्री (सावित्री)	४	
गायत्री मन्त्रार्थ गायन—कविता	५	अमरसिंह "अमर" आर्य पथिक
उन्नति का क्रम	६	श्री पं० जगत कुमार जी शास्त्री
वेद में काल विभाग	६	अमरसिंह जी आर्य पथिक
उठो देश के आर्य नरो—कविता	१३	कुमार जोरावरसिंह जी वरसाना
क्या प्रत्येक वेदमन्त्र में ओ३म् लगाना निहित है	१५	आचार्य सशिवपूजनसिंह कुशवाहा
अग्नि होज पद्धति	२१	
अष्टादश पुराणों पर नूतन आलोचनात्मक दृष्टिकोण	२४	श्री भवानीलाल जी एम० ए०
वेद भारत के—सभी संसार के हैं—कविता	३४	श्री भैरवदत्त शुक्ल
प्राचीन मधुरसपुरी (मथुरा)	३६	प्रो० महेशस्वरूप भटनागर एम० ए०
कुरआन शरीफ का वास्तविक स्वरूप	४४	पं० वेदप्रकाश जी
साहित्य समीक्षा	४८	सम्पादक—वेदपथ

वेदपथ मासिक के नियम

१. वेदपथ-मासिक भारतीय मास के दिनांक १५ को डाक में डाला जाता है।

२. वार्षिक शुल्क ६) अग्रिम मनीआर्डर से आना चाहिये वी० पी० से ८५ पै० अधिक लग जाते हैं तथा वी० पी० करने में हमको भी कठिनाई होती है। एक अंक का मूल्य (विशेषांक को छोड़कर) ५५ पैसे है।

३. लेख संक्षिप्त तथा प्रधानतया किसी समस्या के वैदिक समाधान परक होने चाहियें।

४. लेख सम्पादक तथा ग्राहक बनने के लिये धन एवं विज्ञापन सम्बन्धी पत्र प्रबन्ध-कर्ता जी के नाम आने चाहियें।

५. ग्राहकों को पत्रों में अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखना चाहिये।

वेदपथ के स्वयं ग्राहक बनिये तथा अन्यों को बनाइये

पता : वेदपथ-विरजानन्द वैदिक संस्थान गाजियाबाद (उ० प्र०)

* ओ३म् *

वेदपथ

(मासिक)

नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय (यजुर्वेद) कल्याण के लिये "वेदपथ" के बिना दूसरा कोई पथ नहीं है।

धर्म धारण कर "अमर" पद पाइये।
वेद पढ़िये "वेदपथ" अपनाइये ।।

वर्ष ४	मार्गशीर्ष (वैदिक नाम सहः) सम्वत् २०२२ वि० दिसम्बर, १९६५	अङ्क ३

ओं भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं
सुकृत दैव्यं जनम् ।
अग्नि मित्रं वरुणं सातये भगं
द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तेये ।।

ऋ० १०।६३।९

हम समय समय पर याद करें वीरों को और विद्वानों को।
सब पाप छुड़ाने वालों को, शुभकर्म कराने वालों को ।।
जलवायु अग्नि की विद्याओं को, ज्ञानों को विज्ञानों को।
जानें कल्याण निमित्त "अमर" यानों को और विमानों को ।।

अमरसिंह "अमर" आर्य पथिक

गुरुमन्त्र गायत्री (सावित्री)

ओ३म् । भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि ।
धियो योनः प्रचोदयात् ।।यजु० ३६।३

हे (भूः) सत्यस्वरुप ! प्राण ! सब जगत के जीवनाधार ! प्राण से भी प्रिय ! स्वयम्भू ! (भुवः) सर्वज्ञ ! अपान ! सर्वदुःखों से रहित ! जीवों के दुःख दूर करने वाले !! (स्वः) आनन्द ! ध्यान ! नानाविध जगत में व्यापक होके सबको धारण करनेवाले परमेश्वर ! (सवितुः) सर्व जगत के उत्पादक, सर्वैश्वर्य प्रदाता सकल संसार के शासक, सबको शुभ प्रेरणा देनेवाले (देवस्य) सर्व सुख प्रदाता कमनीय दिव्यगुणयुक्त आपके (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (तत्) उस जगत प्रसिद्ध (भर्गः) शुद्ध स्वरूप पवित्रता कारक, चैतन्यमय पापनाशक तेजको (धीमहि) हम धारण करें तथा ध्यान करें। (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) शुभ प्रेरणा करे। अर्थात् बुरे कर्मों से हटाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

हे परमेश्वर ! हे सच्चिदानन्दानन्त स्वरूप ! हे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव ! हे अज ! निरञ्जन ! निर्विकार ! हे सर्वान्तिर्यामिन् ! हे सर्वाधार जगत्पते ! सकल जगत के उत्पादक ! हे अनादे ! विश्वम्भर ! सर्वव्यापिन् ! हे करुणा वरुणालय ! हे निराकार ! सर्वशक्तिमान् ! न्यायकारिन् ! समस्त संसार की सत्ता के आदिमूल ! चेतनों के चेतन ! सर्वज्ञ ! आनन्दघन भगवन् ! क्लेश पराकृष्ठ ! कमनीय ! प्रभो ! जहां आपका जाज्वल्यमान तेज पापियों को रुलाता है, वहां आपके भक्तों, आराधकों, उपासकों के लिए वह आनन्द प्रदाता है, उनके लिये वही एक प्राप्त करने योग्य वस्तु है। उनके ज्ञान विज्ञान धारणा ध्यान की वृद्धि करके उनके सब पाप सन्ताप नाश कर देता है। परमाराध्य परमगुरो ! आप सदा पवित्र और उन्नति कारक प्रेरणा दिया करते हैं, हम आपकी शरण आये हैं, हमें भी पवित्र प्रेरणा दीजिये। आपही सबको सुमार्ग दिखाते हो हमें भी सुमार्ग दिखलाइये। हमें ऐसी प्रेरणा करिये कि जिससे हम

(शेष पृष्ठ १४ पर)

ओ३म्

गायत्री मन्त्रार्थ गायन

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो
देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।।

यजु० ३६।३

ओम् हो रक्षक हमारे सब गुणों की खान हो ।
अज अमर अद्वैत अव्यय विश्वविद्विद्वान् हो ।।
भूः सदा सब प्राणियों के प्राण के भी प्राण हो ।
आप हे जगदीश सब संसार के कल्याण हो ।।
भुवः सब दुख दूर करते आप कृपानिधान हो ।
स्वः सदा सुखरूप सुखमय, सुखद सुखधि महान् हो ।।
तत् वही सुप्रसिद्ध ब्रह्मन् ! वेद वर्णित सार हो ।
देव **सवितुः** सर्व उत्पादक व पालनहार हो ।।
शुभ **वरेण्यं** वरण करने योग्य भगवन् आप हो ।
शुद्ध **भर्गः** मल रहित भजनीय हो निष्पाप हो ।।
दिव्य गुण **देवस्य** दिव्य स्वरूप देव अनूप के ।
धीमहि धारें हृदय में दिव्य गुण गुण रूप के ।।
धियो यो नः वह हमारी बुद्धियों का हित करे ।
ईश **प्रचोदयात्** नित सन्मार्ग में प्रेरित करे ।।
बुद्धि का शुभदान दे अपनी शरण में लीजिये ।
"वेदपथ" का कर पथिक हमको "अमर" पद दीजिये ।।

[अमरसिंह "अमर" आर्य पथिक]

उन्नति का क्रम

श्री पं० जगतकुमार जी शास्त्री

व्रतेन दीक्षामाप्नोति, दीक्षायाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते ।।

यर्जु० १९।३०

शब्दार्थ—मनुष्य (व्रतेन) व्रत के द्वारा (दीक्षाम्) दक्षता को (आप्नोति) प्राप्त करता है। (दीक्षया) दक्षता से (दक्षिणाम्) दक्षिणा को (आप्नोति) प्राप्त होता है। (दक्षिणा) दक्षिणा से (श्रद्धाम्) श्रद्धा को (आप्नोति) प्राप्त होता है। (श्रद्धया) श्रद्धा से (सत्यम्) सत्य (आप्यते) प्राप्त किया जाता है।

भावार्थ—मनुष्य किसी उत्तम व्रत को ग्रहण करने के अनन्तर ही दीक्षा=दक्षता को प्राप्त होता है। दीक्षा के पश्चात् दक्षिणा को प्राप्त करता है। दक्षिणा से श्रद्धा=दृढ़ विश्वास की उत्पत्ति और वृद्धि होती है। श्रद्धा के द्वारा सत्य की प्राप्ति होती है। यह मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है।

प्रवचन

यदि मनुष्य उन्नति करना चाहता है, तो पहले वह भली प्रकार सोच-विचार करके अपने जीवन का कोई उत्तम लक्ष्य निर्धारित करे। क्या करना है ? क्या बनना है ? यह प्रथम सुस्पष्ट हो जाना चाहिए। जिस मनुष्य का कोई लक्ष्य ही नहीं है, वह तो अवश्य ही कुछ अर्थ कार्यों में फंसकर अपने समय, साधनों और सामर्थ्य का दुरुपयोग करेगा। तब वह अवनत होगा और हानि उठायेगा। यह एक निश्चित नियम है। अतः उन्नति के क्रम में मानव-जीवन का कोई लक्ष्य वा आदर्श अर्थात् अंतिम उद्देश्य सबसे पहले निश्चित किया जाये। वेद की भाषा में इस अन्तिम उद्देश्य के निर्धारण को ही व्रत-ग्रहण कहते हैं।

आदर्श का निश्चय तो हो गया। अब उस आदर्श की प्राप्ति का विधिवत् अनुष्ठान होना चाहिए। सीखो, समझो, साधनों का निश्चय करो। परि-स्थिति पर विचार करो। आवश्यक हो तो अवसर की प्रतीक्षा करो।

परन्तु अनुकूल अवसर होने पर भूल, चूक या देर न करो। अनुकूल परिस्थिति और अनुकूल अवसर तो होना ही चाहिए। यदि प्रतिकूलता हो, तो पहिले अनुकूलता प्राप्ति का प्रयत्न ही करो। छोटे से छोटे काम को भी पूर्ण संलग्नता, गम्भीरता, कर्त्तव्य-परायणता और उत्तरदायित्व की भावना के साथ करो। यह भी आवश्यक है। लक्ष्य उत्तम हो, साधन उचित हों, कर्त्तव्य से प्रेम हो, अनुकूल हो, विधि-विधान का पूर्णतया पालन हो।

आधे मन से, बिना जाने, बिना सोचे-समझे, आवश्यक साधनों के अभाव में, अनुचित समय पर, अनुचित स्थान पर, अनुकूल परिस्थितियों के बिना ही किसी कार्य का आरम्भ करना उचित नहीं है। ऐसा करना तो एक प्रकार से दुःसाहस या अनधिकार चेष्टा ही है। इस प्रकार की चेष्टाओं का परिणाम तो मनुष्य को अपने सन्मान, समय और धन के नाश के रूप में अवश्य ही भोगना पड़ता है। मनुष्य जिस किसी भी काम को करे, पहले उसको करने की दीक्षा ले, गुरुजनों और सफलता-प्राप्त वृद्धों की सेवा करके, उनकी पूर्ण स्वीकृति लेकर, तब कार्य को आरम्भ करे। जब ऐसा होता है, तब विरोधों के खटके भी मिट जाते हैं और कर्त्तव्य पालन में मन भी खूब लगता है।

जो लोग भली प्रकार दीक्षा लेकर कार्य-क्षेत्र में उतरते हैं, वे बहुत शीघ्र ही अभीष्ट सफलताओं को प्राप्त कर लेते हैं। वे जिस किसी काम में भी हाथ डालते हैं, वही सफल हो जाता है। क्योंकि वे जानते हैं कि अमुक कार्य में, अमुक व्यवसाय में और अमुक स्थान पर, अमुक सफलता, अमुक प्रकार से प्राप्त की जाती है। ऐसे सभी लोग अपने-अपने कर्त्तव्य पालन के परिणाम स्वरूप नाना प्रकार के लौकिक लाभ प्राप्त करते हैं। रुपये-पैसे का अभाव उनको नहीं सताता। पेट की समस्या उनको तंग नहीं करती। वे निरन्तर ही एक-दूसरी, नई-नई सफलताओं की ओर बढ़ते ही रहते हैं। अपनी सूझ-बूझ और अपने परिश्रम के द्वारा वे मिट्टी को सोना बनाकर भी दिखला देते हैं। लोग रसायण-विद्या की बातें करते हैं। ध्येय-निष्ठा, कर्त्तव्य-परायणता, परिश्रम-शीलता, सत्यता और सद्भावना से बढ़कर रसायण-विद्या और कौन-सी है? संसिद्धि का आयोजन ही व्रत है, संसिद्धि का मार्ग ही दीक्षा है और संसिद्धि की प्राप्ति ही दक्षिणा है। दक्षिणा,

लाभ, प्रतिफल और परिणाम एक ही बात है।

जब कोई मनुष्य एक बार दक्षिणा को प्राप्त कर लेता है। तब वह दक्षिणा-प्राप्ति के नियमों पर दृढ़ विश्वास करने लग जाता है। उसका अनुभव उसके भावी आयोजनों में सहायक, पथ-प्रदर्शक और उत्साह वर्धक बन जाता है। वेद की भाषा में इस दृढ़-विश्वास प्राप्ति को ही श्रद्धा कहते हैं। श्रद्धा का यह भाव धीरे-धीरे मनुष्य के हृदय में परिपक्व हो जाता है और अपना एक विशेष स्थान बना लेता है। श्रद्धावान् मनुष्य का जीवन और व्यक्तित्व भी श्रद्धेय बन जाता है। जब मानव-जीवन छल-कपट-हीन और विश्वास के योग्य होता है, तब वह विशेष दक्षिणाओं को भी प्राप्त करता है।

हमारी श्रद्धा सचमुच श्रद्धा ही होनी चाहिए। किसी प्रकार की अन्ध-श्रद्धा, मूढ़-भावना, कूप-मण्डूकता वा अन्ध-विश्वास-परम्परा वह न हो। वास्तव में तो यह श्रद्धा ही वह अमोघ शक्ति है, जो मनुव्य को सब प्रकार की सफलतायें प्रदान किया करती है और अन्त में उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर भी पहुंचा देती है। मानव-जीवन के सर्वोच्च और अन्तिम लक्ष्य को ही वेद की भाषा में सत्य कहते हैं। सत्य को समझने वा समझाने के लिए भाषा का व्यापार तो होगा ही; परन्तु सत्य को किसी प्रकार के विशेषण की आवश्यकता नहीं है। विशेषणों से युक्त सत्य तो मिश्रित-सत्य होगा। मिश्रित-सत्य और असत्य एक ही बात है। सत्य तो बस सत्य ही होना चाहिए। सापेछ सत्य नहीं, विशुद्ध सत्य कहना भी ठीक न होगा। सत्य, बस सत्य।

क्या सत्य है ? और क्या सत्य नहीं है ? लोक में इस विषय में बहुत-से विवाद प्रचलित हैं। परन्तु वे सब वाक्शूर, वातूनी और मतल-सिन्धु लोगों की ही बातें हैं। जिन्होंने संयमी बनकर, नियमपूर्वक उन्नति की है, और अनुक्रमपूर्वक जीवन की उच्चतर-भूमिकाओं को अवस्थाओं को प्राप्त किया है, उनके लिए तो वादविवाद का कोई प्रसंग ही नहीं है। वे तो अपने-अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर ही सब कुछ यथावत् रूप में जानते ही हैं। ऐसे महामानव ही धर्मशास्त्र की भाषा में सिद्ध, तत्त्ववेत्ता, ऋषि. महर्षि और द्रष्टा आदि पदवियों से विभूषित किये जाते हैं।

वेद में काल विभाग

[ले० शास्त्रार्थ केसरी श्री पं० अमरसिंह जी आर्य पथिक]

"अहोरात्रे प्रजायेते, अथर्व० १०।८।२३

दिन और रात उत्पन्न होते हैं।

"अहो रात्राणि विदधत्' ऋ० १०।१९०।२

परमेश्वर ने दिन और रात्रि को बनाया।

३० दिन का मास (महीना)

त्रिंशद् धामा विराजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत् । प्रतिवस्तोरहर्द्युभि: ।। अथर्व० ६।३१।३ (सूर्य) तीस स्थानों पर शासन करता है (अर्थात् तीस राशियों पर प्रकाशित होता ३० दिन=एक मास बनता है)

दिन रात

तन्त्रमेके युवती विरूपे अभ्याक्रामं वयत: षण्मयूखम् प्रान्या तन्तूंस्तिरते धत्ते अन्या नाप वृञ्जाते न गमातो अन्तम् ।। अथर्व० १०।७।४२

दो विपरीत रूपों वाली युवतियाँ (काली गोरी) (रात दिन) छै खूटियों (छै ऋतुओं) पर ताना बाना बुन रही है।

१२ मास

"पितरं द्वादशाकृतिं" अथर्व० ९।९।१२

वर्ष को बारह आकृतियों बारह महीनों वाला कहा है।

अथर्व० ९।९।१३ में वर्ष को "द्वादशारम्" १२ अरों वाला कहा है।

वर्ष के १२ मास और ३६० दिन

द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि
नभ्यानि क उ तच्चिकेत ।
तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कव:
षष्टिश्च खीला अविचाचला ये ।।

अथर्व० १०।८।४

बारह प्रधियां (१२ मास) एक चक्र (एक वर्ष) (सूर्य के चारों ओर

पृथ्वी का एक चक्र ही एक वर्ष है) तीन नाभियाँ (मोटे-मोटे तीन ऋतु ४ मास सर्दी, ४ मास गर्मी, ४ मास वर्षा) हैं कौन उसको जानता है उसमें तीन सौ साठ खुंटियाँ लगी हैं ऐसे कील जो तनिक भी हिलने वाली नहीं हैं।

एक वर्ष में ७२० सात सौ बीस (अर्ध) दिन रात

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वर्ति
चक्रं परि द्यामृतस्य ।
आपुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्त
शतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ अथर्व० ६।६।१३

बारह अरों वाला वह पुराना होने के लिए नहीं वह ऋतु का चक्र आकाश के चारों ओर घूमता है। हे अग्ने ! (विद्वान् !) उस पर जोड़े (दिन रात) सात सौ बीस ठहरे हुए हैं।

१२ महीनों के नाम

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहा इषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहा ऽहसस्पतये स्वाहा ॥ यजु २२।३१

मधु=चैत्र माधव=वैशाख, शुक्र=ज्येष्ठ, शुचि=आषाढ़, नभस्=श्रावण, नभस्य=भाद्रपद, सहः=मार्गशीर्ष, सहस्य=पौष, तपस्=माघ, तपस्य=फाल्गुण। वेद में यह १२ मासों के नाम हैं।

छै ऋतुओं के नाम

ग्रीष्मस्ते भूमे वर्षाणि शरद्धे-
मन्तः शिशिरो वसन्तः ।
ऋतवस्ते ,विहिता हायनी-
रहोरात्रे पृथिवि नो दुहताम् ॥
अथर्व० १२।१।३६

हे भूमे ! वर्ष को पूरा करने वाले ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, बसन्त, तेरे ये छै ऋतु जो नियम से आते हैं यह ऋतु तथा दिन रात ये हमारे लिए दूध अर्थात् सारे भोज्य पदार्थ देवे।

किस किस ऋतु के कौन कौन मास हैं वा कौन कौन से महीनों की कौन सी ऋतु है

१. मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू ॥ यजु० १३।२५ मधु और माधव (चैत्र बैशाख) बसन्त ऋतु ।
२. शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू ॥यजु० १४ ! ६ शुक्र और शुचि (ज्येष्ठ आषाढ़) ग्रीष्म ऋतु ।
३. नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू । यजु० १४ । १५ नभ और नभस्य (श्रावण भादों) वर्षा ऋतु ।
४. इषश्चोर्जश्च शारदावृतू ॥ यजु १४ । १६ इष और ऊर्ज (आश्विन कार्तिक) शरद् ऋतु
५. सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू ॥ यजु० १४ । २७ सह और सहस्य (मार्गशीर्ष पौष) हेमन्त ऋतु ।
६. तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू ॥ यजु० १५ । ५७ तप और तपस्य (माघ फाल्गुण) शिशिर ऋतु ॥

चार युगों के नाम

कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनम् आस्कन्दाय सभास्थाणुम् ॥ यजु० ३०।१८।

कृतयुग के लिए त्रेता के लिए द्वापर के लिए (आस्कन्दाय) कलियुग के लिए।

सृष्टि की आयु

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः । अथर्व ८।२।२१

हम ४३२ दश हज़ार सौ अर्थात् दश लाख के शून्य दें । ४३२००००००० चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष "अंकानां वामतो गतिः" के अनुसार २-३-४ को ४३२ इस प्रकार रखकर ००००००० सात शून्य दश लाख के रख दें यही सृष्टि की आयु है ।

२८ नक्षत्र

अष्टाविंशानि शिवानि अथर्व० १९ । ८ । २

ये अट्ठाईस कल्याण करने वाले हैं अर्थात् कोई नक्षत्र अशिव= अकल्याणकारी नहीं है सभी शिव हैं ।

२८ नक्षत्रों के नाम

सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु
भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा ।
पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो
भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥ २ ॥
पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्त
श्चित्रा शिवा स्वाती सुखो मे अस्तु ।
राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा
सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥ ३ ॥
अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढ़ा
ऊर्जं देव्युत्तरा आवहन्त ।
अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः
श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥ ४ ॥
आ मे महच्छतभिषग् वरीय
आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म ।
आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म
आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु ॥ ५ ॥

अथर्व० १९ । ७ । २-३-४-५

१ कृत्तिका २ रोहिणी ३ मृगशिरा ४ आर्द्रा ५ पुनर्वसु ६ पुष्य ७ आश्लेषा ८ मघा ९ पूर्वाफाल्गुणी १० उत्तरा फाल्गुणी ११ हस्त १२ चित्रा १३ स्वाती १४ विशाखा १५ अनुराधा १६ ज्येष्ठा १७ मूल १८ पूर्वाषाढ़ा १९ उत्तराषाढ़ा २० अभिजत् २१ श्रवण २२ श्रविष्ठा (धनिष्ठा) २३ शतभिषा २४ पूर्वा भाद्रपदा २५ उत्तरा भाद्रपदा २६ रेवती २७ अश्विनी और २८ भरणी ये २८ नक्षत्र हैं इनमें से अभिजित् को छोड़कर २७ का प्रयोग ज्योतिष में किया जाता है ।

इन्हीं में से चित्रा से चैत्र, वैशाखा से वैशाख, ज्येष्ठा से ज्येष्ठ, आषाढ़ा से आषाढ़, श्रवण से श्रावण, भाद्रपदा से भाद्रपद, अश्विनी से आश्विन,

(शेष पृष्ठ २३ पर)

उठो देश के आर्य नरो !

[श्री कुंवर जोरावरसिंह जी वरसाना (मथुरा)]

जाति वाद का प्रांत वाद का भय भारत से दूर करो।
उठो देश के क्रान्तिकारियों ! उठो देश के आर्य नरो ।।

जिसके कारण देश हमारा, भारत तेरह तीन हुआ,
अपना सब, वैभव गौरव खोकर के दीन मलीन हुआ,
पराधीन हो गया तभी वह, जब-जब भी स्वाधीन हुआ,
और आज का नहीं, रोग यह वर्षों का प्राचीन हुआ,
वह अनेकता रोग मिटाकर, देश जाति के कष्ट हरो।
उठो देश के क्रान्तिकारियो ! उठो देश के आर्य नरो।।

हुई राजनैतिक, सामाजिक क्रान्ति देश में लानी है,
उसी कांति की ज्वाला हमको घर-घर में सुलगानी है,
प्रांतीयता जातिवाद दो, उसके बीच जलानी है,
यों नव अर्जित स्वतन्त्रता को जयमाला पहनानी है,
मिटी रूढ़ियाँ निर्बलताएं तार देश को स्वयं तरो।
उठो देश के क्रान्तिकारियो ! उठो देश के आर्य नरो ।।

तू पंजाबी मैं मद्रासी उड़िया वह बंगाली है।
पड़ अज्ञान और भ्रम में क्यों यह दीवार बना ली है।
एक वृक्ष है यह भारत हर प्रान्त उसी की डाली है।
डाली नहीं वृक्ष सारे की करनी अब रखवाली है।
यह स्वर्गीय भाव फैलाते सारे भारत में विचरो।
उठो देश के क्रान्तिकारियो उठो देश के आर्य नरो ।।

मैं हिन्दू हूँ वह मुस्लिम है, वह सिख है वह ईसाई,
मैं ब्राह्मण हूँ वह क्षत्रिय है वह बनिया है वह नाई,
भेद भाव की नीच भावना, क्यों यह तुमने फैलाई ?

ऋषियों की सन्तान सभी हम, अलग नहीं सब हैं भाई,
आज देश में भारतीयता के वे ऊँचे भाव भरो।
उठो देश के क्रान्तिकारियो ! उठो देश के आर्य नरो।।

किसी राष्ट्र की सच्ची शक्ति, नहीं होती उसके धन में,
उसके हाथी घोड़े सेना टैंकों में मशीन गन में,
उसके विशाल भूभागों में, उसके उठते यौवन में,
उसकी सच्ची शक्ति निहित है, उसके सुदृढ़ संगठन में,
उसी शक्ति के लिए जियो तुम, और उसी के लिए मरो।
उठो देश के क्रान्तिकारियो ! उठो देश के आर्य नरो।।

तुम्हें शपथ है दयानन्द की, गाँधी और जवाहर की,
तुम्हें शपथ है भारत माँ की, और हिमालय गिरिवर की,
तुम्हें शपथ है सुभाष बाबू और वीर सावरकर की,
तुम्हें शपथ है कबीर नानक, महावीर तीर्थंकर की,
जाति प्रान्त के भाव मिटाने में जो पीछे पैर धरो।
उठो देश के क्रान्तिकारियो ! उठो देश के आर्य नरो।।

●

(पृष्ठ ४ का शेष)

कुमार्ग से हटकर सुमार्ग पर आरूढ़ हों, सांसारिक कामनाओं को चित्त से हटाकर आपके तेज को धारण करें, उस तेज का ध्यान करें जिससे हमारे सारे पाप ताप नष्ट हो जावें आवरण जल जायें, मल धुल जायें, विक्षेप का संक्षेप होते-होते सर्वथा प्रक्षेप हो जाये।

हे सकल सुख विधातः ! करुणानिधान ! कृपालो ! दयालो ! हम पर ऐसी कृपा और अनुग्रह कीजिये कि हमको सदा आपकी प्रेरणा मिलती रहे। जिससे आपकी उस प्रेरणा से प्रेरित हुए-हुए हम सदा आपकी आज्ञा का पालन करते हुए आपके वर पुत्र बन सकें। प्रभो ! भूयो भूयः आपसे यही प्रार्थना है।

●

क्या प्रत्येक वेद मन्त्र के पूर्व व अन्त में ओ३म् लगाना विहित है

(वैदिक गवेषक, आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा, पथिक, एम० ए० सिद्धान्तवाचस्पति, कानपुर)

प्राचीन वैदिक परम्परा है कि प्रत्येक वेद मन्त्र में ओ३म् लगाना चाहिए। आर्य समाज में भी यही परम्परा प्रचलित है, परन्तु कुछ दिनों से कतिपय आर्यसमाजी इसका विरोध कर रहे हैं। अतः इस सम्बन्ध में ऊहापोह से विचार किया जा रहा है।

शास्त्रीय प्रमाण--

महर्षि पाणिनि जी का कथन है कि—

'ओमभ्यादाने' (अष्टाध्यायी ८।२।८७)

ओम् शब्दस्य प्लुतः स्यादारम्भे।

ओ३म् अग्निमीले पुरोहितम्।

आरम्भ में ओम् शब्द का प्लुत उच्चारण होता है अर्थात् जब यह ओम् शब्द किसी मन्त्र के आदि में पढ़ा जायेगा तो ओम् शब्द का 'ओकार' प्लुत हो जायेगा। प्लुत त्रैमात्रिक होता है। इसी कारण से ओ के परे ३ का अंक लिखा जाता है।

गोपथ ब्राह्मण १।२७ में भी कहा है।

'तिस्रो मात्रा अभ्यादाने हि प्लवते।'

अर्थात्--अभ्यादान सबसे पूर्व के प्रारम्भ को कहते हैं।

यह सबसे पूर्व का प्रारम्भ वेद का ही इष्ट है, क्योंकि 'ओम्' वेद का ही सार रूप है।

'सिद्धान्त कौमुदी' में इसका लोक में उपयोग न होने से इस सूत्र को 'वैदिक प्रक्रिया' में रखा गया है। इसी कारण ही पं० भट्टोजीदीक्षित ने इसका उदाहरण 'ओ३म् अग्निमीले पुरोहितम्' यह वेद का ही रखा है। काशिकाकार श्री वामन जयादित्य ने भी यही उदाहरण लिखा है। इससे

सिद्ध हो रहा है कि इस 'ओ३म्' का प्रयोग वेद-संहिता का सबसे पूर्व का प्रारम्भ करने के समय किया जाना चाहिए।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने 'वेदांग प्रकाश' के सन्धि विषय के 'संज्ञा प्रकरण' में उक्त सूत्र के उदाहरण ओ३म् इषे त्वा ऊर्जे त्वा 'ओ३म् अग्निमीले पुरोहितम्' यह दो दिए हैं। यह दोनों ही वेद संहिताओं के आरम्भ के मंत्र हैं। महर्षि दयानन्द जी ने उक्त सूत्र के अभ्यादान पद का अर्थ भी आरम्भ ही किया है।

महर्षि पाणिनि पुनः कहते हैं कि--

प्रणवष्टेः (अष्टाध्यायी ८।२८।३)

'यत्र कर्मणि टेरोमित्यादेशः स्यात्। अपां रेतांसि जिन्वतोम्

जब वैदिक मन्त्र यज्ञ में पढ़े जायेंगे तो सब मन्त्रों के 'टि' के स्थान में 'ओम्' का पाठ किया जाये क्योंकि टि के स्थान पर ओम् शब्द का आदेश व्याकरण के नियम से होता है। टि यह व्याकरण की संज्ञा है। यदि उस अंतिम स्वर वर्ण के आगे व्यंजन वर्ण भी हो, तो दोनों की ही संज्ञा हो जायेगी।

अचोऽन्त्यादि टि (अष्टाध्यायी)

उदाहरण देखिए--

'अपां रेतांसि जिन्वति' यह वेद का मन्त्र है। इसमें ति में इकार अंतिम स्वर है अतः इकार के स्थान में ओम् यह आदेश हो जायेगा अर्थात् जिन्वति के स्थान में 'जिन्वतोम्' हो जायेगा।

इसी प्रकार 'अग्निमीले पुरोहितम् यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमोम्' ऋ० १।१।१

इस मन्त्र में अंतिम स्वर, धातमम्, के मकार में अकार है और इस अकार से परे व्यंजन वर्ण मकार है इन दोनों के स्थान में 'ओम्' यह पद आदेश हो जायगा अर्थात् 'रत्नधातमम्' के स्थान में 'रत्नधातमोम्' हो जायगा।

इसी प्रकार वेद के जितने मन्त्र हैं उनके अंतिम टि ओम् ही है। इससे सिद्ध हुआ कि वेद के जितने मन्त्र हैं, उतने ही बार, ओंकार, शब्द का पाठ उनके अन्त में है। इससे यह भी जानना चाहिए कि यह ओंकार

मन्त्र के अंतर्गत है, मन्त्र से भिन्न नहीं, अर्थात् ओंकार शब्द मन्त्र के अन्त में नहीं लगाया जाता, किंतु प्रत्येक मन्त्र का जो अन्तिम टि है वही ओम् स्वरूप है। राजर्षि मनु जी की स्पष्टोक्तिः--

'ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति।'

(मनुस्मृति २।७४)

पं० कुल्लूक भट्ट--'ब्रह्मणः प्रणवमिति ।। ब्रह्मणो वेदस्वाध्ययनारम्भे अध्ययनसमाप्तौ चौंकारं कुर्यात्। यस्मात्पूर्व यस्योंकारो न कृतस्तत्स्रवति शनैः शनैर्नश्यति यस्य पुरस्तान्न कृतस्तद्विशीर्यति अवस्थितिमेव न लभते।।' मनुस्मृतिः पृष्ठ ४९ (सन् १९४६ निर्णय सागर प्रेस बम्बई संस्करण)।

सामवेद भाष्यकार पं० तुलसीराम स्वामी : 'वेद के पढ़ने के प्रारम्भ में सदा प्रणव (ओ३म्) का उच्चारण करे और अन्त में भी, यदि आदि में और अन्त में ओ३म् का उच्चारण न करे तो उसका पढ़ा हुआ धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है।' मनुस्मृति भाषानुवाद पृष्ठ ९८ (१५वां संस्करण)।

पं० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार, पालीरत्न : 'ब्रह्मचारी वेदाध्ययन के पूर्व और अंत में सदा ओ३म् का उच्चारण किया करे। क्योंकि पहले और पीछे ओ३म् का उच्चारण न करने से पढ़ा हुआ निष्फल हो जाता है।' आर्ष मनुस्मृति (द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ३१)

स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ--'वेद--वेद मन्त्र के आदि तथा अन्त में सदा प्रणव--ओ३म् का प्रयोग करे। आरम्भ में ओ३म् न कहने से वह धीरे-धीरे नष्ट होता है और अन्त में ओ३म् न कहने से वह नष्ट हो जाता है।' (सावित्री प्रकाश पृष्ठ १८ सं० २००६)।

स्वामी अमृतानन्दजी सरस्वती--'वेदादौ तदन्तेन ओमित्यक्षरं पठनीयम्। यदि वेदारम्भे वेदांते च ओंकारशब्दं नो समुदचरिष्यामस्तदा-वक्ष्यमाणदूषणभाजिनो भविष्यामः। मन्त्रोच्चारणादौ ओंकारे नुच्चार्यमाणे मंत्रोच्चारयितुः फलं शनैः शनैः प्रणश्यति तथैवांते नुच्चार्यमाणे पाठको ध्रुवां स्थितिं लभते इतिश्लोकार्थः। 'ओंकार दर्शनम्' (पृष्ठ ४४ सं० २००८)।

पं० शिवशङ्कर शर्मा काव्य तीर्थ--('ब्रह्मणः) वेद के प्रत्येक मन्त्र

की (आदौ) आदि में (अन्तेच) और अन्त में (प्रणवम्) प्रणव-ओंकार को (कुर्यात्) करे अर्थात् जब वेद मंत्र पढ़ना हो तो मंत्र के आदि अन्त में ओ३म् शब्द का उच्चारण करता जाय (पूर्वम्) जिस वेद पाठी ने प्रथम ओम् शब्द का उच्चारण नहीं किया उसका (अनोंकृतम्) ओंकाररहित अध्ययन (स्रवति) बिलकुल नष्ट हो जाता है (परस्तात् च) और जिसने पश्चात् ओंकार का उच्चारण नहीं किया (विशीर्यते) उसका भी अध्ययन विशीर्ण हो जाता है। अर्थात् मंत्र के अध्ययन के आदि अन्त में ओम् शब्द का उच्चारण अवश्य करे यह विधान है।' 'ओंकार निर्णय'।

यहां पर माननीय पंडितजी ने ब्रह्मण: शब्द का अर्थ 'वेद के प्रत्येक मंत्र को' किया है। जो लोग वेद के प्रत्येक मन्त्र के पूर्व और अंत में ओ३म् लगाना इस श्लोक से न समझते हैं वे भ्रम में हैं।

'ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत।'

(छांदोग्योपनिषद् प्र० १, खंड १)

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रथम समुल्लास में इस प्रमाण को उद्धृत किया है।

स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सन्मार्ग दर्शन' तृतीयावृत्ति, पृष्ठ १८ में इस प्रकार लिखते हैं—'ओ३म्, उद्गीथ और प्रणव यह तीनों समानार्थक हैं। इनका वाच्यार्थ एक जगदीश्वर ही है। ओ३म् शब्द तो प्रसिद्ध ही है। छांदोग्य उपनिषद् में इसको उद्गीथ कहा है। कारण यह है कि प्लुत ध्वनि से ओ३म् के उच्चारण के पश्चात् ही वेद मन्त्रों को पढ़ते हैं। अतएव ओ३म् का नाम उद्गीथ है।'

आद्य श्री शङ्कराचार्य जी महाराज—'स्वयमेव श्रुतिरोंकारस्योद्गीथ शब्दवाच्यत्वे हेतुमाह ओमिति ह युद्गायति। ओमित्यारम्भ हि यस्मादुद्गायत्यत उद्गीथ ओंकार इत्यर्थः।'

अर्थात्—ओंकार के, उद्गीथ शब्द वाक्य होने में श्रुति स्वयं ही हेतु बतलाती है। ओ३म् ऐसा कहकर उद्गान करता है क्योंकि उद्गाता ओ३म् इस अक्षर से आरम्भ करके उद्गान करता है, इसलिए ओंकार उद्गीथ है।'

'ओमिति सामानि गायन्ति। ओं शमोमिति शास्त्राणि शंसन्ति।

ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रस्तौति। ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति।'

(तैत्तिरीयोपनिषद्, शिक्षाध्याय, अष्टम अनुवाक्)

अर्थात्––'ओ३म् कहकर साम का गान करता है। शास्त्र पाठ ओ३म् से और समाप्ति शमोम्, ओम् से होती है। अध्वर्यु ओ३म् कहकर यजुर्वेद का पाठ करता है। ब्रह्मा ओ३म् से परमात्मा की स्तुति करता है ओम् कह कर ही अग्निहोत्र प्रारम्भ करने की अनुज्ञा देता है।'

'तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदाननपः क्रियाः। प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्॥'

(श्री मद्भगवतगीता १०।२४)

शांकर भाष्य––'तस्माद् ओम् इति उदाहृत्य उच्चार्य यज्ञदानतपः क्रियाः प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः शास्त्रचोदिताः सततं सर्वदा ब्रह्मवादिनां ब्रह्मवदनशीलानाम्।'

अर्थात्––इसलिये वेद का प्रवचन पाठ करने वाले ब्राह्मणों की शास्त्र-विधि से कही हुई यज्ञ, दान और तप रूप क्रियाएं ब्रह्म के 'ओ३म्' इस नाम का उच्चारण करके ही सर्वदा आरम्भ की जाती है।

(श्री मद्भगवद्गीता शांकर भाष्य हिन्दी अनुवाद सहित सप्तम संस्करण पृष्ठ ४०२, सं० २००८ गीता प्रेस गोरखपुर)।

श्री रामानुज भाष्यमः––'वेदाः च ओम् इति उदाहृत्य आरम्यन्ते।'

अर्थात्––वेद भी ओंकार का उच्चारण करके ही आरम्भ किये जाते हैं।

स्वामी हरि प्रसाद वैदिक मुनि–'···विधानोक्ताः-वेदविधानोक्ताः; वेदविहिताः; यज्ञदानतपःक्रियाः––यज्ञदानतपोरूपाः क्रियाः, यज्ञदानतपांसि कर्माणि, ओमिति ओमित्येतद् ब्रह्मणः परमेश्वरस्य नामोदाहृत्य-उच्चार्य···'

श्री मद्भगवद्गीतोपनिषद् वैदिक भाष्यम् 'प्रथम संस्करण' पृष्ट ३१६)।

कतिपय प्राप्य विद्वानों के विचार––वेदों के उद्भट विद्वान् परलोक-वासी पं० शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ ने 'ओंकारनिर्णय, पुस्तक में प्रत्येक वेद मन्त्र के पूर्व में 'ओ३म्' उच्चारण करना लिखा है। इसका प्रथम

संस्करण आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से प्रकाशित हुआ था। उसका द्वितीय संस्करण श्री गोविन्दराम हासानन्द आर्य साहित्य भवन, नई सड़क, दिल्ली ६ से प्रकाशित हुआ है। इस संस्करण के सम्पादक स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ है।

पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० प्रयाग--वेद मन्त्रों के पढ़ने में सबसे पहले ओ३म् का उच्चारण किया जाता है।

(सरल संध्याविधि पृष्ठ २०--सन् १९५१ आर्यसमाज अमरोहा द्वारा प्रकाशित)

'ओ३म् यह परमेश्वर का निज नाम है। प्रत्येक वेद मन्त्र के आरम्भ में और अन्त में 'ओ३म्' पद उच्चारण करने का आर्यशास्त्रों में विधान है।'

(गायत्री माता)

विरजानन्द वैदिक संस्थान के संचालक स्वामी वेदानन्दजी तीर्थ-- 'ऋषियों का आदेश है कि मन्त्रों के आदि तथा अंत में ब्रह्म यज्ञ के समय ओ३म् का प्रयोग करना चाहिए। अर्थात् मन्त्र के आरम्भ में प्लुत त्रिमात्रिक ओ३म् का उच्चारण करना चाहिए इसी प्रकार मन्त्र के टि भाग यदि अंत में स्वर हो तो वह टि कहलाता है यदि अन्त में व्यंजन से पूर्ववर्ती स्वर समेत वह व्यंजन होता है।

('सावित्री प्रकाश' प्रथम संस्करण पृष्ठ १५-१६)

स्वामी अमृतानन्दजी सरस्वती--'आपने संस्कृत में 'ओंकार दर्शनम्' नामक एक पुस्तक लिखी है जिसका प्रथम संस्करण आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश, लखनऊ से प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक में स्वामी जी महाराज ने अनेकों प्रमाण देकर सिद्ध किया है कि वेदमन्त्रों के पूर्व व अन्त में ओ३म् लगाना चाहिए।

●

ओ३म्

अग्नि होत्र पद्धति

अग्नि होत्र का प्रयोजन

[यह लेख आगरा से **वेदपथ** में छपने के लिए आया है लेख पर लेखक का नाम नहीं है और इस लेख की कुछ बातों से मैं सहमत भी नहीं हूं तथापि विद्वानों के विचार के लिए इसको यहाँ दिया जा रहा है। विद्वान् इस विषय पर अपने विचार लिखकर भेजें तो अच्छा है।] सम्पादक

अग्नि होत्र प्रतीकात्मक शब्द है। यह उस अध्यात्म भाग का प्रतीक है जो विश्व में हो रहा है। तथा जिस विश्व का होता भगवान स्वयं है। ईश्वर के कर्मात्मक उपदेश का परिज्ञान, मनन और आचरण कर यह अल्पज्ञ जीव अपनी अल्पज्ञता के बंधन को शिथिल करने में समर्थ हो सकता है। इसीलिए प्रधान अग्नि, यह भौतिक अग्नि नहीं किन्तु "अनक्ति, व्यनक्ति नयति च, विश्वमिति अग्नि" इस व्युत्पत्ति के अनुसार अग्नि शब्द परमात्मा का वाचक है। जैसा कि 'अग्नि मीडे' इस मन्त्र में तथा सामवेद के—"उपत्वाग्ने दिवे दिवे' इत्यादि मन्त्रों में कहा है। यही अग्नि भगवच्-छक्तिमय है। **सहस्रांशु समप्रभवम्**

जिसका मनु ने—

"तदाऽभवत् हैसं सहस्त्रांशु समप्रभवम् ।
तस्मिन् यज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोक पितामहः ।।

इस श्लोक में वर्णन किया है तथा भागवत में भी एक स्थान पर यही बात प्रकारान्तर से कही है।

"त्वत्तः पुमान् समधिगम्य यथा स्ववीर्य धत्ते महान्तमिव गर्भमिव-मोघवीर्यः। सोऽयं तथानुगत आत्मन आण्डकोषं हैमं ससर्ज वहिरावणैरुपेतम्—

अतः जिस प्रकार अग्नि स्वरूप परमात्मा इस विश्व यज्ञ को संस्थापित करता है उससे ही हम लोग भी प्रतिदिन अध्यात्म यज्ञ के द्वारा अपनी बुद्धि, शक्ति एवं कर्मशक्ति को बढ़ाते रहे। जिस कर्मशक्ति या बुद्धिशक्ति के लिए 'धियो योनः प्रचोदयात्' इस गायत्री मन्त्र में प्रार्थना की गई है। यही जहां वायु शुद्धि और अति स्थूल अग्नि होत्र का प्रयोजन है, जहां

अपनी उक्त शक्तियों को बढ़ाते जाना वैसे ही बढ़ाते जाना जैसे समिधायों से अग्नि प्रदीप्त होती है।

यह हमारा अध्यात्म यज्ञ है।

भौतिक प्रयोजन तो स्वयं सिद्ध हो जाते हैं । आध्यात्मिक पक्षानुसार अग्नि अर्थात् परमात्मा में होत्र आत्म समर्पण की भावना लाना जीव का कर्त्तव्य है।

कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेत्' का परम उपदेश है। अथवा अग्नि स्वस्थ उत्थान शील का होत्र कर्त्तव्य पालन द्वारा कर्मण्य बनना यही अग्नि होत्र का कर्त्तव्य है।

अग्नि होत्र—अग्नि के प्रज्वालन के द्वारा जीव के उद्बोधन को या प्रगतिशीलता को लक्षित करना है। यह जीव सर्वप्रथम तीन समिधाओं के द्वारा तीन दण्डों का वाग्दण्ड, मनोदण्ड या वाङ्मन काय तपस्या को या ऋणों को स्मरण करता है । तदनन्तर 'अयन्त इध्मः' इस मन्त्र की ५ आहुतियों के द्वारा पञ्चयज्ञ या पञ्चज्ञानेन्द्रियों को संयत बनाने का विचार तदनन्तर जल सिञ्चन के द्वारा अपने चारों ओर के व्यक्तियों तथा अपनी वैषयिक वासनाओं को शान्त करने का संकल्प करता है। तदनन्तर सूर्य के समान एवं अग्नि के समान गतिशील भाव हृदय में आता है। फिर कुछ उदात्त भावना पर मंत्रों का शुद्ध अन्तःकरण से पाठ करता हुआ ब्रह्मचारी या यज्ञकर्ता या यजमान आहुति डालता है। तदनन्तर मेरी जो कोई कर्त्तव्यों में त्रुटि हो उसकी पूर्णता के लिए भगवत्कृपा की कामना करता हुआ "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" यह कहता हुआ अपनी पूर्णता, अपने समाज की पूर्णता एवं अपने कार्यों की पूर्णता चाहता हुआ तीन आहुतियां देता है और यह आध्यात्मिक-यज्ञ पूर्ण हो जाता है।

प्रक्रिया भेद

अग्नि होत्र मंत्रों में 'संस्कार-विधि' में भिन्नता है । 'सूर्योज्योति'— इत्यादि मंत्र गृहाश्रम प्रकरण में है पर सामान्य प्रकरण में नहीं है फिर इनके बोलने की रीति भी भिन्न प्रकार है । कुछ लोग इन मन्त्रों को सारे हवन करने के बाद बोलते हैं। कुछ मध्यम से ही बोलना उचित समझते हैं।

'यदस्य कर्मणः' यह मंत्र भी बीच में ही बोला जाता है। पर हमारी सम्मति में 'यदस्य कर्मणः' यह मन्त्र सबके बाद पूर्णाहुति के पूर्व ही बोलना चाहिए। यही इसके शब्दों से भी ध्वनित होता है। गुरुकुलों में भी यही पद्धति मानी जाती है। यही उचित भी है। बीच में 'यदस्य कर्मणः' का विनियोग ठीक नहीं। 'सूर्यो ज्योतिः' इत्यादि मन्त्रों में एक मन्त्र तथा 'प्रजापतये स्वाहा' यह मन्त्र बोलने में कुछ व्यक्ति मौन होकर आहुति देते हैं। इस पद्धति को मैं ठीक नहीं मानता। इस विषय में ऋषि का तात्पर्य या इस परम्परा का तात्पर्य खोजना ही चाहिए। प्रत्येक यह प्रक्रिया आध्यात्मिक की प्रक्रिया को इंगित करती है। इसलिए मौन रहना जंचता भी नहीं है।

'अत्यन्त इध्म' इस मन्त्र को पांच बार क्यों बोले। इस विषय में तो सामवेद का निम्नलिखित मन्त्र प्रमाण है :--

"पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा स देशोऽभवत् सरित् ।।सामवेद।।

आशा है पाठकवृन्द इन पद्धतियों पर विचार करेंगे। तथा इनके सामंजस्य की स्थापना के लिए प्रयास करेंगे। ●

(पृष्ट १२ का शेष)
कृत्तिका से कार्तिक, मृगशिरा से मार्गशीर्ष, पुष्य से पौष, मघा से माघ और फाल्गुणी से फाल्गुण, ये बारह मासों के नाम रक्खे गये हैं।

नक्षत्रों के नाम वेद में होने से ये बारह मासों के नाम भी वैदिक ही हैं।

मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर,कुम्भ और मीन ये १२ राशियों के नाम मुझको वेद में नहीं मिले हैं।

तिथियों और तिथियों के देवताओं का कुछ मूल सा मुझको यजुर्वेद अध्याय २५ मन्त्र ४-५-६ में दिखाई दिया पर मैं निश्चय तक नहीं पहुँच सका तो भी इसलिए यहां उसे लिखा जाता है कि विद्वज्जन उसपर भी विचार कर सकें।

युगों के नाम भी वहां युगों के लिए ही हैं ऐसा निश्चय नहीं हो सका तथापि कृत, त्रेता, द्वापर ये तीन युग नाम क्रमशः और इकट्ठे आने से चौथे आस्कन्द को लेना कुछ अच्छा लगा। विद्वान् इस पर भी विचार करेंगे, ऐसी आशा है।

अष्टादश पुराणों पर नूतन आलोचनात्मक दृष्टिकोण

[लेखक प्रो० श्री भवानीलालजी भारतीय एम० ए० अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
गवर्नमेंट कालेज, पाली (राजस्थान)]

क्या पुराण व्यासोक्त हैं ?

वस्तुतः पुराण नामधारी इन ग्रन्थों की रचना न तो एक समय में हुई है और न एक व्यक्ति द्वारा। अतः अष्टादश पुराणों को व्यास कृत कहना एक साहस मात्र है। सर्वप्रथम ऋषि दयानन्द ने व्यास कृत न होने के विषय में तर्क प्रस्तुत करते हुए लिखा, "जो अठारह पुराणों के कर्ता व्यासजी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते, क्योंकि शारीरिक सूत्र, योग शास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रंथों के देखने से विदित होता है कि व्यास जी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी, परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोल कल्पित ग्रंथ बनाये हैं उनमें व्यासजी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेद-शास्त्र विरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदृश विद्वानों का काम नहीं।'[1] महर्षि दयानन्द के कथानक का मुख्य अभिप्राय यही है कि व्यास के द्वारा रचित वेदान्त दर्शनादि ग्रंथों को देखते हुए यह सम्भव नहीं प्रतीत होता कि उनकी योग्यता का उच्च कोटि का दार्शनिक विद्वान् पुराणों जैसी निकृष्ट कोटि के ग्रन्थों की रचना करें। किसी भी लेखक द्वारा रचित पुस्तकों में विषय, शैली, भाषा और अभिव्यंजना विषयक समानतायें पाई ही जाती हैं। परन्तु पुराणों में विषय, शैली और प्रतिपादन गत विरोधों को देखते हुए उन्हें एक ही व्यक्ति की रचना कैसे कहा जा सकता है।

कृष्णचरित्र के प्रसिद्ध मीमांसक बंकिमचन्द्र ने भी यही बात कही है। वे लिखते हैं—"वर्तमान अष्टादश पुराण एक मनुष्य के बनाये या एक ही समय विभक्त या संग्रहीत हुए हैं।[2] ऐसा मालूम नहीं पड़ता। अपने इस कथन को सिद्ध करने के लिए उन्होंने निम्न प्रमाण दिये हैं :—

---

१. सत्यार्थप्रकाश : एकादशसमुल्लास

२. बंकिमचन्द्रकृत श्रीकृष्ण चरित पृ० ८६

(१) एक लेखक की लेखन शैली एक सी होती है, परन्तु पुराणों की लेखन-शैली में भिन्नता है।

(२) एक व्यक्ति एक ही विषय के अनेक ग्रंथ नहीं लिखता। जो अनेक ग्रंध लिखता है वह एक ही विषय को बारम्बार वर्णन करने के लिए नहीं लिखता।

(३) एक ही लेखक की रचना में पारस्परिक विरोध की सम्भावना नहीं रहती। ये सब दोष पुराणों में न्यूनाधिक रूप में सर्वत्र मिलते हैं, अतः सिद्ध है कि पुराण एक ही व्यक्ति की रचना नहीं हैं।'

सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् डा० सम्पूर्णानन्दजी की सम्मत्ति भी अवलोकनीय है। वे लिखते हैं--यह मानना कि सारे पुराण व्यासजी के कहे या लिखे हैं, व्यासजी का उपहास करना है। उनको ऐसी भोंड़ी बातों के लिए जो श्रुति, तर्क और इतिहास के विरुद्ध हैं, दायी बनाना अन्याय है। पुराणों का अन्तःसाक्ष्य बतलाता है कि वह न तो एक समय बने हैं न एक व्यक्ति उनका रचयिता है।'[1]

अब तो स्वयं पुराण मतावलम्बी ही इस बात को स्वीकार करने लगे हैं कि अठारह पुराण जिस स्थिति में मिलते हैं उन्हें व्यास-रचित कहना उचित नही। 'कल्याण' के ब्रह्मवैवर्त पुराण विशेषांक में यह पूर्वपक्ष उठाया गया है--"कुछ लोग यह शंका करते हैं कि 'यदि सब पुराण केवल व्यास के ही बनाये हैं तो उनमें पुनरुक्तियां क्यों हैं? उनकी रचना में भाव, भाषा, मुहावरा और वर्णन-शैली आदि की दृष्टि से इतना अंतर क्यों प्रतीत होता है? विभिन्न पुराणों में विभिन्न देवताओं को सर्वश्रेष्ठ बताने का क्या रहस्य है? क्या एक ही लेखक अपने ग्रंथों में परस्पर विरुद्ध मत की स्थापना कर सकता है? पुराणों का स्वाध्याय करने से कोई भी निष्पक्ष विचारक यह मानने कौ तैयार नहीं होगा कि सभी पुराण एक लेखक की रचनाएं हैं, अथवा एक ही लेखनी से निर्गत हुए हैं।"

इस स्वस्थापित पूर्वपक्ष का समाधान करते हुए उक्त लेखक लिखते हैं, "हम पहले बतला चुके हैं कि पुराण वेदों के समान ही प्राचीन और अनादि काल से प्रचलित हैं। वे व्यासदेव से भी पहले के है। पुराणों के

---

१. सम्पूर्णानन्द : ब्राह्मण सावधान पृ० २४

पाठक यह भी जानते हैं कि सभी पुराणों के वक्ता और श्रोता भिन्न-भिन्न हैं और वे पुराण भिन्न-भिन्न देश कालों में सुने तथा कहे गये हैं। यहाँ तक कि उनकी कथाओं की अवतारणा भी विभिन्न कल्पों के सर्ग की प्रक्रिया तथा लोकवृत्त को ही लेकर हुई है। ऐसी दशा में यह प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए कि वे एक लेखक की रचना हैं अथवा एक ही लेखनी से निर्गत हुए हैं। जब वक्ता भिन्न-भिन्न हैं तब उनकी भाषा और वर्णन-शैली में एकता कैसे रहे? एकता होनी ही आश्चर्य की बात होती, अन्तर होना तो गुण हैं, उनकी स्वाभाविकता और यथार्थता का परिचायक है। व्यासजी ने उन विभिन्न काल के लोक-प्रचलित प्रवचनों का संकलन मात्र किया है और उन्हें अठारह भागों में बांट कर अपने व्यास नाम को सार्थक किया है। व्यास का अर्थ यहां सम्पादक मात्र समझना चाहिए।'[1] चलिये, एक कुफ्र तो टूटा। आज तक तो यह कहा जाता था कि अठारह पुराण व्यास-कृत हैं और पुराणों की प्रत्येक पंक्ति को व्यासोक्त होने के कारण आर्ष और प्रामाणिक माना जाता था परन्तु अब व्यास जी पुराणों के लेखक न रहकर सम्मादक मात्र ही रह गये हैं। शायद एक स्थिति ऐसी भी आ जाय कि पुराणों से उनका कोई सम्बन्ध ही न रहे। परन्तु उपर्युक्त समाधान में हमें तो कई बातें फिर भी संदेहात्मक प्रतीक होती हैं। प्रथम तो पुराणों को वेदों के समान ही प्राचीन और अनादि काल से प्रचलित मानना भूल है जिसका कि हम पूर्व ही संकेत कर चुके हैं। यह कथा भी साध्यकोटि में ही है कि वे व्यासदेव से भी पहले के हैं। पुराणों की कथाओं को विभिन्न कल्पों की बताकर उनकी परस्पर विरुद्धता के दोष को ढकने का प्रयत्न तो बाल-चेष्टा ही है। क्योंकि जिन कथाओं में कुछ भी सम्भवता, स्वाभाविकता या संगति नहीं है और जो विभिन्न ढंग से वर्णित हुई है उन्हें विभिन्न कल्पों में घटित बताकर अपने मन को तोष दिया जा सकता है, जिज्ञासा का समाधान नहीं किया जा सकता।

अभी हाल ही में सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० सम्पूर्णानन्द की पुस्तक 'हिन्दू

---

१. कल्याण ब्रह्मवैवर्त पुराणांक पृ० ६ पाण्डेय श्रीरामनारायणदत्त शास्त्री 'एम का लेख

देव परिवार' का विकास प्रकाशित हुई है। विद्वान् लेखक ने भारतीय विद्या भवन बम्बई के तत्वावधान में जो भाषण दिये वे ही इसमें मुद्रित हुये हैं। इसमें भी पुराणों के व्यासकृत् होने के विषय में शंका करते हुए विद्वान् वक्ता कहते हैं, "पुराणों के कर्त्ता वेदव्यास माने जाते हैं परन्तु उपलब्ध पुस्तकों कों देखकर ऐसा मानना कठिन हो जाता है कि इन सबका रचयिता एक ही व्यक्ति था।"

पुराणों की अर्वाचीनता--

जब यह सिद्ध हो चुका कि पुराण व्यासकृत नहीं हैं तो महाभारतीय युद्ध से उनका परवर्ती होना तो अपने आप ही सिद्ध हो जाता है। वस्तुतः इनका रचनाकाल एक नहीं है। वायु और मत्स्य पुराण पर्याप्त प्राचीन हैं। विष्णु पुराण के कतिपय अंश भी पुराने हैं। परन्तु भागवत और ब्रह्मवैवर्त आदि तो अत्यधिक नवीन ग्रन्थ हैं। अठारह पुराणों में भविष्य पुराण जैसे ग्रंथ थी हैं जिनमें मध्यकालीन इतिहास ही नहीं अपितु १८५७ का विद्रोह तथा महारानी विक्टोरिया के शासन तक की अर्वाचीन घटनाएं भविष्य कथन के नाम पर निबद्ध हैं।

रविवारे च सण्डे च फाल्गुने चैव फर्वरी।
षष्टी इति सिक्सि टी ज्ञेया तदुदाहार-मोदृशम्॥ भविष्य पुराण

जैसे अंग्रेजी शब्दों से मिश्रित श्लोक इस ग्रंथ कीं आधुनिकता का घोष कर रहे हैं। भविष्य पुराण के इन आधुनिक घटनाओं के उल्लेख को ही देखकर सम्भवतः किसी विनोद प्रिय व्यक्ति ने उपहास की रीति से यह श्लोक बनाकर भविष्य पुराण के नाम से प्रसिद्ध कर दिया था, यद्यपि वास्तव में यह श्लोक भविष्य में है नही--

'पुराणानां समुद्धर्ता क्षेमराजो भविष्यति' अर्थात् पुराणों का प्रकाशन और मुद्रण कर उद्धरण करने वाला क्षेमराज (श्रीकृष्णदास बम्बई) होगा।

पुराणों की अर्वाचीनता अनेक प्रमाणों से सिद्ध कीं जा सकती है। स्वर्गीय पं० लेखरामजी ने 'पुराण किसने बनाये ?' शीर्षक अपने एक ग्रंथ में निम्न प्रमाण पुराणों को आधुनिक सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किये हैं--

(१) यह इतिहास से सिद्ध है कि गौतमबुद्ध का जन्म ५६३ ई० पू० में हुआ था। पुराणों में बुद्धावतार का वर्णन भूतकाल की क्रिया में हुआ है। अतः सिद्ध हुआ कि पुराणों की रचना बुद्ध के पश्चात् हुई है और उन्हें व्यासोक्त कहना तथा ५००० वर्ष पूर्व रचित मानना अनुचित है। विष्णु पुराण में जैन, बौद्ध और चार्वाक आदि मतों का विस्तारपूर्वक उल्लेख मिलता है जो उसकी नवीनता का परिचायक है।

(२) लिंग पुराण में चक्रांकित मत का खण्डन मिलता है और यह सर्वविदित है कि चक्रांकित मत का प्रवर्तन रामानुजाचार्य ने किया जो १२ वीं शताब्दी में हुए। अतः लिंग पुराण को प्राचीन नहीं माना जा सकता। सम्बद्ध श्लोक यह है--

> शंख चक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते ।
> स जीवनकुणपस्त्याज्यः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥

रामानुज, मध्व, निम्बार्क और वल्लभ प्रवर्तित चारों वैष्णव सम्प्रदाय बहुत बाद के हैं परन्तु पद्म पुराण के निम्न श्लोकों में इन सम्प्रदायों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

> सम्प्रदाय विहीना ये मन्त्रास्ते निष्फला मतः ।
> अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः ॥
> श्रीमाध्वी रुद्रासनका वैष्णवी क्षितिपावताः ।
> चत्वारस्ते कलौ देवि सम्प्रदाय प्रवर्तकाः ॥

अर्थात् कलियुग में सम्प्रयाय (रामानुज) मध्व, रुद्र (वल्लभ) और सनकादि (निम्बार्क) ये चार वैष्णव जम्प्रदाय पृथ्वी को पवित्र करने वाले होंगे।

इसी युग में मध्यकालीन वैष्णवों द्वारा प्रयुक्त तुलसी माला, उर्ध्वपुण्ड्र, शंख चक्र आदि के आकारों को अपने शरीर पर धारण करना आदि के साम्प्रदायिक कर्मकाण्ड का उल्लेख भी यह सूचित करता है कि इस पुराण की रचना तब हुई थी जब कि वैष्णव मत का समस्त देश में प्रचार हो गया था। निम्न श्लोक द्रष्टव्य है—

> ये कण्ठलग्नतुलसीनलिनाक्षमालाः ये द्वादशांगहरिनाम रतोर्ध्वपुण्ड्राः ।
> ये कृष्णभक्ति सुदृढ़ाः धृतशंखचक्रा, ते वैष्णवाभुवनमाशु पवित्रयन्ति ॥

अर्थात् जो तुलसी और कमलगट्ठे की माला अपने गले में धारण करते हैं, जो अपने शरीर के अंगों पर उर्ध्वपुण्ड्र का तिलक धारण करते हैं तथा जो कृष्ण-भक्ति में रत शंख और चक्र धारण करते हैं, ऐसे वैष्णव लोग लोकों को शीघ्र ही पवित्र कर देते हैं। इसी प्रकार उर्ध्व पुण्ड्र धारण करने का महत्त्व अन्यत्र भी बताया गया है—

यो मृतिकां द्वारवती समुद्भवाम्। करे समादाय ललाट पट्टे।
करोति नित्यं त्वथचोर्द्धपुण्ड्रम्। क्रियाफलं कोटिगुणं सदा भजेत्॥

अर्थात् जो द्वारिका की मिट्टी हाथ में लेकर अपने ललाट पर उससे नित्य उर्ध्वपुण्ड्र बनाता है वह करोड़ों पुण्यों के फलों को प्राप्त करता है।

यहां हमने पद्म पुराण के कुछ ऐसे श्लोक प्रस्तुत किये हैं जो वैष्णवमत की प्रशंसा में लिखे गये हैं परन्तु अन्य पुराणों में ऐसे श्लोकों का अभाव भी नहीं है जो चक्रांकित मत की निन्दा करते हों। ऊपर लिंग पुराण का एक श्लोक उद्धृत किया जा चुका है। बृहन्नारदीय पुराण का निम्न श्लोक भी इसी कोटि का है—

तद्विजं तप्त शंखादिलिंगाकिततनुंहर।
सम्भाष्य रौरवं यांति यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥
तथाहि तप्त शंखादि लिंगचिह्नतनुर्नरः।
स सर्वपातकाभोगी चाण्डालो जन्म कोटिभिः॥

अर्थात् जो द्विज तपाये हुए शंख या शिवलिंग के चिह्न को अपने शरीर पर धारण करता है वह चतुर्दश इन्द्रों की अवधि तक रौरव नरक में बसता है और जो कोई अन्य पुरुष भी अन्य चिह्नों को धारण करता है वह करोड़ों जन्मों तक चाण्डाल बनता है।

चक्रांकित मत की निंदा का यह श्लोक भी उद्धरणीय है—

यथा स्मशान काष्ठं सर्व कर्म बहिष्कृतम्।
तथा चक्रांकितो विप्रस्सर्व वर्ण बहिष्कृतम्॥

जिस प्रकार स्मशान की लकड़ी सब कामों में बहिष्कृत मानी जाती है, उसी प्रकार चक्रांकित विप्र भी सब वर्णों से बहिष्कृत हो जाता है।

पुराणों में विद्यमान साम्प्रदादिक निंदा और स्तुति के विधायक ये सभी श्लोक उनकी अर्वाचीरता ही घोषित करते हैं।

(३) ब्रह्माण्ड पुराण और पद्म पुराण में तम्बाकू सेवन का निषेध है। इतिहास का एक सामान्य विद्यार्थी भी यह जानता है कि तम्बाकू इस देश में मुगल काल में आई। अतः उक्त पुराणों में पाये जाने वाले निम्न श्लोकों की आधुनिकता में कोई दो मत नहीं हो सकते—

प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्व वर्णाश्रिमे नरः।
तमालं भक्षितं येन स गच्छेन्नरकार्णवे ॥
धूम्रपान रतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः ।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्राम शूकरः ॥

घोर कलियुग के प्राप्त होने पर वर्णाश्रमस्थ जो मनुष्य तमाल भक्षण करेंगे वे नरक में गिरेंगे। इसी प्रकार धूम्रपान में रत ब्राह्मण को जो दान करता है वह दाता नरक में जाता है तथा ग्रहीता ब्राह्मण ग्रामशूकर बनता है।

(४) शाङ्कर मायावाद का खण्डन पद्म पुराण में मिलता है। इसे विज्ञानभिक्षु ने अपने सांख्य प्रवचन भाष्य में उद्धृत किया है। शंकराचार्य का समय ६वीं शताब्दी है। अतः पद्मपुराण के इन श्लोकों के आधुनिक होने में कोई सन्देह ही नहीं—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च।
मयैव कथितं देवि, कलौ ब्राह्मण रूपिणा ॥
अपार्थं श्रुति वाक्यानां दर्शयँल्लोक गर्हितम्।
कर्म स्वरूपत्याज्यत्वमत्र वै प्रतिपाद्यते ॥
सर्व कर्म परिभ्रष्टं वैधर्म्यत्वं तदुच्यते ।
परेश जीवयो रैक्यं मया तु प्रतिपद्यते ।
ब्राह्मणोऽस्य परं रूपं निर्गुणं वक्ष्यते मया।
सर्वस्य जगतोऽप्यत्र मोहनार्थं कलौ युगे ।
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम् ।[1]
मयैव रक्ष्यते देवि जगतां नाशकारणात् ॥ उत्तरखण्ड अ०
१६३ । ७० । ७५

---

१. सांख्य प्रवचन वाच्य : विज्ञानभिक्षु रचित

अर्थात् हे देवि, मायावाद झूठा शास्त्र है वस्तुतः यह छिपा हुआ बौद्ध शास्त्र ही है। मैंने ही कलियुग में ब्राह्मण का रूप धारण कर उस शास्त्र को कहा है। इसमें वेदों के वाक्यों के अर्थों को विकृत किया गया है और ऐसे अर्थ बताये गये हैं जिन्हें कि लोग घृणा की दृष्टि से देखें। तथा इसमें कर्मों का त्याग करना बताया गया है और सब कर्मों से भ्रष्ट होकर वैधर्म्य-पन बताया गया है। जीव और ईश्वर की एकता का प्रतिपादन किया गया है तथा ब्रह्म का स्वरूप निर्गुण बताया गया है। हे देवि, कलि युग में लोगों को मोहित करने के लिए वेदार्थ के नाम पर एक बड़ा शास्त्र जो मायावाद के कारण अवैदिक है संसार के नाश के लिए मुझ से ही रक्षित किया जाता है। हमारे विचार का विषय यह नहीं है कि शङ्कर दर्शन सचमुच वेदविरुद्ध और प्रच्छन्न बौद्ध है या नहीं, परन्तु यहां निवेदन इतना ही है कि जिस पुराण में एक अर्वाचीन दार्शनिक मतवाद का उल्लेख मिलता है वह प्राचीन कदापि नहीं हो सकता।

(५) स्कन्द पुराण में पुरी के जगन्नाथ मन्दिर का वर्णन मिलता है। परन्तु इतिहासकार इसे वि० सं० १२३१ में उड़ीसा के राजा अनंग भीमदेव का बनाया मानते हैं। अतः स्कन्द का यह उल्लेख क्या व्यासोक्त माना जा सकता है?

(६) युधिष्ठिर के ३६ वर्ष पश्चात् परीक्षित गद्दी पर बैठा और उसने ६० वर्ष बाद शुकदेव से भागवत की कथा सुनी। परन्तु महाभारत के भीष्म पर्व में शुकदेव की मृत्यु का उल्लेख है। अतः ९६ वर्ष बाद शुकदेव का परीक्षत को भागवत सुनाना असम्भव है।

(७) पद्मपुराण में सोमनाथ, वाराणसी, रामेश्वर, मथुरा आदि के मन्दिरों का यवनों द्वारा तोड़ा जाना लिखा है। ये घटनायें मुसलमानों के भारत आगमन के पश्चात् की हैं। अतः उक्त पुराण की नवीनता सिद्ध है।

पुराणों में ऋषि, मुनि, देवी, देवताओं की निन्दा स्थान-स्थान पर मिलती है। अतः ये ग्रंथ ऋषि प्रोक्त और प्राचीन कदापि नहीं कहे जा सकते। इस विषय को हम विस्तार पूर्वक उठायेंगे।

(९) व्यासकृत शारीरिक सूत्रों तथा योगभाष्यादि ग्रंथों में जो निर्मल ज्ञान गंगा प्रवाहित हो रही है पुराणों में उसका पता नहीं लगता।

(१०) भविष्यपुराण के विषय में हम पहले ही लिख चुके हैं। इस पुराण में जो मध्यकाल तथा आधुनिक काल की घटनाओं का वर्णन मिलता है वह भविष्यकाल की क्रिया में लिखा गया है परन्तु ऐसा किये बिना तो काम ही नहीं चल सकता था, क्योंकि यदि ये ही घटनाएं भूतकाल की क्रिया में वर्णित की जातीं तो उक्त पुराण को 'भविष्य' की संज्ञा से अभिहित करने का कोई अर्थ ही नहीं था।

(११) किन्हीं-किन्हीं पुराणों में (यथा विष्णु और भागवतादि में) इतिहास की कुछ शृङ्खला भी मिली है परन्तु वह उतनी प्रमाणित नहीं है। उदाहरण के लिए भागवत में भविष्य कथन के रूप में भावी राजाओं की जो वंशावलियां दी गई हैं उनमें अधिकांश कपोलकल्पित और मिथ्या हैं।[1]

पुराणों में प्रक्षेप--

जो लोग पुराणों को शास्त्र मानते हैं उन्हें प्रामाणिक ग्रंथों की कोटि में रखते हैं और व्यासोक्त मानने से उन्हें आर्ष ग्रंथों के समान सम्मान देते हैं वे भी इस बात से सहमत हैं कि अधुना उपलब्ध पुराण नामधारी रचनाओं में बहुत से नवीन विषय कालाण्तर में प्रक्षिप्त कर दिये गये हैं। तब यदि वादि तोष न्याय से यह मान भी लिया जाय कि पुराणों का रचना-काल अत्यन्त प्राचीन है और उनमें काम की बहुत सी बातें हैं, तब भी उनमें मिलाये गये अंशों या विचार और उनका पृथक्करण एक बहुत बड़ी समस्या बन जायेगी। पुराणों के प्रसिद्ध समर्थक पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र पुराणों में मिलने वाले गोलमाल का दायित्व बौद्धों पर डालते हुए अपने ग्रंथ अष्टादशपुराणदर्पण में लिखते हैं--"बौद्धों ने हमारे धर्म ग्रंथों को इतना नष्ट भ्रष्ट किया था कि उनके पीछे वे अपना असली स्वरूप प्राप्त न कर सकें।" (पृ० १२९) जब पुराणों की यही स्थिति है तो उनकी प्रामाणिकता के लिए आग्रह क्यों किया जाता है?

---

१. पुराण किसने बनाये : पं० लेखराम आर्यपथिक

ब्रह्मवैवर्त पुराण के हिन्दी अनुवादक पं० रामनारायणदत्त शास्त्री भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। वे लिखते हैं "विभिन्न स्थानों से प्रकाशित पुराणों की प्रतियों में जो महान् पाठभेद तथा न्यूनाधिक प्रसंग पाये जाते हैं; उन्हें देखते हुए यह स्वीकार करने को बाध्य होना पड़ता है। पुराणों में समय-समय पर कुछ प्रसंग खण्डित हुए या छूट गये हैं, साथ ही कुछ अंश जोड़े और घटाये भी गये हैं।'[1] एक अन्य लेखक की भी सम्मति दृष्टव्य है—"कालक्रमेण पुराणेषु नूतनाख्यानानि संयोजितानि। मौलिकपुराणान्यधुना न लभ्यन्ते। आपस्तम्बधर्मसूत्रे भविष्यपुराणादेकः श्लोकः उद्दाहृतः। परं स श्लोकोऽधुना उपलब्धे भविष्यपुराणे न दृश्यते। ······त्रयोदशशतक-निर्मितकोणार्कमन्दिरवर्णनम्, रारयाः विकटवत्याः (विक्टोरिया) उल्लेखोऽपि च पुराणेषु दृश्यते। एतानि पुराणानि क्रमशः परिवर्तितान्यभवन्।" कालक्रम से पुराणों में नूतन आख्यान संयोजित हो गये हैं। मौलिक पुराण आज नहीं मिलते। आपस्तम्ब धर्म सूत्र में भविष्य पुराण का एक श्लोक उद्धृत हुआ है, परन्तु वह श्लोक आज मिलने वाले भविष्य पुराण में नहीं मिलता। १३वीं शताब्दी में निर्मित कोणार्क मन्दिर का वर्णन तथा रानी विक्टोरिया का उल्लेख भी पुराणों में दिखाई देता है। इन पुराणों का क्रमशः परिवर्तन हुआ है।

ऐसी स्थिति में यही उपयुक्त प्रतीत होता है कि इन पुराण नामधारी रचनाओं को 'विषसम्पृक्तान्नवत्' त्याग दिया जाय। जो लोग यह मानते हैं कि पुराणान्वेषी विद्वानों की एक समिति पुराणों के संशोधनार्थ गठित हो और उसके द्वारा पुराणों के संशोधन का कार्य सम्पन्न हो उन्हें यह कह देना ही पर्याप्त होगा कि यह कार्य इतना सरल नहीं है जितना कि समझा जाता है। पुराणों की वर्तमान स्थिति इतनी चिन्तनीय हो गई है कि उसके ठीक ठीक स्वरूप-निर्धारण का कार्य लगभग असम्भव हो गया है। पुराणों में पाये जाने वाले साम्प्रदायिक विद्वेष की वृद्धि करने वाले प्रसंगों, बुद्धि, तर्क, युक्ति और विज्ञान के विरुद्ध घटनाओं, भूगोल इतिहास के तथ्यों का

(शेष पृष्ठ ४४ पर)

---

१. कल्याण: ब्रह्मवैवर्त पुराणांक पृ० ७

वेद भारत के–सभी संसार के हैं !

[श्री भैरवदत्त जी शुक्ल]

ईश द्वारा जो निःसृत हो,
विश्व का कल्याण करते;
शक्ति, ऋत, विश्वास, निष्ठा,
कर्म का परित्राण करते;
एकतामय मानवोचित,
तेज नित्य प्रदान करते,
अघ, कलुस, कर्दम, कलह, मल,
द्वेष को निष्प्राण करते;
वाद-मतगत भेद भावों—
से पृथक्, शाश्वत लदा रह—
वेद प्रतिगृह के, अडिग, आधार के हैं !
वेद भारत के–सभी संसार के हैं ! !

अग्नि नें 'ऋक्', वायु ने यजु,
देख कर, जग को दिखाया;
'साम' का मधु-गान पा,
आदित्य ने सब को सिखाया;
वह महान 'अथर्व-वैभव,
अंगिरा के पास आया;
पाठ-क्रम चेता जनों ने
श्रुत सुघर गौरव बचाया;
आर्य प्रिय परिपाटियों का,
ले भला संबल सजोला—
वेद तन-मन के–अतनु करतार के हैं !
वेद भारत के–सभी संसार के हैं ! !

शक्त शिव कर्त्तव्य-पथ को,
धर्म का विस्तार देते;
वर्ण-आश्रम का व्यवस्थित
कर्मणा अधिकार देते;
विश्व-क्रीड़ा-भूमि पर,
संकल्प को आकार देते;
ब्रह्म, आत्मा, प्रकृति–तीनों––
को सही आधार देते;
संतुलित पुरुषार्थ चारों––
एक में अनुस्यूत करते,––
वेद जन-जन के–सुखद परिवार के हैं !
वेद भारत के–सभी संसार के हैं !!
साम्य के सच्चे समर्थक,
यौगिकी प्रक्रिया संभाले;
यशः की निःस्वार्थ वसुधा––
पर सुधामय प्राण ढाले;
पूत कर्मठ भव्य जीवन––
के बनाते ढब निराले;
सांस्कृतिक गरिमा बढ़ा,
हरते जगत् के पक्ष काले;
व्यष्टि-सौम्य समष्टि का––
सम्यक् नियोजित रूप रखते––
वेद यौवन के–धवल सभार के हैं !
वेद भारत के–सभी संसार के हैं !!

•

प्राचीन मधुरा-पुरी (मथुरा)

भगवान् कृष्ण के जन्मस्थल का पता लग गया।

[प्रोफेसर महेशस्वरूप भटनागर, एम० ए०]

हिन्दू गौरव के प्रतीक 'बयाना' तथा विजयगढ़ की यात्रा के उपरान्त हम दोनों (मैं व पुरुषोत्तम जी) मथुरा के लिये चल दिये। आज से चालीस वर्ष पूर्व, मैंने मथुरा प्रथम बार देखी थी। तब से अब तक अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। नगर की जनसंख्या और विस्तार पहले से दूना हो चुका है, परन्तु होली-दरवाजा से नगर के मुख्य बाज़ार में जानेवाली सड़क ज्यों की त्यों लाल पत्थर की पट्टियों की बनी हुई है। इस सड़क पर दिन रात गाड़ियों और पैदल चलने वालों की भारी भीड़ रहती है, क्योंकि 'श्री द्वारिकाधीश जी' का मन्दिर तथा यमुना जी का 'विश्राम घाट' जो तीर्थ-स्थान माने जाते हैं, इसी सड़क पर हैं। यह लाल पत्थर, जिनसे यह सड़क बनी हैं, कितने कठोर होते हैं, कि भारी यातायात के होते हुए इतने दीर्घकाल में भी नहीं घिसते। इसी सड़क के पश्चिमी छोर पर, सामने ऊँचाई पर, मुग़ल सम्राट् औरंगजेब की बनवाई 'ईदगाह मस्जिद' है। यह मस्जिद भी लाल पत्थर की बनी हुई है और इतनी बड़ी है कि हजारों लोग एक साथ नमाज़ पढ़ सकते हैं। इस मस्जिद के निरीक्षण से पता लगता है कि यह इमारत किसी महत्त्वपूर्ण मन्दिर को ध्वस्त कर उसीके पत्थरों से बनाई गई है। इस बात का सबूत स्वयं पत्थर प्रस्तुत करते हैं। ज़रा ग़ौर करने पर दो स्थान ध्यान आकर्षित करते हैं, एक तो बाईं ओर दक्षिण-पश्चिम का पुराना कुआं और दूसरे ठीक मस्जिद की पुश्त पर पश्चिम में 'श्री केशवदेव मन्दिर'। मस्जिद सत्रहवीं शताब्दी की बनी है और भूमि-तल से लगभग ६० फुट ऊंची है। यद्यपि 'केशवदेव मन्दिर' मस्जिद से सटा हुआ है, तथापि मस्जिद से मन्दिर तक जाने का मार्ग नहीं है। वहां से उतरकर, चक्कर काटकर ही मन्दिर तक पहुंचा जा सकता है। मार्ग में वह प्राचीन कुंआ है जिसका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। यह कुंआ बड़े महत्व का है। यदि इसकी बनावट इत्यादि का अध्ययन किया जावे तो बहुत-सी नई बातों का पता लग सकता है जो आजकल के इतिहास

में वर्णित नहीं हैं।

'प्राचीन कूप'—यह कुंआ ईंटों का पक्का बना है जिसपर कहीं-कहीं सफेद चूने का प्लास्टर है। ईंटें अच्छी फुकी हुई और कठोर हैं, जिनको उस प्रदेश में ककईया ईंट' कहते हैं। ईंट और चूना दोनों ही पुराने अर्थात् सहस्र वर्ष से अधिक पुराने हैं। कुएं का भीतरी व्यास ९ फुट के लगभग है। कुएं तक जाने के मार्ग आजकल अवरुद्ध हो चुके हैं। कुएं से लगी पश्चिमी दीवार एकदम ६०-सत्तर फुट ऊंली है (गाजियाबाद के घण्टाघर की चोटी से भी २०-२५ फुट ऊंची)। ऊपर पक्की नालियां बनी, हैं जो अभी भी पुरानी याद ताज़ा करती हैं। कुंए से पानी ऊपर चढ़ाने का यहां प्रबन्ध था। एक बड़ा हौज़ भी टूटा-फूटा मौजूद है। केशवदेव मन्दिर तक यहीं से पानो पहुंचाया जाता था। औरङ्गजेब ने भी इस कुंए का प्रयोग किया। मन्दिर ध्वस्त कर देने के उपरान्त कुएं से जल का प्रवाह मस्जिद की ओर किया गया था, जहां फव्वारे लगाए गए थे और निर्माण कार्य के लिए जल-प्रयोग किया गया था। कुएं में अब भी जल है, परन्तु प्रयोग न किये जाने के कारण गन्दा हो गया है। कुएं के ऊपर वाली ऊंची दीवार पर चील-कौवे बैठते हैं जिनके कारण सारी दीवार गन्दी हो गई है। जल ऊपर चढ़ाने का कार्य कैसे होता था और नल किस प्रकार के थे, चीनी के मट्टी के अथवा धातु के, यह विषय खोज का है। नलों के प्रयोग के बिना फव्वारों में पानी पहुंचाया नहीं जा सकता। इसलिये मेरा अनुमान है कि उस काल में भी नलों का प्रयोग भलीभांति ज्ञात था। संभव है कि नल चीनी मट्टी के अथवा मिट्टी की टाइलों के रहे हों। पत्थर में कटी हुई नालियां तो कहीं-कहीं अब भी दिखाई देती हैं।

कुएं से आगे चलकर मस्जिद के पिछले हिस्से के लिए सड़क गई है। ४० वर्ष पूर्व यहां उजाड़ पड़ा हुआ था और केवल पुराने खण्डहर दिखाई देते थे, परन्तु अब वहां बड़े रमणीक स्थान का निर्माण हो गया है। प्राचीन मथुरा नगरी के खण्डहर और टीले दूर-दूर तक दिखाई देते हैं। त्रेतायुग में यहां पर मधुपुत्र, लवणासुर की राजधानी थी। भगवान् राम के छोटे भाई श्री शत्रुघ्न जी ने लवणासुर से युद्ध किया। लवणासुर ने जनता को अत्यन्त त्रसित कर रक्खा था। युद्ध में लवणासुर मारा गया। तब श्री

शत्रुघ्न जी ने नगर को पुनः बसाया और उसकी शोभा को भी बढ़ाया।

'हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम् ।
शत्रुघ्नो मधुरां नाम पुरीं तत्र चकार वै ॥'

श्री वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में अनेक श्लोक इस प्रसंग पर मिलते हैं, उनमें से केवल चार नीचे उद्धृत किये जाते हैं--

"श्लोक ५ – इयं मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता।
निवेशं प्राप्नुयाच्छीघ्रमेष मेस्तु वरः परः ॥
११ अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभिता।
शोभिता गृहमुख्यैश्च चत्वरापणवीथिकैः।
चातुर्वर्ण्यसमायुक्ता नानावाणिज्यशोभिता॥
१६ तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना निवेश्य मधुरां पुरीम्।
रामपादौ निरीक्षेहं वर्षे द्वादश आगते॥
१७ ततः स ताममरपुरोपमां पुरीं निवेश्य वै विविधजनाभिसंवृताम् ।
नराधिपो रघुपतिपाददर्शने दधे मतिं रघुकुलवंशवर्धनः ॥
[वा० रा०, अध्याय ७०]

इन श्लोकों का तात्पर्य यह है कि श्री शत्रुघ्न जी ने देवताओं से प्रार्थना की, कि यह देवनिर्मित रमणीय मधुपुरी शीघ्र ही मनोहर राजधानी के रूप में वस जाय। तदुपरान्त श्री शत्रुघ्न जी ने अपनी सेना तथा अन्य कर्मचारियों की सहायता से मधुरा पुरी को फिर से बसाया। वह पुरी यमुना के तट पर अर्धचन्द्राकार बसी थी और अनेकानेक सुन्दर गृहों, चौराहों, बाजारों तथा गलियों से सुशोभित थी। उसमें चारों वर्णों के लोग निवास करते थे। नाना प्रकार के वाणिज्य व्यवसाय उसकी शोभा बढ़ाते थे। नाना प्रकार के मनुष्यों से युक्त उस मधुरापुरी को बसाकर श्री शत्रुघ्न जी ने श्री रघुनाथ जी के चरणों के दर्शनों का विचार किया।

उस पुराने टीले का आकार भी चन्द्राकार दिखाई देता है। टीला उत्तर से दक्षिण की ओर कई मीलों में फैला हुआ है और उसका मध्य भाग पूर्व की ओर उन्नतोदर निकला हुआ है। टीले के मध्य से होकर मथुरा से दिल्ली जानेवाली सेण्ट्रल रेलवे की लाइन है। रेलपथ अथवा सड़क के तल से टीले की ऊंचाई ४० फुट से ६० फुट है।

टीले के सबसे ऊंचे भाग पर औरंगज़ेबी–'ईदगाह मस्जिद' बनी है। खण्डहरों को देखने से शीघ्र ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस स्थान पर कभी कोई विशाल नगर रहा होगा। निःसंदेह यह नगर प्राचीन मधुरा-मथुरा-पुरी थी। जहां पर आज मथुरा वसी है, वहां पहले यमुना बहती थी। उसी प्राचीन टीले पर, मस्जिद से लगा, भगवान् कृष्ण का जन्मस्थल है। यहां अनेक ऐसे चिह्न तथा प्रमाण प्राप्त हुए हैं जिनको देख कर सन्देह शेष नहीं रह जाता कि पुरानी मथुरापुरी यहीं थी। यमुना नदी –जैसा मैदान में बहनेवाली नदियों का स्वभाव होता है–पुराने मार्ग से हट गई है।

ईदगाह मस्जिद के पिछले भाग को देखने से पता लगता है कि यह मस्जिद न केवल मन्दिरों के मलवे से बनी है वरन् मन्दिर के मुख्य भाग के ऊपर ही स्थित है। पीछे की दीवार के पत्थर बताते हैं कि पुराने निर्माण पर तोड़-फोड़ और इच्छानुसार मरम्मत के बाद मस्जिद बनाई गई। यह मन्दिर 'केशवदेव मन्दिर' कहलता था। खुदाई करने पर इस मन्दिर के पुराने भाग निकले। खोज करने पर पता लगा, कि श्री कृष्ण जन्मस्थल यहीं पर था। इसके अतिरिक्त और भी अनेक महत्त्वपूर्ण बातों का पता लगा है।

कटरा 'केशवदास' का इतिहास––

द्वापर युग के अंतिम चरण में इसी स्थान पर क्रूरकर्मा कंस के कारागार में भगवान् श्री कृष्ण का जन्म हुआ। पुरातत्त्व विभाग तथा अन्य विद्वानों के खोज कार्य तथा अन्वेषण द्वारा अनेक अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिनसे पता लगता है कि इस स्थान पर अनेकानेक विशाल एवं भव्य मन्दिरों का निर्माण समय-समय पर हुआ। कुछ प्राचीन शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जिनसे निर्माण काल की तिथियों का भी पता चलता है। इस पुराने खण्डहर-क्षेत्र का नाम 'कटरा-केशवदेव' है। मुसलमान काल में यहां के मन्दिर नष्ट कर दिये गए। मुख्य मन्दिर के स्थान पर औरंजेबी ईदगाह मस्जिद बना दी गई। उसी 'केशवदेव' मन्दिर के शेष भाग पर, ठीक मस्जिद के पश्चिम में, 'श्री कृष्ण-चबूतरा' का नवनिर्माण कर दिया गया

है। यही वह पावन स्थल है जहां भगवान् कृष्ण ने जन्म लिया था।

पण्डितों, साधु-संन्यासियों, विद्वानों और भारतीय पुरातत्त्व विभाग के प्रमुख अधिकारियों से बातचीत करने से पता लगा कि सबसे पहले इस स्थान पर, भगवान् कृष्ण के प्रपौत्र 'वज्रनाभ' ने अपने कुलदेवता तथा पूर्वज 'केशवदेव' की स्मृति में एक मन्दिर बनवाया था। उस निर्माण का काल पण्डितों के अनुसार ईसा से ढाई हजार वर्ष पूर्व है। जनश्रुति तथा पौराणिक कथाओं से भी इस बात की पुष्टि होती है।

पुरातत्त्वविभाग ने इस स्थान से एक शिलालेख प्राप्त किया है। यह शिलालेख 'क्षत्रप-शोदास' के समय का है। पुरातत्त्व विभाग इस लेख का समय ८० से ५७ ईसवी पूर्व निश्चित करता है। लेख ब्राह्मी लिपि में है। इसमें लिखा है कि " 'वसु' नाम के एक व्यक्ति ने श्री कृष्ण जन्मस्थान पर एक मन्दिर, एक तोरण द्वार और वेदिका का निर्माण कराया था।" तत्पश्चात् सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के काल में दूसरे बड़े मन्दिर का निर्माण हुआ। आस-पास से बौद्ध और जैन मन्दिरों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। अनेक प्रकार की कलापूर्ण मूर्तियां भी मिली हैं जिनसे सिद्ध होता है कि उन दिनों मथुरा नगर संस्कृति एवं कला का बड़ा केन्द्र था।

विक्रमादित्य के बनाए हुए विशाल कृष्ण मन्दिर को महमूद गजनवी ने सन् १०१७ में लूटा और तोड़ा। महमूद के मीरमुन्शी अलउतवी ने लिखा है कि "महमूद ने एक निहायत उम्दा इमारत देखी, जिसे लोग इंसान की बनाई न मानकर देवताओं की बनाई मानते हैं। शहर के बीचोबीच एक बहुत बड़ा आलीशान मन्दिर है जो सबसे ज्यादा खूबसूरत है। उसका बयान लफजों या तस्वीरों से नहीं किया जा सकता।" सुलतान महमूद ने इस मन्दिर की बाबत खुद लिखा है कि "अगर कोई आदमी इस तरह की इमारत बनवाना चाहे तो उसे दस करोड़ सोने की दीनारें खर्च करनी पड़ेंगी और उसको बनवाने में दो सौ साल से कम नहीं लगेंगे, चाहे उसके लिये बढ़िया-से-बढ़िया तजुर्बेकार कारीगरों को ही क्यों न लगा दिया जाये।"

जब एक बुतशिकन मुसलमान बादशाह मन्दिर की प्रशंसा में ऐसे शब्द लिख रहा है तो अनुमान लगाया जा सकता है कि वह मन्दिर कितना

दिव्य सुन्दर और विशाल रहा होगा।

एक अन्य संस्कृत शिलालेख से पता लगा है, कि संवत् १२०७ वि० (११५० ई) में जब कि महाराज विजयपालदेव मथुरा के शासक थे, 'जज्ज' नामक व्यक्ति ने श्री कृष्ण जन्मस्थान पर एक नया मन्दिर बनवाया। 'श्री चैतन्यचरितामृत' में लेख है, कि जब श्री चैतन्य महाप्रभु मथुरा पधारे, तो उन्होंने जज्ज के बनवाए हुए उसी मन्दिर में विश्राम किया और तीर्थस्नानादि किया।

सोलहवीं शताब्दी में सिकन्दर लोदी के समय में इस भव्य मन्दिर को नष्ट कर दिया गया। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में ओरछा के बुन्देले राजा श्री वीरसिंहदेव ने उसी स्थान पर पुनः केशवदेव मन्दिर का निर्माण पूर्ण किया। इस मन्दिर की ऊंचाई २५० फुट थी और यह इतना भव्य था, कि उस समय के मुगल सम्राट् जहांगीर ने भी इसकी प्रशंसा की। मन्दिर के चारों ओर ऊंची प्राचीर बनवाई गई थी, जिसका अंश अभी तक शेष है। प्राचीर के दखिण-पूर्व के कोने में एक विशाल कुएं का निर्माण कराया गया, जिसके ऊपर एक बुर्जी बनवाई गई। कुएं का पानी ७० फुट ऊंचा उठाकर मन्दिर के प्रांगण में पहुंचाया जाता था, जहां अनेकों फव्वारे चलाये जाते थे। कुआं और बुर्ज जीर्णावस्था में अब भी विद्यमान हैं। इस कुएं का वर्णन पीछे किया जा चुका है। महाराज वीरसिंहदेव बुन्देले ने मन्दिर तथा सम्बद्ध गृहों के निर्माण पर तैंतीस लाख रुपया व्यय किया। फ्रांस का रहनेवाला एक प्रसिद्ध यात्री, जिसका नाम टैपरनीयर था, सन् १६५० ई० में मथुरा आया। उसने अपनी डायरी में इस मन्दिर के विषय में इस प्रकार लिखा है—

"जगन्नाथ पुरी और वाराणसी के बाद सबसे प्रसिद्ध मन्दिर मथुरा का है। यह मन्दिर भारत के अत्यन्त उत्कृष्ट मन्दिरों में से एक है। इसकी बड़ी कुर्सी (PLINTH) अठपहलू बनी है। मन्दिर में जो पत्थर लगे हैं, लाल रंग के हैं। मन्दिर के चारों ओर पत्थरों पर नक्काशी है जिनमें भांति भांति के जानवरों की आकृतियां बनी हुई हैं। विशाल चबूतरे पर आधे में मन्दिर और आधे में जगमोहन बना है। बीच में एक बड़ा मण्डप है। मन्दिर में अनेकों खिड़कियां और गौखें (छज्जे-वारजे) हैं, यह मन्दिर

इतना विशाल है कि यद्यपि बहुत ऊंचाई पर स्थित नहीं है तथापि पांच-छह कोस की दूरी से स्पष्ट दिखाई देता है। मन्दिर बहुत ही ऊंचा और भव्य है।"

मनूची नाम का इटैलियन यात्री बहुत दिनों तक सत्रहवीं शताब्दी ईसवी में भारत में रहा और उसने कई बार केशवदेव मन्दिर के दर्शन किये। मनूची ने भी केशवदेव मन्दिर का विशद वर्णन किया है। वह कहता है कि केशवदेव मन्दिर का स्वर्णाच्छादित शिखर इतना ऊंचा है कि वह छत्तीस मील दूर, आगरे से भी दिखाई देता है। जन्माष्टमी के दिन जब इस मन्दिर के शिखरों पर प्रदीप जलाए जाते हैं तो उनका प्रकाश आगरे से अच्छी तरह दिखाई देता है। बादशाह भी इस प्रकाश को देखा करते थे।

औरंगज़ेब इस मन्दिर की शान को सहन न कर सका। तख्त पर बैठने के दस वर्ष पूर्ण होते ही उसने हिन्दू मन्दिरों का ध्वन्स आरम्भ कर दिया। सन् १६६६ ई० में केशवदेव मन्दिर को उसने नष्ट कर दिया और मन्दिर के पत्थरों से ही मन्दिर की बड़ी कुर्सी के एक भाग पर, ईदगाह मस्जिद बनवा दी। मस्जिद इतनी ऊंचाई पर बनी है कि आगरा-मथुरा रेल-लाइन अथवा सड़क से, कई मील से दिखाई देने लगती है। उस समय से यह स्थान खण्डहरों के रूप में पड़ा है और हिन्दुओं की दुर्बलता और उपेक्षा का प्रतीक बना रहा है।

सन् १८०३ ई० में मथुरा ब्रिटिश साम्राज्य में आ गया। सन् १८१५ ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कटरा केशवदेव को नीलाम कर दिया। बनारस के राजा पटनीमल ने यह नीलाम खरीदा और उन्हींके उत्तराधिकारियों के स्वामित्व में यह स्थान रहा आया। मथुरा के मुसलमानों ने, सिविल कोर्ट द्वारा, कटरा केशवदेव पर अधिकार जमाना चाहा परन्तु वे मुकदमा हार गए। मुसलमानों ने अधिकार प्राप्त करने के लिए इलाहाबाद हाइकोर्ट में अपील की, परन्तु वहां भी उनकी हार हुई। उस समय कटरा केशवदेव पर बनारस के राजा रायकृष्णदास का अधिकार था। महामना पंडित मदनमोहन मालवीय के प्रयास से श्री जुगलकिशोर बिरला ने सन् १९५१ ई० में 'श्री कृष्ण जन्मभूमि ट्रस्ट' की स्थापना की। ट्रस्ट

को कटरा केशवदेव पर अधिकार प्राप्त हो गया। अब ट्रस्ट का नाम "श्री कृष्ण जन्मस्थान सेवा संघ" है और इसके अध्यक्ष हैं बिहार प्रान्त के राज्यपाल श्री अनन्त शयनम् आयंगर। ट्रस्ट बड़ी लगन के साथ कार्य कर रहा है और बहुत-सा निर्माण-कार्य पूर्ण हो चुका है। जो कार्य हो चुका है, उसमें से मुख्य यह है--(१) पुराने प्राचीर के उत्तरी तथा पश्चिमी भाग, (२) श्री कृष्ण मन्दिर, जिसमें बाल-विग्रह की स्थापना हो चुकी है, (३) जन्म-स्थल-चबूतरा तथा उसपर एक छतरी (चबूतरे पर संगमरमर का फर्श है। यह चबूतरा लगभग १२ फुट ऊंचा है।) और (४) रंगमंच। यहां एक टयूबवेल भी बन गया है। इसका जल बड़ा मधुर और शीतल है। नवनिर्मित मन्दिर और रंगमंच भी दर्शन योग्य हैं।

नवनिर्मित कृष्ण चबूतरा ऊंचा है और यहां से चारों ओर का दृश्य साफ दिखाई देता है। पुरानी मथुरा नगरी के खण्डहर दूर-दूर तक दिखाई देते हैं। कुछ पुराने शिव मन्दिर शेष हैं। एक स्थान पर खुदाई की गई, तो वहां से राख, घड़ों के टुकड़े और सोने के घुंघरू मिले। यह चीजें ३० फुट की गहराई पर प्राप्त हुईं। कदाचित् वह स्थान किसी सुनार का रहा होगा। अनेक प्रकार के मट्टी के बरतन व पत्थर की मूर्त्तियां भी मिली हैं।

कृष्ण चबूतरे के २०० गज पश्चिम में एक विशाल और अद्भुत सरोवर है, जिसे 'पोतड़ा-कुण्ड' कहते हैं। यह पक्का सरोवर है, जिसके चारों ओर जल तक पहुंचने के लिए सीढ़ियां हैं। निर्माण में पकी हुई ईंटों और चूने का प्रयोग किया गया है। उत्तर की ओर रपटदार गो-घाट है। जनश्रुति के अनुसार यह सरोवर बहुत पुराना है। इसके घाटों पर स्त्रियों के स्नान के लिये विशेष प्रबन्ध है। सरोवर बिना देखभाल के टूटता जा रहा है। जब मैं इसे देखने गया, उस समय इसमें जल बहुत नीचाई पर था, कम-से-कम २५ फुट नीचे चारों ओर चहार दीवारी है। यह निर्माण और ईंटें चार-पांच सौ वर्ष से अधिक पुराना नहीं मालूम होते। यमुना नदी के हट जाने पर ही इस बड़े सरोवर का निर्माण किया गया होगा।

यह स्थल खोज-सामग्री का भण्डार है। इन खण्डहरों में पुराना इतिहास दबा पड़ा है। सरकार और विद्वानों को इस ओर ध्यान देना चाहिये।

●

कुरआन शरीफ का वास्तविक स्वरूप

(ले० श्री पं० देवप्रकाश जी अमृतसरी अरबी फाजिल)

[इस लेख के लेखक एक कर्मठ, साधु-स्वभाव और इस्लामी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् हैं इनके लेखों में कटुता का सदा अभाव रहता है और हर बात की गहराई तक स्वयं पहुंचने तथा पाठकों को पहुंचाने का इनका लक्ष्य सदा रहता है इसलिये मैंने उनके द्वारा यह लेखमाला आरम्भ कराई है। पाठकों के ज्ञान में इस लेखमाला से अवश्य वृद्धि होगी और एक विषय में निष्पक्ष विचार करने की सुविधा मिलेगी।

वेदपथ में खोजपूर्ण लेखों को विशेष रूप से दिया जाया करेगा। पाठक गण पढ़ें और लाभ उठायें। —सम्पादक]

गत तीन मास मैं त्यागमूर्ति पूज्य श्री स्वामी विज्ञानानन्द जी सरस्वती के आदेशानुसार उनके संन्यासाश्रम गाज़ियाबाद में रहा। वहां मेरे पुराने मित्र और परम सहयोगी श्री० ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ महारथी भी थे। यह आश्रम अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। यहां दर्शनों के प्रकाण्ड विद्वान् श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री दार्शनिक विषयों का अनुसन्धान विगत कई वर्षों से कर रहे हैं। इनके द्वारा 'सांख्यदर्शन का इतिहास' सांख्य सिद्धान्त तथा सांख्यदर्शनभाष्य प्रभृति ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और अब वेदान्त दर्शन भाष्य प्रकाशित हो रहा है। दार्शनिक जगत् ने आपके ग्रन्थों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मेरे आश्रम-निवासकाल में मेरे मित्र श्री ठाकुर अमरसिंह जी ने मुझे प्ररणा की कि मैं भी एक लेखमाला इस्लाम के मान्य ग्रन्थ कुरआन शरीफ के सम्बन्ध में ऐसी प्रकाशित करूं कि जिससे कुरआन का वास्तविक स्वरूप जनता के समक्ष आ जाय। अपने मित्र की उक्त आज्ञा को शिरोधार्य कर मैं इस लेखमाला को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूं। कुरआन शरीफ के अनेक अनुवाद विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो चुके हैं परन्तु अनुवाद का पढ़ लेना मात्र कुरआन शरीफ के रहस्य को समझने के लिये पर्याप्त नहीं है। अतः इस लेखमाला में मैं कुछ धाराओं को प्रस्तुन कर रहा हूं जिनका कुरान के अर्थों से घनिष्ट सम्बन्ध है। कुरान के तात्त्विक विषयों का विवेचन, मैं इन धाराओं को प्रस्तुत करने के पीछे करूंगा।

एक आवश्यक निवेदन

कुरआन के प्राप्त होने के सम्बन्ध में जो वाक्य और इस्लामी सिद्धांत के अनुसार मुसलमानों ने प्रयुक्त किये हैं उन्हीं के ही शब्दों को हम प्रयोग में लाये हैं उसका मतलब यह नहीं कि हम भी कुरआन को किसी विशेष दूत द्वारा किसी विशेष स्थान से उतारा और लाया गया मानते हैं। इति।

धाराओं का आरम्भ

१--पहली धारा है **मक्की वा मदनी**--मक्की वह सूरतें हैं जो हज़रत साहिब के मक्का में रहने की हालत में प्राप्त हुईं और मदनी वह जो मदीना रहने के समय प्राप्त हुईं। इस बात को जान लेने से कुरआन की आयतों की शृङ्खला और उसके हुकमों के निरस्त होने या आज्ञाओं के परिवर्तन होने का ज्ञान होता है और बहुत-सी अन्य बातों का पता लगता है जिनका वर्णन हम कुरआन के विवरण के साथ-साथ भी करेंगे।

२--**हज़री वा सफ़री**--हज़री वह आयतें हैं, जो मक्का तथा मदीना में रहने की स्थिति में प्राप्त हुईं, सफरी वे जो यात्राकाल में प्राप्त हुईं।

३--**निहारी वा लयली**--दिन में प्राप्त होने वाली निहारी और रात्रि को प्राप्त होने वाली लयली।

४--**सैफ़ी वा शतायी**--ग्रीष्म काल में प्राप्त होने वाली सैफी और शीत काल में प्राप्त होने वाली शतायी।

५--**फ़राशी व नौमी**--जो आयतें किसी पत्नी के बिस्तर पर होने के समय हज़रत साहिब को प्राप्त हुईं वे फ़राशी और जो रात्रि के समय स्वप्नावस्था या पलक झपकने के समय प्राप्त हुईं वे नौमी।

६--**अरजी वा समावी**--वह आयतें जो भूमि अथवा भूमि के नीचे किसी खोह में प्राप्त हुईं वे अरज़ी तथा जो आयतें अन्तरिक्ष या आसमान पर प्राप्त हुईं वे समावी कहलाती हैं।

७--**प्रथम आयत**--सबसे प्रथम कौन-सी आयत प्राप्त हुई, इसपर इस्लामी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है, यथाअवसर हम इस विषय पर प्रकाश डालेंगे।

८--**सबसे अन्तिम में कुरआन का उतरने वाला भाग**--इसमें भी

विभिन्नता है, यथासमय इस बात की भी चर्चा की जायेगी ।

६—कुरश्रान का वह भाग जो हजरत साहिब के मित्रों श्रादि के मुँह से निकला। इसके कतिपय उदाहरण हम नीचे लिखते हैं जिससे पाठकों को विदित हो जावेगा कि कुरश्रान श्रायतें हज़रत मुहम्मद साहिब के श्रतिरिक्त श्रन्य लोगों की भी उपज हैं।

(१) तिरमिज़ी ने इब्ने उमर से रिवायत की है, कि हज़रत साहिब ने फ़रमाया कि निस्सन्देह खुदा ने हज़रत उमर की जिह्वा श्रौर मन को सत्य का केन्द्र बनाया हैं।

(२) इब्ने उमर कहते हैं ऐसे मुश्रामिलों में जहां उमर की सम्मति एक श्रोर हो श्रौर दूसरों की सम्मति उससे विपरीत हो इस पर ऐसा कभी नहीं हुश्रा कि कुरश्रान का उतरना हज़रत उमर की राय के करीब न हुश्रा हो (कुरश्रान का मूल श्राधार इस बात से भली प्रकार समझ में श्रा सकता है)।

हज़रत उमर से रिवायत है कि मैंने कहा—

(३) **या रसूलुल्लाह श्रवित्तखज़ना मिम्मुकामे इबराहीमा मुसल्ला,** श्रर्थात् या श्रल्लाह के रसूल, श्रच्छा होता कि हम इब्राहीम के मुकाम को नमाज़ पढ़ने का रुख निश्चित करते, बस यही उमर की सम्मति कुरान की श्रायत बन गई।

(४) हज़रत उमर ने कहा—**या रसूलुल्लाह लौ श्रमरता निसाश्रका श्रँय्यहतजिबन** श्रर्थात् क्या ही श्रच्छा होता कि श्राप श्रपनी पत्नियों को परदा करने की श्राज्ञा देते, तो उमर की यही उक्ति कुरश्रान की श्रायत का रूप धारण करके परदे की श्रायत बन गई।

यह श्राज्ञा हज़रत की पत्नियों को बहुत श्ररुचिकर प्रतीत हुई, तो उन्होंने हज़रत साहिब से विमुखता धारण कर ली।

इस पर हज़रते उमर ने हज़रत की पत्नियों के विषय में कहा।

(५) **फ़क़ुल्तो लहुन्ना श्रसा रब्बोहू श्रन तल्लका कुन्ना श्रँय्योबद्दिला हू श्रज़्वाजन खैरम्मिन् कुन्ना** (खैरम्मिन् कुन्ना), श्रर्थात् निकट ही खुदा का नबी तुम को तलाक दे दे (छोड़ दे) तो खुदा उनको तुम से उत्तम पत्नियां प्रदान करे।

उमर की धमकी केवल सफल ही नहीं हुई, बल्कि कुरान का रूप भी धारण कर गई। (तजरीदेबुखारी पृ० ६८)

(६) कहा जाता है कि जब इस ग्रायत का उतरना कहा गया कि खुदा ने ग्रादमी को धुनी हुई मिट्टी से उत्पन्न किया तो इसपर हजरत उमर ने कहा,

फ़तबारकल्लाहो ग्रहसनुल खालिकीन्

(७) यह उमर महोदय का कथन ही ग्रायत बन गया।

एक यहूदी ने ह० उमर को कहा, कि जिबरील हमारा शत्रु है। इसके उत्तर में उमर ने कहा कि--

मन् काना ग्रदुव्व लिललाहे वा मलाएकतेही व रुसूलेही वा जिब्रीला वा मीकाला फ़इन्नल्लाहा ग्रदुव्वुलिल काफ़िरीन (ग्रदुव्वुल्लिलकाफिरीन)

बस यही उमर का उत्तर कुरग्रान की ग्रायतें बन गयीं।

(८) सईद बिन जुबैर से रवायत है-कि जब बीबी ग्राएशा के विषय में कहा गया तो मुग्राज़ ने कहा, सुबहानक हाज़ा बुहतानुन् ग्रज़ीम।

इसी प्रकार ज़ैद बिन हारिसा ग्रौर ग्रबू ग्रय्यूब ग्राम तौर से इस वाक्य को कहा करते थे फिर यही कुरान की ग्रायतों में दर्ज हो गया।

(९) उहद के युद्ध में मुसग्रब बिन उमैर ने कहा--

वा मा मुहम्मदुन इल्ला रूसूल कद ख़लत मिन् कब्लेहिर्रुसल ग्रफ़ इम् माता ग्रौ कुतेलन्कलव्तुम ग्रला ग्राकांबिकुम

ग्रर्थात् हज़रत मुहम्मद केवल एक दूत है। इनसे पूर्व भी ऐसे बहुत से रसूल गुज़र चुके हैं फिर क्या यदि वह मृत्यु को प्राप्त हो जायें या वध कर दिये जावें तो क्या तुम लोग पीठ दिखाकर भाग जाग्रोगे--हज़रत मसग्रब का यह कथन भी कुरान की ग्रायत बन गया।

(१०) इसी प्रकार जिब्रील की जिह्वा पर **वमा नतनज्ज़लुन इल्ला बग्रमरे रब्बेका**

(११) ग्रौर फरिश्तों की जिह्वा से--**वा मा मिन्ना इल्ला लहू मकामुन मालूम वा इन्ना लनहनुस्साफ़ूनवा इन्ना लनहनुल मुसब्बेहून।**

(१२) बन्दों की ज़ुबान पर वारद हुग्रा--**इय्याका नाबुदोव इय्याका नस्तईन।**

इसके ग्रतिरिक्त कुरान में ग्रन्य लोगों का कलाम है वह बहुत ग्रधिक है उसे हम फिर लिखेंगे वह परस्पर बातचीत है। [बाकी फिर]

साहित्यसमीक्षा

वेदवाणी का अग्निहोत्रांक

वेदवाणी अपने ढंग की एक अनूठी पत्रिका रही है। श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट की यह मासिक पत्रिका है इसको चलते अब अठारहवां वर्ष चल रहा है। इस ट्रस्ट ने वैदिक साहित्य प्रचार का अद्भुत कार्य किया है। वैदिक साहित्य तथा इस पत्रिका का संचालन तथा सम्पादन महाविद्वान् स्वर्गीय श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु करते थे। वेदवाणी के विशेषाङ्क "वेदाङ्क" के नाम से निकाला करते थे और प्रत्येक वेदाङ्क में स्वाध्यायशीलों के लिए प्रचुर स्वाध्याय सामग्री होती थी इसलिए प्रत्येक स्वाध्यायशील व्यक्ति उन वेदाङ्कों को जिल्द बांधकर सुरक्षित रखता था। श्री जिज्ञासु जी के देहावसान के पीछे वेदवाणी का सम्पादन उनके सुयोग्य शिष्य विद्वद्वर श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक के हाथ में रक्खा गया है। इस वर्ष का विशेषांक श्री पं० युधिष्ठिर जी ने अग्निहोत्राङ्क नाम से निकाला है। वेदवाणी मासिक के ही बड़े साइज के पूरे एक सौ पृष्ठों का "अग्निहोत्राङ्क" लगभग २० प्रकाण्ड पण्डितों के अग्निहोत्र विषयक पाण्डित्यपूर्ण लेखों से युक्त संग्रह करने, पढ़ने तथा सुरक्षित रखने योग्य है। यह अङ्क केवल उत्तमोत्तम लेखों से ही युक्त नहीं है, इसमें कागज़ भी उत्तम लगाया गया है और १ सौ पृष्ठों का यह अङ्क १) रु० में बहुत सस्ता है। मैं इस सुन्दर और लाभदायक लेख-संग्रह के लिए श्री मीमांसक जी को बधाई और धन्यवाद देता हूं।

सम्पादक—वेदपथ

आर्योदय साप्ताहिक का राष्ट्ररक्षा अङ्क—

श्री पं० भारतेन्द्रनाथ जी सम्पादन कला में निपुण व्यक्ति हैं। उन्होंने आर्योदय को आर्यसमाज के साप्ताहिक पत्रों में उच्च आसन पर आसीन कर दिया है। आर्योदय के अङ्क प्रायः समय और आवश्यकता के अनुकूल अति सुन्दर और उपयोगी होते हैं, यह राष्ट्र-रक्षा अङ्क भी समय और आवश्यकता के सर्वथा अनुकूल है।

१६ पेजी बुक साइज के लगभग पौने तीन सौ पृष्ठों का यह अङ्क ४० लेखों और २० कविताओं से युक्त बहुत सुन्दर और उत्तम है; मैं ऐसे उपयोगी

अङ्क के लिए सम्पादक जी को वधाई और धन्यवाद देता हूं।

महर्षि दयानन्द और राजनीति—इस पुस्तक के लेखक त्यागी, तपस्वी और विद्वान् संन्यासी संसत्सदस्य श्री स्वामी रामेश्वरानन्द जी महाराज हैं। यह पुस्तक क्या है, रत्नों की छोटी-सी पिटारी है। महर्षि दयानन्द जी ने राजनीति-विषय पर अपने ग्रंथों में वेदादि सद्ग्रंथों के प्रमाणों से कहां-कहां क्या-क्या लिखा है, ऋषि के उन संदर्भों का इस पुस्तक में संग्रह है। ११० पृष्ठों की स्कूली साइज की इस पुस्तक में छोटे-छोटे लगभग सवा दो सौ सन्दर्भ हैं। ऋषि ने राजनीति के भिन्न-भिन्न अंगों पर उत्तमोत्तम विचार सप्रमाण दिये हैं, उन सबका यह संग्रह गागर में सागर के समान है। यह पुस्तक प्रत्येक समझदार व्यक्ति को अवश्य पढ़नी चाहिये। मूल्य भी ५० पैसे थोड़ा ही है; गुरुकुल घरोंडा, ज़िला करनाल से प्राप्य है।

पंचमहाभूत विज्ञान—इस पुस्तक के लेखक श्री भरतसिंह जी वैद्य हैं। जीवन प्राकृतिक-चिकित्सालय, ग़ालिबपुर ज़ि० मुज़फ्फरनगर से लगभग पौने दो सौ पृष्ठ की यह स्कूली साइज की पुस्तक २) रु० में मिलती है। लेखक महोदय यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सक हैं पर वेदों के परम भक्त और बहुत स्वाध्यायशील हैं; इस कारण पुस्तक प्रमाणों से भरपूर है और पढ़ने तथा विचारने योग्य है। पञ्चभूतों के विज्ञान के साथ बहुत से ज्ञातव्य विषयों का समावेश इस पुस्तक में हुआ है, अतः पुस्तक उपादेय है।

●

(पृष्ठ ३३ का शेष)

विरोध करने वाले संदर्भों तथा अन्य अस्वाभाविक, असम्भव और मिथ्या गाथाओं की उपस्थिति में पुराणों का संशोधन एक ऐसा स्वप्न रहेगा, जो कभी यथार्थ-रूप में परिणित नहीं हो सकता। फिर क्यों न हम इन तथा-कथित शास्त्र नामधारी रचनाओं से छुट्टी पाकर आस्तविक ईश्वरीय-ज्ञान के स्रोत वेदों की शरण में आयें, जिनके लिए प्राचीन और अर्वाचीन सभी विद्वानों की प्रशस्तिपूर्ण एवं गौरवयुक्त सम्मति रही है।

●

विरजानन्द वैदिक संस्थान के प्रकाशन

१—**सत्यार्थप्रकाश-विषयनिर्देशिका**—यह विस्तृत विषयसूची स्थूलाक्षर सत्यार्थप्रकाश के तृतीय संस्करण के साथ प्रकाशित की जासकी है। पहले दो संस्करणों को खरीदने वाले ग्राहकों की सुविधा के लिये इसकी कुछ प्रतियां अलग छपवा दी गई हैं। जिनके पास सत्यार्थप्रकाश का पहला दूसरा संस्करण है, वे इसे मंगाकर पूरा लाभ उठा सकते हैं। थोड़ी प्रतियां शेष हैं, जल्दी करें। मूल्य २.५०

२—**सत्यार्थप्रकाश का प्रभाव**—'सत्यार्थप्रकाश' लिखे जाने के अस्सी वर्ष पश्चात् महर्षि के अनन्य भक्त श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी ने यह प्रबन्ध लिखा, जो एक प्रतिवेदन है, इस बात का–कि गत अस्सी वर्ष में ऋषि दयानन्दानुमोदित है, ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनिपर्यन्त [जिन्हें प्रबन्धलेखक ने 'विरजानन्द मुनिपर्यन्त' लिखा है] महाशय महर्षियों के मन्तव्य कहां तक सर्वत्र भूगोल में प्रवृत्त हो पाये हैं; जैसी कि कामना ऋषि ने 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' के प्रारम्भ में प्रकट की है। मूल्य १.००

३—**स्वाध्याय**—विविध विद्वानों के वेदविषयक गवेषणापूर्ण निबन्धों का संग्रह है।

मूल्य १.००

४—**स्वाध्याय सन्दोह**—(द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण), लेखक—श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ। प्रतिदिन स्वाध्याय के लिये सर्वोत्तम ग्रन्थ। विभिन्न विषयों को लक्ष्यकर वेदों से संकलित ३६७ मन्त्रों की अतीव ललित एवं रोचक भाषा में व्याख्या, वेदमन्त्रों, उपनिषदों तथा अन्य शास्त्रों के प्रसंगानुकूल सहस्रों उद्धरण सहित स्वयं वेद का स्वाध्याय करने वाले तथा प्रवचन करने वाले महानुभावों के लिये अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ। द्वितीय संस्करण की बहुत थोड़ी प्रतियां शेष हैं। मूल्य ६.००

५—**सावित्रीप्रकाश**—लेखक—श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ। गायत्रीमन्त्र की बहुत सुन्दर प्रामाणिक शास्त्रीय व्याख्या। उपासना सम्बन्धी अनेक तत्त्वों तथा गायत्रीमन्त्र के जप की विधि सहित।

मूल्य १.००

६—**जीवन की भूलें**—श्री स्वामी वेदानन्दतीर्थ जी का स्वलिखित जीवनचरित।

मूल्य ०.५०

प्रकाशनों का पृथक् सूचीपत्र निःशुल्क मंगावें।

अध्यक्ष

विरजानन्द वैदिक संस्थान
गाजियाबाद (मेरठ)
(उत्तर प्रदेश)

सांख्यदर्शन का इतिहास——सांख्यदर्शन के सम्बन्ध में फैली भ्रान्तियों का युक्ति-युक्त एवं प्रमाण सहित खण्डन। सांख्यदर्शन की प्राचीनता के साथ अनेक दार्शनिक एवं ऐतिहासिक विवेचन सहित । लेखक श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री को इस ग्रन्थ पर प्राप्त पुरस्कार—

१२००) मंगलाप्रसाद पुरस्कार, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

१२००) उत्तर प्रदेश सरकार ।

१०००) विहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना ।

१०००) सेठ हरजीमल डालमिया ट्रस्ट, नई दिल्ली ।

२० × ३०/८ आकार के लगभग ६०० पृष्ठों में पूर्ण; बढ़िया जिल्द, मूल्य ३०)रु०

सांख्यदर्शन-विद्योदयभाष्य—भाष्यकार श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री । विद्वान् भाष्यकार ने जीवन का पर्याप्त भाग लगाकर सांख्यशास्त्र का ऊहापोहपूर्वक मन्थन और विवेचन किया है, उसी के परिणामस्वरूप जो यथार्थ विचाररूपी 'नवनीत' वह संगृहीत कर पाये हैं, उसे परम्परागत भाष्यशैली को अवहेलित न करते हुए सहृदय विज्ञ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने के उद्देश्य से यह भाष्य लिखा गया है ।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान् श्री डा० वासुदेवशरण अग्रवाल की सम्मति—

"सांख्यदर्शन का विद्योदयभाष्य देखकर चित्त प्रसन्न हुआ । यह अत्यन्त स्पष्ट और विशद है । पूर्वपक्ष-उत्तरपक्ष की पृष्ठभूमि में सूत्रार्थ को समझाने का श्लाघनीय प्रयत्न किया गया है । इस भाष्य के द्वारा सांख्यशास्त्र को समझने के लिये नया उत्साह प्राप्त होता है । 'ईश्वरासिद्धेः' सूत्र [१।५७] के मूल में सांख्यदर्शन को ईश्वर की असिद्धि अभीष्ट नहीं थी, वल्कि ईश्वर के तथाविध उपादान कारण होने का निराकरण अभिमत था, इस व्याख्या से सन्तोष हुआ ।······आशा है लेखक का दूसरा ग्रन्थ [सांख्य-सिद्धान्त] भी गतिशील होगा ।"

१८ × २२/८ आकार के लगभग ३७५ पृष्ठों में पूर्ण; बढ़िया जिल्द, मूल्य ८)रु०

सांख्यसिद्धान्त—श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री का सांख्यविषय पर यह तीसरा ग्रन्थ 'सांख्य-सिद्धान्त' एक विश्लेषणात्मक रचना है । इसमें सांख्यसिद्धान्तों की तथ्यता को अद्यतनीन विज्ञान के आलोक में अध्ययन करने का स्तुत्य प्रयत्न किया गया है। पुरुष, प्रकृति, विकार इन तीन अध्यायों में जगत् पहेली की जो चीर-फाड़ की गई है, उसका गंभीरता से अवलोकन कर पाठक स्वयं उसकी सार्थकता, सत्यता, उत्कृष्टता और अचूकता का अनुभव कर लेंगे ।

ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय से प्रभावित होकर 'विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली' के अध्यक्ष श्री डॉ० दौलतसिंह कोठारी जी ने इस ग्रन्थ का 'प्राक्कथन' लिखा है ।

१८ × २२/८ आकार के लगभग ५७५ पृष्ठों में पूर्ण; बढ़िया जिल्द, मूल्य १६)रु०

सत्यार्थप्रकाश, स्थूलाक्षर (सटिप्पण)—

'विरजानन्द वैदिक संस्थान' के संस्थापक महाविद्वान् स्वर्गीय वेदानन्दतीर्थ जी महाराज ने 'सत्यार्थप्रकाश' पर विद्वत्तापूर्ण अद्भुत टिप्पणी लिखी है, उसके सहित यह लगभग ७०० पृष्ठों का २०×२६×४/ साइज पर २० प्वाइन्ट टाईप में फ़ोटो ऑफ़-सैट पद्धति से दो रंगों में छपा हुआ, अत्युत्तम सुदृढ़ जिल्द, अशुद्धिशून्य, अति सुन्दर संस्करण है। इसके दो संस्करण हाथों हाथ बिक चुके हैं। यह तीसरा संस्करण छपकर तैयार है।

आरम्भ में अनेक पाठों के विषय में सम्पादकीय विवरण, तथा सत्यार्थप्रकाश के कतिपय कठिन स्थलों का स्पष्टीकरण दे दिया गया है। अन्त में सत्यार्थप्रकाश पठित समस्त प्रमाणों की सूची तथा विस्तृत विषयनिर्देशिका, आधुनिक रीति पर अकारादि क्रम से तयार कर जोड़ दी गई हैं। आचार्य के इस ज्ञान-सागर आगार ग्रन्थ **सत्यार्थप्रकाश** के संस्करण को आर्य जनता ने बड़ी उत्कण्ठा के साथ पसन्द किया है। आज ही मूल्य भेजकर अपनी प्रति अधिकृत करें।

मूल्य १५) रु०

अध्यक्ष
विरजानन्द वैदिक संस्थान
गाज़ियाबाद (मेरठ),
[उत्तर प्रदेश]

यज्ञ चिकित्सा

(YAJ NOPATHY)

[लेखकः—डाक्टर सोभराज के० आर्य]

पहले लेख में आप ने पढ़ा कि मैं यज्ञ चिकित्सा को और सब तरीकों (Systems) से रोगों को सदा के लिये नाश करने का सर्वोत्तम तरीका क्यों मानता हूं। अब हमें ये देखना है कि रोग होते क्यों हैं और उनको नष्ट करने में यज्ञ चिकित्सा क्या सहायता प्रदान करती है।

वेद जो हमारे प्राचीन सभी सत्व विद्याओं की पुस्तक और ईश्वरीय ज्ञान है, उनमें रोग उत्पत्ति के तीन कारण वर्णन किये गये हैं।

(१) शरीर में आंतरिक विष
(२) क्रिमि तथा जीवाणु (Germs)
(३) त्रिदोष (वात-पित्त-कफ)

यदि हम इन तीन कारणों (CAUSES) से बचे रहें तो हमें कोई भी रोग नहीं सतायेंगे।

शरीर में आंतरिक विषः—यह शरीर में हर समय उत्पन्न होता रहता है क्योंकि हम सारे दिन कुछ न कुछ करते रहते हैं जिससे हमारे शरीर के जीवाणुओं (CELLS) में टूट फूट होती रहती है वह टूटे। हुए जीवाणु बाहर निकलने चाहिये। दूसरे टूट फूट के भरने और बढ़ोतरी के लिये जो हम भोजन करते हैं उनमें से जो अंश शरीर के अन्दर खप सकते हैं वह रक्त हड्डी मांस आदि बन जाते हैं शेष जो मल रह जाता है वह भी बाहर निकलना चाहिए। यदि ये दोनों टूटे फूटे अंश और मल पूर्णतः बाहर नहीं निकलते तो शरीर के अन्दर इकट्ठे होते रहते हैं और समय पाकर विकार पैदा होता है। जो रोग का कारण बन जाता है।

शरीर से विष तीन मार्गों से बाहर निकलता है।

(१) मलः—हम जो भोजन इत्यादि करते हैं वह कई रसों से मिलता हुआ आमाशय में पहुँचते ही एक तरल पदार्थ बन जाता है जिसको "केलोस" कहते हैं बाकी जो ठोस पदार्थ रह जाता है वह आंतों द्वारा मल के रूप में निकल जाता है। इसी कारण हमारी आंतें बहुत मुलायम और चिकनी होती है जिससे वह ठोस पदार्थ गुजरते समय कोई कष्ट नहीं होता और मल का विकास भली प्रकार होता रहता है। यदि अप्राकृतिक भोजन जैसे मांस, अण्डे, चाय, शराब, तम्बाकु आदि के खाने से हमारी आंतों में

खुरदरापन और शक्ति आ जाती है तो मल का निकास ठीक न होने के कारण अन्दर सड़ता रहता है जिससे एक तो कब्ज दूसरे वायु (GAS) उत्पन्न होने लगती है और जब वह ऊपर चढ़ती है और जिस अंग पर उसका प्रभाव पड़ता है वह अंग रोगी बन जाता है। प्रकृति रोग के द्वारा उस मल को शरीर से बाहर निकालती है।

(२) मूत्रः—आमाशय (Stomach) में भोजन से बना हुआ तरल पदार्थ "**केलोस**" जब जिगर (LIVER) में पहुँचता है तो उनको "केमोस" कहते हैं। यहां इन तरल पदार्थों के चार भाग होते हैं।

(क) झाग (EFFERVE SCENCE) की भांति जो सब से ऊपर रहता है जिसको "**सफिरा**" कहते हैं। इसका स्वभाव अग्नि की भांति गरम-शुष्क (HOT-DRY) होता है।

(ख) "रक्त" जो बीच में रहता है जिसका स्वभाव वायु की तरह गर्म तर (HOT-WET) होता है।

(ग) "सौदा" जो तले में रहता है जिसका स्वभाव मिट्टी की तरह सर्द शुष्क (COLD-DRY) होता है।

(घ) "बलगम" (कफ) जो ठीक नहीं पचता है जिसका स्वभाव पानी की तरह सर्द तर (COLD-WET) है।

इन चारों के अतिरिक्त जो शेष रह जाता है वह मूत्र के रूप में गुर्दों (KIDNEY) में से होता हुआ मसाने (BLADDER) में इकट्ठा होकर बाहर निकल जाता है यदि इसका निकास ठीक नहीं होता तो रोग उत्पन्न हो जाता है।

(३) (SWEAT):—जिगर (LIVER) में से बने हुए रस नाड़ियों के द्वारा शरीर में फैल जाते हैं और अंगों में पहुंचते ही फिर उनमें उफान आता जाता है और प्रत्येक अंग अपना आवश्यक भाग उसमें से ले लेता है जो शेष रहता है वह पसीने के रूप में त्वचा के रोम छिद्रों द्वारा बाहर निकल जाता है। यदि हमारी त्वचा साफ नहीं होगी तो रोम छिद्र बन्द होने के कारण पसीने के निकास में बाधा पड़ेगी जिसके कारण शरीर के अन्दर का विष नहीं निकल सकेगा जो रोग का रूप ले लेगा।

इन तीन मार्गों से आंतरिक विष यदि भली प्रकार बाहर निकलता रहे तो किसी भी रोग के होने की सम्भावना नहीं रहेगी। इस कारण **महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती** ने अपने "**सत्यार्थ प्रकाश**" में लिखा है कि मनुष्य को **यम** और **नियमों** का पालन करना चाहिये अर्थात् हमें वैर और विरोध त्याग कर सत्य मानना कहना और उस पर चलना चाहिये। काम इन्द्रियांवश में करके मन वचन और कर्म से चोरी का त्याग करना चाहिये,

कभी भी अभिमानी और लालची नहीं होना चाहिये। इन **यमों** का पालन करते हुये हमें शरीर से मल इत्यादि त्याग करके शुद्धता प्राप्त कर धीरज से कष्टों का सहन करते हुये पुरुषार्थी बन कर हानि-लाभ दुःख-सुख का ध्यान न करते हुये। हमें धर्म ग्रन्थ पढ़ना और पढ़ाना चाहिये तथा अपनी आत्मा को विशेष प्रार्थना तथा **"हवन यज्ञ"** द्वारा ईश्वर के आधीन करना चाहिये। जब हम इन बातों पर चलने लगेंगे तो हमारा वात संस्थान (NERVOUS SYSTEM) जाग्रत होगा जिससे आंतरिक विष का बराबर निकास होता रहेगा और हमारी रोग निवारक शक्ति (IMMUNITY) बढ़ जायेंगी।

आंतरिक विष के निकास में रुकावट क्यों होती हैं।

(१) जब हम प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर विषय भोग और अप्राकृतिक भोजन जैसे, मांस, अंडे, तम्बाकु, चाय, मदिरा आदि का प्रयोग करते हैं तो हमारा वात संस्थान (NERVOUS SYSTEM) कमजोर पड़ जाता है जिससे विष का निकास ठीक नहीं होता।

(२) विदेशी औषधियां और टीके हमारे शरीर से रोग को निकालने के स्थान पर रोग को दबा कर और रोगों को उत्पन्न करते हैं। और वात संस्थान को ऐसा निर्बल कर देते हैं कि कई रोग जैसे छाती की खरखराहट, दमा, हृदय शूल (CARDIAC OPPRESSION) और हृदय की धड़कन (PALPITATION) जैसे रोग उत्पन्न हो जाते हैं फिर और कोई औषधी उन पर प्रभाव नहीं करती और रोगी सदा के लिये रोग युक्त रहता है। अतः हमें इन कारणों से बचना चाहिये और **यम नियमों** का पालन करते हुये नीचे लिखी **"हवन सामग्री"** से **"हवन यज्ञ"** करके लम्बे-लम्बे सांस लेने चाहिएं इससे हमारी वात संस्थान जाग्रत रहेगी और पहला कारण आंतरिक विष बराबर निकलता रहेगा।

हवन सामग्रीः—

सतावरी, अगर, तगर, चन्दन श्वेत, पुष्प गुलाब, गूगल, जटामासी, छार छरेला, प्रत्येक दो दो भाग।

बड़ी इलायची, जौ, तिल प्रत्येक एक भाग केसर एक चौथाई भाग।

इन सब वस्तुओं को कूट कर रख देना चाहिये और प्रतिदिन प्रातः तथा सांय आम, ढाक, प्लास तथा पीपल की सूखी लकड़ी जलाकर उसमें ऊपर बताईं हुई हवन सामग्री में से थोड़ा सा भाग लेकर देसी घी तथा देसी खांड मिश्रण कर आहुति देना चाहिये। [चेचक और जुकाम के लिये सामग्री वेदप्रकाश कार्यालय से मुफ्त, अपना पता लिखा टिकट लगा लिफाफा भेज कर मंगा सकते हैं।] इसके बाद ऊपर से दूध तथा संतुलित भोजन (BALANCED IET) करना चाहिये।

॥ ओ३म् ॥

पं० माधवाचार्य की एक सहस्र रुपये की शर्त की भ्रांति

[विश्वनाथ आर्योपदेशक धर्मशिक्षक डी. ए. वी. नारंग इन्टर कालिज घुघली, गोरखपुर]

पं० माधवाचार्य दोबार यहां घुघली में आये। उनके व्याख्यान सुने वार्त्तालाप और शास्त्रार्थ भी हुआ। इनके व्याख्यान आदि का पौराणिक जनता पर बड़ा प्रभाव होता है। इसके तीन कारण हैं—(१) आर्य समाज और पौराणिक सिद्धान्तों के सम्बन्ध में अत्यन्त भ्रान्ति, (२) आर्य समाज और महर्षि दयानन्द पर घृणित व्यंग पूर्ण कटाक्ष, (३) अभिनय पूर्वक भाषण। कुत्तों के लड़ने का दृष्टान्त दिया तो साष्टांग दण्डवत् प्रणाम की बात कही तो टांगे पसार दीं। साम्प्रदायिक राजनैतिक कोई भी व्याख्याता हो, उसके अभिनय में थीएटर के विदूषक के पार्ट का सा दृश्य होता है, अतः जनता मुग्ध होकर श्रवण करती है। हमारे एक व्याख्याता स्त्रियों के शोकातुर रूप के छाती पीटने का दृश्य उपस्थित करते, तो स्वयं उसी प्रकार सिर छाती और जंघा पर हाथ मारने लगते, तो लोग हंसते हुए लोट पोट हो जाते।

परन्तु विद्वान् इन बातों को अच्छा नहीं समझते। सनातन धर्म की इस सभा (२१-२२-२३ अप्रैल ६१) के सभाध्यक्ष श्री बालबोध शास्त्री लेबर आफिसर थे। उन्होंने मेरी उपस्थिति में यहां के एक पौराणिक पंडित से कहा कि मैं आर्य समाज के अधिक निकट हूँ और पं० माधवाचार्य जी यद्यपि एक विद्वान पुरुष हैं; परन्तु उनके कटाक्षों को मैं उचित नहीं समझता।

पंडित माधवाचार्य की भ्रान्तियां लिखने के लिए तो एक पुस्तक चाहिए। आपकी शर्त का मिथ्यात्व सिद्ध करने ने पूर्व एक उदाहरण दिया जाता है।

उदीर्ष्व० ऋ० १०-१८-८ पर सायण भाष्य का अर्थ हैं। हे नारी तू इस मृत पति के पास लेटी है। इस पति के समीप से उठ और जीवन को उपलक्ष्य करके आ। पाणिग्रहण करने वाले पुनर्विवाह के इच्छुक इस पति की भार्या बन।

पति के मृत्यु समय शोकातुर स्त्री को तत्काल पुनर्विवाह की प्रेरणा महर्षि दयानन्द को घृणित और लज्जा युक्त प्रतीत हुई अतः आपने उपशेषे (तू लेट रही है) को क्रिया पद न मान कर संज्ञापद कह निम्न अर्थ किया।

हे विधवे तू इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के (शेषे) बाकी पुरुषों में से जीते हुए दूसरे पति को प्राप्त कर। सत्या० समु० ४॥

इस अर्थ के अनुसार जैसा कि स्मृतिकारों का मत है मृत पति के छै मास, १ वर्ष पश्चात् पुनर्विवाह अथवा नियोग के लिए कहा जा सकता है।

जब मैंने पं० माधवाचार्य का इधर ध्यान दिलाया तो उत्तर दिया कि कवि कालीदास के कथनानुसार एक पतिव्रता स्त्री की यही इच्छा होती है कि अगले जन्म में भी मेरा यही भर्त्ता हो। सायण के पुनर्विवाह का यही अर्थ है। परन्तु अगले जन्म की बात न मन्त्र में है न सायण भाष्य में अगले जन्म में पति पत्नी ने अपने कर्मों का फल भोगना है। न जाने उनका कहां २ किस २ योनि में जन्म हो। वादी तोष न्याय से यदि यह मान लिया जावें, तो अगले जन्म का विवाह पुनर्विवाह नहीं कहलाता। इन बातों का उत्तर आपके पास नहीं था। शोक है कि इस मिथ्या धारणा से सहस्रों विधवा विधर्मियों के चुंगल में जाती हैं। वैश्या और व्यभिचारणी बनती हैं परन्तु इन्हें तो खीर हलवा चाहिये जाति जाये भाड़ में!

मैंने कहा सत्यार्थप्रकाश में लिखे मन्त्रार्थ में इस शब्द से आपने सायण का घृणित अर्थ महर्षि दयानन्द पर थोपने के लिए मूर्ख एम० ए० बी० ए० अध्यापकों का हाथ खड़ा कराया, परन्तु इस (एतत्) तो भूतकालिक व्यक्ति के लिये भी प्रयुक्त होता है। यथा महाभारत में।

आत्मनः सप्तमो राजानिर्ययौ गजसाह्वयात्। पौरैरनुगतो दूरंसर्वैरन्तः पुरैस्तथा। न चैनमशकत् कश्चिन्निवर्तस्वेति भावितुम्।

पं० माधवाचार्य ने इसका उत्तर दिया कि "एनम्" यहां अन्वादेश है। अब इन से पूछा जावे कि क्या अन्वादेश में कुछ और अर्थ ही जाता है? यहां तो केवल रूप में थोड़ा सा अन्तर होता है। "पुनरूपादान मन्वा देशः" परन्तु संस्कृत न जानने वाले श्रोता तो कहते होंगे। न जाने कितना विद्वत्ता पूर्ण उत्तर दिया गया। यद्यपि अन्वादेश के बिना भी शतशः प्रमाण मिलते हैं यथा सहदेव के लिये कहा। **आत्मनः सदृशं प्राज्ञं नैषोऽमन्यत कंचन।**

अब यहाँ पर एक सहस्र रुपये की शरत पर विचार किया जाता है, जिसकी घुघली की उत्सव पर भी घोषणा की गई। कि स्वामी दयानन्द ने

[शेष पृष्ठ ४६५ पर]

वैदिक धर्म का विस्तृत क्षेत्र

[लेखक—विद्यार्थी भारतेन्दु "विमल" व्याकरणोपाध्याय
आर्ष गुरुकुल एटा]

—❀❀❀—

जब हम किसी भी मत की ओर दृष्टिपात करते हैं व उसके सिद्धान्तों का अवलोकन करते हैं तो उसके मूल में अत्यधिक संकुचित भावनाओं का समावेश हुआ पाते हैं। कारण यह है कि विश्व के सम्पूर्ण मत मतान्तर किन्हीं तुच्छ व्यक्तियों के विचारों की ग्रन्थि बद्ध पोटली हैं। किन्तु किंचित् विचार करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ऐसा होना स्वाभाविक है, यतोहि मत एवं तदवलम्बी व्यक्ति यदि विशाल क्षेत्र बनाते तो धर्म और मतों में विशेषता क्या थी ? धर्म एवं मत के मध्य जो विभिन्नता है वह इन सरल-सुबोध शब्दों में विस्पष्ट है कि धर्म वह है जो कि ईश्वर की आज्ञा है एवं सार्वभौम है तथा जिसका कोई विरोधी न हो। किन्तु तद्विपरीत सिद्धान्त ही मतों में दृष्टिगोचर होते हैं जो कि समय २ पर किन्हीं व्यक्ति विशेषों द्वारा अपना गुरुडमवाद प्रचलित करने के लिये प्रवर्तित होते हैं। वैदिक धर्म सर्वत्र अपना विशाल क्षेत्र रखता है। वेद में जहां कहीं भी विनय है वह सारे विश्व के कल्याणार्थ हैं एवं सामूहिक रूपेण है। अन्यत्र भी हमारे सभी सिद्धान्त एवं विनय सामूहिक रूप से एवं विश्व कल्याणार्थ ही दृष्टिगोचर होंगें। यथा—"धियो यो नः प्रचोदयात्" अर्थात् "हमारी बुद्धियों को सत्प्रेरणा करे" यहां भी नः बहुवचन में प्रयुक्त हैं, "शन्नोअस्तुद्विपदेशं चतुष्पदे" अर्थात् हम दो पैर वालों के लिये एवं चार पैर वालों अर्थात् पशुओं में लिये ईश्वर कल्याण करे, "अन्नस्य नो देहि" हम सब को अन्न का दान कर, और भी जहां इस प्रकार प्रार्थना की गई है सर्वत्र सामूहिक-रूप ही दृष्टिगोचर होता है। किन्तु अन्य मतों को देखने से यह पता चलता है कि उनका निर्माण केवल मात्र विश्व में क्रान्ति का प्रसार करने के लिए एवं दूसरों को पीड़ा देने के लिये हुआ है। कुरान केवल मुसलमानों के लिये है, हम लोग उसकी दृष्टि में काफिर हैं। बाइबिल में भी यीशु मसीह ने यह सन्देश प्रसारित किया है कि मैं पुत्र को पिता से, पिता को पुत्र से, माता को बेटी से, बेटी को माता से पृथक् कराने के लिये आया हूँ न कि विश्व में शान्ति स्थापित करने। कहां तक बतलावें सर्वत्र यही लीला है किन्तु ईश्वर वेद में कहता है कि—"इमां वाचं कल्याणी मावदानी जनेभ्यः

शूद्राय चार्याय च स्वायं चारणायच" अर्थात् "मैं इस कल्याणमयी वेदवाणी का उपदेश विश्व के मानवमात्र के लिये करता हूं"। अन्यत्र भी "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" कहा है न कि "कृण्वन्तो स्वमार्यम् या "कृण्वन्तो देशमार्यम्" नहीं कहा।

कहां तक तुलना करें? जहां कि अन्यत्र यह प्रार्थना है सुबह की रोटी सुबह और शाम की रोटी शाम दे वहां वैदिक प्रार्थना है "सर्वे भवन्तु सुखिन:"। आधुनिक काल में भी आर्य समाज अपने विस्तृत विशाल उद्देश्यों को लेकर विश्व कल्याणार्थ अग्रसर हो रहा है। आर्य समाज का सिद्धान्त आज भी विश्वकल्याणार्थ है। आर्य समाज का छठा नियम है संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। इसी प्रकार नवाँ नियम है "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये"। किञ्चित् विचार कीजिये जिस संस्था का गौण नहीं अपितु मुख्य उद्देश्य ही संसार का उपकार करना है उसकी समता विश्व के तुच्छ मतमतान्तर क्या कर सकेंगे। कभी न कभी वह दिन अवश्य आयेगा जब कि सारा संसार हमारी संस्कृति एवं सत्य वेदोक्त सार्वभौम वैदिक धर्म को अपनायेगा और इसी में विश्व कल्याण निहित है॥

[शेष पृष्ठ ४६३ का]

प्रह्लाद की कथा में भागवत के नाम से लिखा है नारायण ने उस खम्बे पर छोटी २ चींटियों की पंक्ति चलाई। यह चीटियों का चलाना जो भागवत् से निकाल दे, उसे एक सहस्र रुपया दिया जायेगा। हमारा उत्तर यह है कि भागवत १८००० श्लोकों का कहा गया है। परन्तु आजकल मिलने वाले भागवत के पुस्तकों में जैसा कि क्षेमराज कृष्णदास बोम्बे वालों ने लिखा है। १६००८ श्लोक और उवाच १२६७ मिलते हैं। अतः पूरा भागवत ला दो तब आप ऐसी चुनोति दे सकते हैं। यह तो ऐसा ही है कि किसी ने एक सेठ के पास एक सहस्र रुपया जमानत रखा। बही पर लिख दिया गया। वर्ष के पीछे जब रुपया मांगा, तो सेठ ने वह वरक बही से निकाल दिया और उसे कहा इस वही पर कहीं लिखा दिखा दो तो रुपया ले लो?

परन्तु एक जिज्ञासु पूछ सकता है कि इस बात का क्या प्रमाण है कि छूटे हुए श्लोकों में यह कथा थी। इसका उत्तर यह है कि अकबर के समय फैजी ने फारसी में भागवत का अनुवाद किया था। जो नवल किशोर प्रेस १८७० ई० लखनऊ में छपी है। उसमें यह कथा वर्त्तमान है।

यह कथा सर्वसाधारण को भी स्मरण है परन्तु भागवत में लिखने से रह गई।

आध्यात्मवाद बनाम भौतिकवाद

[लेखक—प्राध्यापक बा० विष्णुदयाल, एम० ए०]

—×❀×—

मेरे विकासवाद विषयक लेख उसी समय से आर्य समाज की पत्रिकाओं में छपने लगे थे जब डार्विन की प्रसिद्ध पुस्तक "उप जातियों की उत्पत्ति" की शती मनाई जा रही थी। प्रथम लेख "वैदिक डाइजेस्ट" में प्रकाशित हुआ, दूसरा "वेद वाणी" के वेदांक में और तीसरा "वैदिक धर्म" के लेख को "आर्य्य मित्र" ने उद्धृत किया।

मुझे सन्तोष हुआ जब मैंने देखा कि कुछ लेखक विकासवाद पर लिखने लगे। "आर्य्य मित्र" में एक लेखक का लेख प्रकाशित हुआ और "वैदिक धर्म" में दूसरे का

वर्तमान लेख को बहुत से पाठक उपसंहार समझ कर ही पढ़ेंगे।

कुछ प्रसिद्ध इतिहासकारों ने समय समय पर माना है कि डार्विन-वाद ने मानव को ऊंचा स्थान नहीं दिया है। उनमें से एक ने लिखा :—

"Darwinism which teaches the descent of man from monkeys, gave a great impetus to the free thinking and materialism of the present day. This theory has been the cause of much evil and unhappiness. To a certain degree man has lost respect of himself."†

उत्तम रीति से श्री कृष्णदत्तने अपने लेख में जो 'वैदिक धर्म' के मार्च अंक में दिया गया है, दर्शाते हैं कि मानव के साथ कैसे डार्विन ने अन्याय किया।

"यह समझ कर कि मानव आज का वानरों का अपत्य है, मनुष्य को अपनी महत्ता से पराङ्मुख होना पड़ा है। वेद ने मानव को प्रभु के अमृत पुत्र रूप में सम्बोधन किया है।"

कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जन्मशती के इस वर्ष में कहना चाहिए कि इस ऋषिपुत्र ने वेद का श्रेष्ठ होना सिद्ध किया जिस से विकास-वाद को इस शताब्दी में धक्का लगा। नोबल पुरस्कार गुरुदेव को क्या मिला, वह वेद और उपनिषद् को प्राप्त हुआ। फ्रांस में इसीलिये १६२५ के

†Hormsworth, "History of the World", Vol I, P. 292.

बाद उनके विरुद्ध आवाज बुलन्द की गई थी, यह पूछा गया था कि क्या अब से भूमध्य महासागर कि या यूरपीय विचारधारा विलुप्त होगी और भारतीय विचार प्रधान होंगे ?

विकासवादियों की कल्पना का मूल्य क्या है, यह श्रीकृष्णदत्त के लेख के निम्नांश से ज्ञात होगा :

पक्षियों से स्तनधारियों की उत्पत्ति—बड़ी विलक्षरण कल्पना है विकासवाद की। उड़ने की वृत्ति आज मनुष्य की हो रही है। विमान विद्या में वह वर्णनातीत त्वरा से प्रगति करता हुआ आप चन्द्रलोक में पहुंच कर पाप-निदाध से संतप्त आकुल पृथिवी के लिए चन्द्रमा की सुखोदर्क शीतलता का अनुलेप उसके व्रणों पर करने का अध्ययन करने लगा है। फिर भला पक्षी उड़ने के अपने नैसर्गिक अधिकार का उत्सर्ग किस पर उपकार करने के लिये करते हैं ?"

दिनांक १२ अप्रैल को तो यूरी गगारिन नामक रूसी ने अन्तरिक्ष की यात्रा कर डाली।

अध्यात्मवादी भौतिकवादी विकासवाद को स्वीकार न करेंगे।

प्रसन्नता होती है जब देखा जाता है कि भौतिकवाद से लोग ऊबने लग गये हैं। ईसाइयत में सन्तोष प्रदान करने की शक्ति न पाकर विलायती भारतीय अध्यात्मवाद की शरण में आ रहे हैं। अभी विलायत में एक पुस्तक पढ़ी जा रही है जिसमें पुनर्जन्म की चर्चा की गई है। ग्रन्थकार अमेरिकी मानस शास्त्री डा० स्टीवन्सन के मत को स्वीकार करते हैं। इसी अमेरिकी विद्वान् से इन पंक्तियों के लेखक की चिट्ठी पत्री होती रहती है।

मौके को हाथ आते देख उससे लाभ उठाना चाहिये। लोगों की दिलचस्पी अध्यात्मवाद से हो तो पश्चिम और पूर्व विकासवाद पर मिल कर प्रहार कर सकते हैं।

पिछले दिनों में जो "वेद वाणी" में विकासवाद विषयक लम्बा लेख निकला था उसकी एक प्रकार से विलायती पत्र "गार्डियन" ने पुष्टि की थी जब यह लिखा था:—

"Darwin seemed to be saying that evolution was the result of the struggle for survival; that the victorious species not only won, but deserved to win—for was it not, by definitions the fittest ? If this were true of nature, why not ef society ? The ruthless entrepreneur, who carved his way to the top, not

only became rich; he deserved to become rich—and he owed nothing to the unfit weak lings on whom he had trampled. This applied to the out side world, too. If the British conquered India this was, in itself, proof that they deserved to conquer it; it meant that they were fitter than the Indians. The Guardian, 25 Nov.59. "

भारत के एक—दो चिन्तकों को भी सूझा कि विकासवादने किसी दृष्टि विशेष से द्वितीय विश्वयुद्ध कराया। श्री आत्माराम शाह, दर्शनविभाग, सी० एम० पी० डिग्री कालिज इलाहबाद ने लिखा है।

"विकासवाद के सिद्धान्तों से प्रभावित सब से प्रसिद्ध दार्शनिक नीत्शे है। उसने करुणा. बन्धुता, प्रेम आदि के पुरातन मूल्यों का अवमूल्यन कर के जीवन-संघर्ष में विजय श्री प्रदान करने वाले क्रूर एवं निर्मम गुणों का विकसित करने पर बल दिया। नात्सी और फासिस्ट आन्दोलनों का मूलाधार विकासवादी दर्शन है।"❀

भौतिकवाद की ओर अग्रसर होने वाले स्वतन्त्र भारत में डार्विन के असंख्य प्रशंसक हैं। वे धर्म से स्वयं विमुख होते जा रहे हैं, लाखों को ईसाई बनते देख कर चुप हैं और भौतिकवाद को अभिशाप समझने के लिये तैयार नहीं हैं। केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के प्राध्यापक श्री ए० सी० बुके ने यह भविष्यवाणी १९४१ में की थी कि यदि बापू जी के चल बसने पर उनके प्रति जनता जो में भक्ति है वह उनके उत्तराधिकारी श्री नेहरू तथा अन्यों को प्राप्त हो तो हिन्दू धर्म की दशा वही होगी जो तुर्किस्तान वालों के धर्म की हुई अर्थात् हिन्दू धर्म की क्षति होगी।$

पांच लाख हिन्दुओं का जो हर साल ईसाई करण हो रहा है प्रत्येक को इस भविष्यवाणी पर ध्यान देने को प्रेरित करता रहेगा।

❀हिन्दी साहित्य कोश (ज्ञान मण्डल)

$ Not a few of the younger generation of Indians have already been captured by the doctrines of Marx...As long as Gandhi is able to influnce the Nationalists, Hinduism may remain dominant. But should Nehru and others like him replace the Mahatma in the affections of his fellow-countrymen there might be as radical a change in India as there has already been in Turkestan.

A. C. Beuquet, Comparative Religion, 1941

एक समय था जब डा० राधाकृष्णन् कहा करते थे कि विकासवाद का आश्रय लेकर कुछ लोग हिंसक बनते हैं।† इन दिनों में उन्हें इस नाशकारीवाद के बारे में कुछ करना चाहिये था।

इस समय तक किसी न किसी तरह वेद जीवित रहे। क्या ठीक जब भारत आजाद हो गया जो ज्ञान विलुप्त न हुआ था वह उस पुण्यभूमि में ठहर न पावेगा? क्या ऐसा दिन देखने में आवे जब वेदों का कोई नामलेवा भारत में शेष न रहेगा तो लोग डार्विन के भारतीय अनुयायियों को कोसेंगे नहीं?

वेद वाणी सुनाने के इच्छुक एक शती पुराने डार्विनवाद से संतुष्ट नहीं हो सकते। इस विचार को मान कर ही लोग स्वीकार करना नहीं चाहते कि वेद केवल ४-५ हजार वर्ष पुराने नहीं हैं। डार्विन ने कहा था कि भाषा शनैः शनैः प्रकट हुई। जो उन्हें सत्य का प्रचारक मान कर ही एक-एक शब्द लिखते हैं वे कैसे मंजूर करें कि मानव के आगमन काल में सुन्दर भाषा में सर्वोच्च विचार व्यक्त किये गये थे?

जब कभी किसी ने महाभारत की तुलना रामायण से की और यह देखा कि कला की दृष्टि से रामायण महाभारत से श्रेष्ठतर है तो डार्विनवाद का ख्याल करके यही लिखा गया कि महाभारत रामायण से अपेक्षाकृत प्राचीनतर है।

वे कैसे मानें कि भारत पतनोन्मुख हुआ था. अतः श्रेष्ठतम ग्रन्थ सर्वप्रथम मिले और जाते जाते अपेक्षाकृत कम श्रेष्ठ ग्रन्थ प्राप्त होने लगे?

भारतीयों को डार्विनवाद का सच्चा अर्थ समझना चाहिए। अभी तक इस विचारधारा से भारत को ही सर्वाधिक क्षति पहुंचाई गई। अद्भुत साहित्य के युग के विषय में भ्रान्तियां फैलाई गईं। पिछले दिनों सर्वश्रेष्ठ फ्रेन्च पत्रिका "पेरिस मैत्र" ने बताया कि रामायण हजार साल ही पुरानी है।‡ इसी देश की प्रजा को कमजोर समझा गया और सदियों तक गुलाम बनाकर दुतकारा गया।

---

†The advocates of the use of force adopt a crude version of the Darwinian struggle for existence. They overlook the fundamental distinction between the animal and the human worlds... —Dr. Sarvepalli Radhakrishnan

‡ B. Bissoondoyal, Hindu Scriptures, p. 113 (Macmillan Ltd.)

[शेष पृष्ठ ४७१ पर]

दयानन्द ऋषिराज

[लेखक—कुंवर जोरावरसिंह आर्योपदेशक]

आज देश के कण कण में से, आती यह आवाज
युग निर्माता है इस युग का, दयानन्द ऋषिराज ॥

—×—

जिसमें न हो विरोध किसी का धर्म वही कहलाता है
पशु पक्षी मानव सब से जो करना प्रेम सिखाता है
प्रेम भावना नहीं, किन्तु जो घृणा भाव फैलाता है
वह अधर्म है उसे जगत में धर्म कौन बतलाता है,
निर्भयता के साथ लगाई उसने यह आवाज।
युग निर्माता है० ॥

चमत्कार की बुद्धि विरुद्ध असंगत बातें बिसराओ,
गप्पों दम्भों पाखंडों से मत जनता को भरमाओ,
जिसने जन्म लिया है जग में उसे न ईश्वर बतलाओ,
धर्म और ईश्वर का सच्चा स्वरूप जग को समझाओ,
कहां ढूंढते ? ईश्वर मन मन्दिर में रहा विराज।
युग निर्माता है० ॥

सम्प्रदाय की जात पांत की दीवारों को तोड़ो,
भेदभाव की ऊंच नीच की बुरी रूढ़ियां छोड़ो,
प्रान्त प्रान्त के महा संकुचित झगड़ों का सिर फोड़ो,
मानवता के नाते से तुम दिल को दिल से जोड़ो,
उसके स्वर में मानवता यों बोल रही है आज।
युग निर्माता-है० ॥

आर्यों की सन्तान सकल जग एक रक्त का नाता है,
आदि सृष्टि जिस जगह हुई वह भारत सबकी माता है,
सब से पहला ज्ञान वेद है यह इतिहास बताता है,
भाषाओं की जननी संस्कृत जग जिसके गुण गाता है,
सब का पूर्वज और गुरु भारत सब का सरताज ।
युग निर्माता है० ॥

जिस घर में जिस देश के अन्दर पूजी जाती है नारी,
वहां देवता निवास करते आती सुख सम्पति सारी,
यज्ञ और यज्ञोपवीत की है समान वह अधिकारी,
घर की रानी है शोभा है पति सुत भ्राता की प्यारी,
पैरों की जूती न कभी भी है वह सिर की लाज।
युग निर्माता है० ॥

वैदिक धर्म सभ्यता संस्कृति सबका फिर उद्धार किया,
दीन अछूतों दुखी अनाथों विधवाओं को प्यार किया,
गुरुकुल खोले गौरक्षा का चारों ओर सुधार किया,
मान राष्ट्रभाषा हिन्दी को उसका प्रबल प्रचार किया,
सब प्रकार से उसने रक्खी देश जाति की लाज।
युग निर्माता है० ॥

उठो आर्य वीरो ! पहले तो अपना स्वयं सुधार करो,
फिर एटम पर खड़े हुए इस मानव का उद्धार करो,
भारत मां का वेद धर्म का जग में जयजयकार करो,
अपने गुरु ऋषि दयानन्द के स्वप्नों को साकार करो,
इस धरती पर चलो सजाओ स्वर्ग लोक का साज।
युग निर्माता है० ॥

[शेष पृष्ठ ४६९ का]

डार्विनवाद से प्रोत्साहन पाकर जब भौतिकवाद भारत में अनर्थ करने लगा ब्रह्मचारियों और संयमियों के देश में परिवार संयोजन प्रजा पर थोपा गया और स्त्री को जो देवी नाम से पुकारी जाती है, यन्त्र꙳ बना कर के छोड़ा गया। भारत ही भौतिकवादो बने तो संसार में कौन सा देश लोगों को परमात्मा की ओर ले जाने का बीड़ा उठायेगा ? पश्चिम का अध्यात्मवाद से दिलचस्पो लेने का आरम्भ करना और भारत का भौतिकवाद में उत्तरोत्तर आकर्षण पाते जाना शोभा नहीं देता।

꙳ It is unfortunate that there are many among us who are cold blooded libertines who unscrupulously use women as instruments of their lust. They are human animals, the slaves of Sense.

S. Radhakriahnan, Rabindranath Tagore

★ भुक्तानुचरणम् ★

[लेखक—वैद्य प्रभावसिंह वर्मा 'मित्र' आर्य, आयुर्वेद शास्त्री,
ब्रह्म औषधालय शाहपुर, जिला इटावा]

आज बहुत से मनुष्य भोजन के महत्व को नहीं जानने, अतः उन्हें भोजन द्वारा ही कष्ट रूपी सागर में गोते लगाने पड़ते हैं। अस्तु, प्रत्येक आर्य व्यक्ति को भोजन के महत्व को जानने की विशेष आवश्यकता है; भोजन तत्व के सम्बन्ध में श्री सुश्रुताचार्य का मत इस प्रकार है।

रसाद्रक्तं ततो मासं मासान्मेदः प्रजायते ।
मेदास्याऽस्थि ततो मज्जा मज्जया शुक्र सम्भवः ॥

मनुष्य जो भोजन करता है वह प्रथम मुंह में जाकर पेट में पचने लगता है, पचकर रस बनता है रस का पांच दिन तक पाचन होकर रक्त, रक्त का भी पांच दिन तक पाचन होकर मांस बनता; माँस का भी पांच दिन बाद मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा तथा मज्जा का पांच दिन तक पाचन होकर मुख्य तत्व शुक्र (वीर्य) बन जाता है। यह वीर्य कभी नहीं पचता। पुनः वीर्य ओजस रूप धारण कर शरीर में चमकने लगता है।

अस्तु रस से लेकर वीर्य बनने में पांच के योग से बराबर तीस दिन लगते हैं, ऐसा आर्यों का सिद्धान्त है। आर्य वैज्ञानिकों ने निश्चय किया है कि ४० सेर अन्नप्राशन करने से १ सेर रुधिर बनता है १ सेर रुधिर से १ तोला वीर्य की उत्पत्ति होती है।

प्रत्येक आर्य को सदाचारी, ब्रह्मचारी एवं अल्पाहारी बन कर रहना चाहिये, अधिक भोजन करने वाले अपनी आयु का एक २ दिन कम करके अकाल में ही काल के मुंह में जाते हैं ऐसा मनु महाराज का कथन है।

अनारोग्यं आनायुष्यं अस्वर्ग्यं चाऽति भोजनम् ।
अपुण्यं लोक विद्विष्टं तस्मात्तत्परि वर्जयेत् ॥

अति भुक्ता रोग युक्ता, नरक में पहुँचने वाला, पापी और लोक में निन्दित होने वाला है। अतः बुद्धिमान् अधिक भोजन करना त्याग दें। वेदों का एक अपूर्व सिद्धान्त है कि आहार, निन्द्रा, भय, मैथुन, क्रोध, कलह आदि बातें बढ़ाने से बढ़ती और घटाने से घट भी जाती हैं। मनुष्य जैसा भोजन करता है वैसा ही बन जाता है। तदर्थ नित्य नियमित समय पर

सात्विक अल्पाहार करना चाहिये। जिससे बुद्धि शुद्ध हो जावे। इस पर छन्दोग्य उपनिषद् का वचन है—

> आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृतः।
> स्मृति लब्धे सर्वग्रन्थीनां विप्र मोक्षः ॥

अर्थात् आहार शुद्धि से सत्व शुद्धि होती है, सत्व शुद्धि से बुद्धि निर्मल व ध्रुव बन जाती है, फिर पवित्र निश्चल बुद्धि से मुक्ति सुगमता से प्राप्त होती है। मुक्ति होने की एक प्रथम श्रेणी यह भोजन भी है, क्यों कि भगवान् बुद्ध का भी कहना है कि, एक बार अल्पाहार करने वाला महात्मा है, दो बार सम्हल कर खाने वाला बुद्धिमान् व भाग्यवान् है, इससे अधिक अटकल रूप से खाने वाला मनुष्य महामूर्ख, अभागा तथा पशु का भी पशु है। अतः नित्य नियमित अल्पाहार करके आर्य सिद्धान्तों के निम्न अनूठे नियमों पर परियटक रहना चाहिए।

> भुक्त्यन्ते भ्रमणं शस्तं, शयनं वा अनिद्रया।
> न शस्तं लेखनं चैव, पठनं सूक्ष्म चिन्तनम् ॥१॥

अर्थात्—भोजन के पश्चात् धीरे २ टहलना चाहिये, बाद में शैय्या पर लेटकर कुछ देर आराम अवश्य करना चाहिए किन्तु सोना नहीं चाहिए, भोजन के पश्चात् लिखना पढ़ना तथा सूक्ष्म विचार नहीं करना चाहिए।

> धावनं मैथुनं हेयं, हेय खेदा वहा क्रिया।
> कठोरं चासनं त्याज्यं, त्याज्या चिन्ता विशेषतः ॥२॥

भोजन के पश्चात् दौड़ना व मैथुन नहीं करना चाहिए, तथा न ऐसा काम करना चाहिए, न ऐसी बात भी विचारनी व करनी चाहिए, जिससे खेद व शोक हो। भोजन के पश्चात् कठोर आसन पर न लेटे और विशेष चिन्ता भी न करनी चाहिए।

> तथा स्नानं निषिद्धं स्यात्, पातुपही न भूरिकम्।
> विधेया सर्वपलेन, स्वात्मचित्त प्रसन्नता ॥३॥

भोजन के अन्त में स्नान नहीं करना चाहिये और न अधिक जलपान ही करना चाहिये। जिस प्रकार हो सके अपने मन को सदैव प्रसन्न ही रखना चाहिए। इसी प्रकार माधवाचार्य ने भी कहा है—

> भुक्त्वा शतपदं गच्छेद्वामपार्श्वेन संविशेत्।
> शब्दरूपरसस्पर्श गन्धाश्च मनसः प्रियान् ॥ माधव० ॥

भोजन करने के पश्चात् सौ पग घूमे और बाईं करवट लेट जावें, तो शब्द, रूप, रस, स्पर्श, सुगन्ध अपने मन को प्रिय बन जाते हैं, इस प्रकार करने से अन्न भली प्रकार पच जाता है ॥ इति ॥

आर्य समाज का राजनीति से सम्बन्ध

[लेखक—श्री पं० जयदत्त शास्त्री, लखनऊ]

—○*○—

आर्य समाज में उसके जन्म काल से ही यह विवाद चला आ रहा है कि वह राजनैतिक कार्यों में भाग ले या न ले ? इस विषय में अनेक वार सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा तथा प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं द्वारा समय समय पर विचार किया जाता रहा। परन्तु बहुमत इसी पक्ष में रहा क्योंकि आर्य समाज एक धार्मिक संस्था है, अतः उसे राजनीति में प्रत्यक्षतः भाग नहीं लेना चाहिये। आज भी इस विषय में आर्य समाज में दो प्रकार की विचारधारायें चल रही हैं। एक तो वे लोग हैं जो चाहते हैं कि आर्य-समाज को राजनीति में भाग लेना नहीं चाहिये और दूसरे वे हैं जो यह चाहते हैं कि आर्य समाज को राजनीति से पराङ्मुख नहीं होना चाहिये। अपितु अन्य राजनैतिक दलों की भांति नहीं तो किसी विशिष्टता के साथ समुचित रूप से उसमें अवश्य भाग लेना चाहिये।

इस विषय में हमारा कहना है कि जब 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' यह आर्यों का धर्म प्रचार का मुख्य मन्त्र है, तो प्रजा के पालन एवं सुख दुःख के साक्षी शासन में प्रवेश किये बिना और उससे पृथक् रहकर यह महान् उद्देश्य कैसे पूरा हो सकता है ? लोग प्रश्न करेंगे कि आर्य समाज ने अभी तक जो बहुत कुछ कार्य किये हैं, क्या शासन में प्रविष्ट होकर ही किये हैं। हम भी मानते हैं कि आर्य समाज की मानव समाज के लिये की गई सेवायें अभूतपूर्व हैं। तथापि स्वराज्य प्राप्त होने के अनन्तर इस बात की भी निरंतर आवश्यकता बनी रही है कि जो महाशय लोकहितैषी, एवं उदारचरित होने के साथ साथ भारतीय संस्कृति के रक्षक तथा अनुगामी हों वे राष्ट्र की बागडोर हाथ में लें। यहां यह बात स्पष्ट कर देना उचित होगा कि आर्य समाज कोई साम्प्रदायिक संस्था नहीं है। यह तो लुप्तप्राय सार्वभौम वेद धर्म का सर्वत्र भूमण्डल में प्रचार करने वाली संस्था है, जिस को महर्षि-दयानन्द सरस्वती ने स्थापित किया है। परन्तु आर्य समाज राजनीति में भाग लेकर यदि दलबन्दी के दूषित और संकुचित क्षेत्र में पड़ता है तो वह अवश्य ही आत्मगौरव को खो बैठेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं और यह उसकी मूर्खता ही होगी क्योंकि इसका दृष्टिकोण बहुत विशाल है जैसा कि आर्य समाज के छठे नियम में बतलाया गया है। तो, किस रूप में राजनीति

में इसके लिए भाग लेना उचित है ? यह एक सामयिक प्रश्न है। हमें यह कहना है कि आर्यसमाज के अभ्यान्तर जो मनीषी, मेधावी और चरित्रवान् व्यक्ति हैं उन्हें भी देश के नवनिर्माण में अवश्यमेव सहयोग देना चाहिये। किन्तु यह सहयोग किस प्रकार का हो इसके उपाय स्वयं महर्षि के आशयानुकूल स्थापित करने योग्य 'आर्य-राज-सभा' ही बतला सकती है। महान् लोकोपकारक महर्षि दयानन्द श्रुति एवं स्मृति दोनों की ही मान्यताओं को आधार मानते हुये सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखते हैं कि राजा और प्रजा अथवा शासक और शास्य दोनों को चाहिये कि तीन प्रकार की सभाओं का निर्माण करें। शिक्षा और विद्या की रक्षा, अभिवृद्धि तथा व्यवस्था हेतु विद्यासभा, धर्म की रक्षा, अभिवृद्धि तथा उसकी व्यवस्था के हेतु धर्मसभा, और राजकार्यों के संचालनार्थ राजसभा की स्थापना होनी चाहिये। हमारी सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य-धर्म-सभा और आर्य-विद्या-सभा की स्थापना तो की किन्तु 'आर्य-राज-सभा' की अभी तक स्थापना नहीं की। आर्य समाज जहां और प्रकार के समाज कल्याण के कार्यों को सदा अग्रसर रहा है उसे इस कार्य में भी पीछे नहीं हटना चाहिये कि इस प्रकार का उद्योग किया जाय कि राज्यों की विधान सभाओं, विधान परिषदों और केन्द्र की लोक सभा तथा राज्य परिषद् के सदस्य जहां तक सम्भव हो ऐसे ही लोग चुने जांय जो विभिन्न विषयों के विद्वान् होने के साथ साथ चरित्रवान् हों, धर्मात्मा हों और भारतीय वैदिक संस्कृति और सभ्यता के प्रति श्रद्धा रखते हों। हम तो कहेंगे कि जब उपर्युक्त सभाओं में इस प्रकार के श्रेष्ठ, दूसरे शब्दों में आर्य जनों का बाहुल्य होगा तो राष्ट्र प्रत्येक निर्माण के कार्य में सफल होगा। नेता या राज्य के धर्मात्मा रहते प्रजा अधर्मात्मा नहीं हो सकती और जब इस प्रकार अधर्मका ह्रास और धर्म की अभिवृद्धि होती चली जायेगी तो स्वतः ही देश में दुःख का क्षय और सुख की वृद्धि हो जायेगी और तभी पुरातन राजधर्मवेत्ताओं के यह वचन सार्थक होंगे :

यतो धर्मस्ततो जयः।

राज्ञि धर्मणि धर्मिष्ठा पापे पापरताः सदा।
राजानमनुवर्त्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा ॥

आज के शासन की त्रुटियों की यत्र तत्र बड़ी आलोचनाएं सुनी जाती हैं। शासन के पास सब प्रकार का प्रबन्ध होते हुए भी भ्रष्टाचार, अन्याय तथा प्रजा में व्याप्त विद्या या धनधान्यरूपी दारिद्र्यादि क्लेश का दमन वह नहीं कर पा रहा है। यह क्यों ? इसके अनेक कारण हो सकते

हैं जिन पर 'आर्य-राज-सभा' अच्छी प्रकार विचार कर सकती है और अपने मूल्यवान सुझाव प्रान्तीय एवं केन्द्रीय शासनों के पास क्रियान्वयन के लिये भेज सकती है। हां, इतनी बात ध्यान में रखनी होगी कि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का 'राज-सभा' विभाग ही ऐसे कार्यों को निबटाये कहीं ऐसा न हो जाय कि अन्य दो सभायें भी इसकी दासी व अनुगामिनी बन जाये और अपने निजी कर्तव्यों का परित्यागकर, राज-सभा में ही आत्मसात् हो जायें। क्योंकि जब तीनों सभायें अपने अपने कर्तव्यों का पालन करती हुई मिल कर चलेंगी तभी आर्य राष्ट्र का निर्माण और आर्य धर्म का विश्व में प्रचार करने में समर्थ हो सकेंगी। जैसा कि कहा भी गया है :

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यंचौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवा सहाग्निना॥ यजु०॥

यह बात भी बड़े महत्व की है कि राष्ट्र को निर्माण एवं उत्पादन सम्बन्धी कार्यों द्वारा समृद्धशाली करने के अतिरिक्त उसे आन्तरिक और बाह्य उपद्रवों, आक्रमणों आदि से बचाना भी शासन का मुख्य कर्तव्य होता है। दुरात्माओं को समुचित दण्ड देकर उनके दुःस्वभाव को छुड़वाने और अशान्ति तथा उपद्रवों के निग्रह के लिये शासन की दण्डनीति में शिथिलता नहीं होनी चाहिये, क्योंकि यदि दण्ड शिथिल पड़ जाता है अथवा उसका यथावत् प्रयोग न होकर अन्यथा प्रयोग होने लगता है तो राष्ट्र विपत्तियों से नहीं बच सकता। इसीलिये तो भगवान् मनु ने कहा है :

दंडः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दंडः सुप्तेषु जागर्ति दंडं धर्मं विदुर्बुधाः॥

समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रंजयतिप्रजाः।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः॥

और यह दण्ड जैसे तैसे आदमियों के हाथ में नहीं दिया जा सकता। मूर्ख अविद्वान् और विषयासक्त के पास यह योग्यता नहीं कि वह दण्ड का ठीक ठीक उपयोग कर सके। अतएव पुनः कहा कि,

सो सहायेन मूढ़ेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना।
न शक्यो नर्यायतो नतु सक्तेन विषयेषु च॥

शुचिना सत्यसंधेन यथाशास्त्रानुसारिणा।
प्रणेतु शक्यते दंडः सुसहायेन धीमना॥

सेनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति॥

१२६(IV) अंक 66 (साहा.)

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

वेद प्रकाश

श्री पं० सत्यव्रत सिद्धालंकार

लिखित

"वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार"

पर

दो पुरस्कार

२५००.०० का उत्तर प्रदेश सरकार का पुरस्कार

१२००.०० का पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय का पुरस्कार

ऐसी उत्तम पुस्तक की रचना पर वेदप्रकाश की ओर से पंडित जी को हार्दिक अभिनन्दन ।

—सम्पादक

वेद प्रकाश का अगला अंक स्वामी जगदीश्वरानन्द जी द्वारा संकलित "सामवेद सूक्ति संग्रह" अंक होगा ।

—व्यवस्थापक

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

[नवभारत टाइम्स १३ अप्रैल, १९७७ बुधवार]

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र और सूक्त अन्वयार्थ और सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवास युक्त ये पुष्प गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी]

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा, विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतुविज्ञान, भूतत्वविज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्निविज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इनपर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

मूल्य २०.००; राज संस्करण ३०.००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली

।। ओ३म् ।।

वेद प्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष : २७ अंक ३] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [अक्टूबर, १९७७

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

पावन चरितावली

वा० विष्णुदयाल मौरीशस

: १ :

लाल झण्डी

यात्री तब तक आनन्द विभोर रहता है जब तक कि यात्रा पर होता है, घर से दूर रहकर कोई कुचेष्टा नहीं करता, स्वच्छन्द नहीं बनता। वह यात्रा करके ताजा होना चाहता है और स्वगृह में लौटकर उसे नया भवन समझने को उत्सुक हो जाता है। यात्री की यात्रा उसके उत्थान का कारण होती है।

जीवन भी एक यात्रा है। इसे आनन्दप्रद बनाकर भारत की सारी नारियाँ रामायण युगीन भारत का हमें रह-रहकर याद करने की प्रेरणा देती हैं।

१८५७ में पंजाब प्रान्त में एक बच्चे का जन्म हुआ था जिन्हें मुंशीराम नाम दिया गया था। वे एक हृष्ट-पुष्ट युवक में विकसित हो गये थे जब बनारस में उस विद्यालय के छात्र हो गये थे जिसमें गृफिथ साहब अध्यापन करते थे। इस अंग्रेज ने वेदों को अंग्रेजी में रूपान्तरित किया है।

मुंशीरास को उपन्यास पढ़ने की लत पड़ गई। उन दिनों में युवाओं के विचार इस युग के हमारे युवकों के विचार के समान थे मुंशीराम के पिताश्री धर्मनिष्ठ थे। पुत्र को बदलते देखकर दुःखी हुए।

मुंशीराम का विवाह हो गया। वे वकालत करने लगे। उनके घर पर एक सच्ची देवी आ गई जिस पर सीता जी के चरित्र का प्रभाव पड़ा हुआ था। उन्होंने अपने पतिदेव को भोजन खिलाकर ही स्वयं भोजन करने का नियम बना दिया था। मुंशीराम को इस बात का पता न था।

रात्रि में जब मुंशीराम घर लौट आते थे उनकी हालत देखकर दया आती थी। वे पीकर मस्त हो जाया करते थे। उनकी देवी बेचारी कुछ कहती न थी। ताजा, गरम भोजन आदरपूर्वक उनके सामने रखती थी। एक दिन मुंशीराम भोजन करके बैठे थे कि इतने में उनका नशा टूट गया। वे उठकर दो डग आगे बढ़ते हैं कि देखते हैं कि बेचारी देवी ठण्डा भोजन खुशी से ग्रहण कर रही थी।

उन्हें धक्का लगा। मन-ही-मन सोचा कि इसी भांति रोज ठण्डे भोजन को कृतज्ञ होकर ग्रहण करती होगी। उस देवी के मौन ने उनका इह लोक सँवारा।

रामायण में कोई ऐसा स्थल नहीं मिलता जहाँ पर लिखा गया हो कि सीता जी ने अपने स्वामी के विरुद्ध एक शब्द भी उच्चारित किया हो।

उस घटना ने मुंशीराम की आँखें खोल दीं। ये ही मुंशीराम कुछ वर्षों के बाद संन्यास लेकर स्वामी श्रद्धानन्द नाम से प्रसिद्ध हुए।

वेद में एक मन्त्र है जिसके प्रथम शब्द हैं

"अह केतुः, मैं झण्डी हूँ।"

सच्ची देवियाँ सचमुच (लाल) झण्डियाँ हैं। रास्ते में कभी-कभी कोई लाल झण्डी लेकर दिखाता है ताकि गाड़ियाँ एक दूसरी से टकरा न जायें।

ये पंजाबी माता इसी युग की थीं। वे रामायण के युग को हमारे युग में ले आई थीं। ये उस आदर्श पर चलती थीं जो माता सीता द्वारा स्थापित हुआ था।

अगले दो शब्द

उसी वेद मन्त्र के अगले दो शब्द हैं:

"अहं मूर्धा, मैं मुख, सिर हूँ।

देवियाँ सोचने बोलने में पुरुषों से आगे निकल सकती हैं।

गाँधी जी अभी स्कूल जा रहे थे जब उनका कस्तूरबा नाम की लड़की के साथ विवाह कराया गया था जो उनसे दो-तीन मास बड़ी थी।

वे बैरिस्टर बनकर भारत लौट आये थे। तत्पश्चात् किसी कारण-वश दक्षिण अफ्रीका गये। वे भेदभाव करना नापसन्द करते थे। उनकी धर्म-पत्नी इसके विपरीत, पीढ़ियों से जो सामाजिक व्यवहार हुआ करता था उसको तिलाञ्जलि देने को तैयार न हुई। घर के एक नौकर के साथ ज्यादती की।

इस व्यवहार से बैरिस्टर महोदय खिन्न हुए। आपे से बाहर होकर उन्होंने कहा, "तुम मेरे घर पर रह नहीं सकतीं।" ताकि वचन और कर्म में अन्तर न हो, उन्होंने कस्तूरबा को घर से बाहर कर दिया।

उस बेचारी ने जो इतनी पढ़ी-लिखी न थी, आग उगलने की जगह में, कहा, "मैं विदेश में हूँ, यहाँ कोई सम्बन्धी नहीं है, कहाँ जाऊँगी ? आप को संकोच नहीं है ? लोग देखने लगेंगे कि क्या हो रहा है।"

उनका तर्क सही था। गाँधी जी सहम गये। अपनी आत्म-कथा में, जिसकी तुलना फ्रेंच लेखक रूसो की आत्म-कथा से की जाती है, वे लिखते हैं, जो कस्तूरबा ने कहा वह मानने योग्य है, खरी-खरी सुनाकर उन्होंने मेरा उद्धार किया।

जिन वाणी में रस नहीं,
नहीं कथन में सार।
उस विद्या का क्या करे,
करे न जग उपकार॥

जो ग्राह्य होता था उसे महात्मा जी तत्काल ग्रहण करते थे। उनके विषय में कहा नहीं जा सकता कि वे मानसिक अजीर्ण से पीड़ित थे। घटनाओं का महत्व उनसे छिपा नहीं रह सकता था।

एक महिला वह काम कर सकती है जो शरीर में मुख या मस्तक करता है। वह ऐसी बात बोल सकती है जो न्याययुक्त है।

: २ :

चोट करना

लाठी से कोई किसी को पीटे तो बेचारे को चोट लग ही जायेगी। शब्दों से श्रोता आहत हुआ करते हैं। गीता के इस श्लोक में ऐसे शब्दों और और वाक्यों को ही ध्यान में रखा गया है :

"अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं, प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यासनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

जो उद्वेग करने वाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है, वही वाणी सम्बन्धी तप कहाता है।" १७, १५

विगत शती में महर्षि दयानन्द ने एक दिन एक राजा को कहा, आप का यह काम नहीं है कि अपने अमूल्य समय किसी पतित स्त्री के संग में रह कर गंवाया करें। राजा ऋषि को आते देख उस स्त्री को अपने यहाँ से दूर भेज रहे थे! शिष्य को लज्जा आई। उन्होंने माना कि जो हमें उपदेश दे रहे हैं वे गुरु हैं।

आज हम याद करते हैं कि जब ऋषि स्वयं शिष्य थे उनके गुरु प्रज्ञा चक्षु स्वामी विरजानन्द ने एक दिन उनको कहा था, तुम्हें पढ़ाया गया पाठ

याद न होगा तो जीवित न रहना। हम गुरु के शब्दों का आशय न समझ पायेंगे तो उन्हें क्रूर बताने में देर न करेंगे। वे अपने चेले में किसी भी तरह की कमजोरी देखने को तैयार न थे। इस रुख ने भारत को यह महापण्डित दिलवाया जो केवल वैदिक काल में दृष्टिगोचर हो सकता था।

ऋषि ने इन शब्दों को सुनकर अपनी सारी शक्ति लगाकर पाठ याद किया। उन्होंने अपने गुरु से रुष्ट होकर उनका अहित न किया।

राजा ने भी अहित न किया। उस स्त्री ने तो ऋषि के पाचक को धन देकर ऋषि के प्राण ले लेने में सफलता पायी! दुनिया में कैसे लोग बाजी ले लिया करते हैं, सौ साल भी पूरे नहीं हुए जब यह देखा गया।

दो व्यक्तियों के कानों में ऋषि के वचन पड़े राजा के मन में उन शब्दों ने उद्वेग उत्पन्न नहीं किये। उस स्त्री को तो वे ही वाक्य चोट पहुँचाने वाले सिद्ध हुए। उसकी दृष्टि में वे न प्रिय थे और न हितकारक ही थे। उस में वह भावना होती जो राजा की थी, तो वह सुधर जाती और उसका नाम लेकर दुनिया को विश्वास होता कि मनुष्य गिरता है तो उठ भी सकता है। उसने अपना भविष्य बिगाड़ा उसका नाम केवल पूतना के नाम के साथ लिया जा सकता है।

: ३ :

स्वामी दयानन्द के सखा श्री सैयद अहमद खाँ

ऋषि दयानन्द की स्मृति में उनके देहावसान के तीन ही साल बाद लाहौर में महात्मा हंसराज, पं० गुरुदत्त तथा अन्य शिक्षा शास्त्रियों ने डी० ए० वी० कालिज खोला।

महात्मा हंसराज ही के समान महात्मा मुन्शीराम ऋषि के शिष्य थे। उन्होंने १९०२ में गुरुकुल खोला लगभग उन्हीं दिनों में कवि सम्राट् रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने शान्ति निकेतन की नींव रखी। १९१६ में पं० मदन मोहन मालवीय ने बनारस विश्वविद्यालय को जन्म दिया।

यह सब बहुतों को ज्ञात है। कितनों को मालूम है कि ऋषि के मित्र श्री सैयद अहमद खाँ ने अलीगढ़ में विश्वविद्यालय खोलने की प्रेरणा दी?

वे स्वामी दयानन्द के निकट सम्पर्क में आये थे। तभी तो यह हृदय विदारक समाचार पाकर कि वे चल बसे, उन्होंने कहा—

"स्वामी दयानन्द इतने अच्छे और विद्वान् आदमी थे कि प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के लिए सम्मान के पात्र थे।"

जिस राजा जयकिशन दास ने दो बार ऋषि से प्रार्थना की थी कि आप अपने विचारों को लेखबद्ध करें, वे खाँ के मित्र थे। एक ओर उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश को न केवल लिखाया प्रत्युत अपना धन लगाकर उसे छपवाया और दूसरी ओर खाँ को भारतीय बच्चों को पढ़ने की सुविधा देने के लिए उन्होंने उनकी सहायता की।

खाँ चल बसे और उनके पुत्र सैयद महमूद पिता द्वारा स्थापित विद्यालय की कमेटी के सदस्य हुए।

खाँ अंग्रेजों से सहानुभूति करते थे, फिर भी अंग्रेज इस बात को नापसन्द करते थे कि खाँ विद्या प्रचार करते थे।

महमूद कांग्रेसियों द्वारा सम्मानित होते थे। उन्हें कांग्रेस के प्रधान का पद स्वीकार करने को कहा तक गया। इस सम्मान के लिए वे कांग्रेसियों का आभार मानते थे यद्यपि किसी कारण वश उन्होंने पद स्वीकार न किया।

उनकी देश भक्ति के कारण शासकों ने छल-कपट से काम लेकर उन्हें कमेटी से बाहर करवाकर ही दम लिया।

पिता और पुत्र के नाम इतिहास में आ गये ठीक जिस तरह महात्मा हंसराज, म० मुँशीराम या स्वामी श्रद्धानन्द, महाकवि ठाकुर तथा पं० मदन मोहन मालवीय के नाम आये।

: ४ :

जटायु खून से लथ-पथ हुए

सीताजी का अपहरण करके रावण अपने विमान में जा रहा था। जंगल में जटायु ने सीताजी को रोते सुना। वे इस देवी के ससुर राजा दशरथ के मित्र थे। राजा के मित्र की पुत्रवधू का रुदन जटायु को दुखी कर रहा था। हिम्मत न हारकर उन्होंने रावण से लोहा लिया। वे घायल हुए और भूमि पर गिर पड़े।

जिसे शक्तिशाली समझा जाता है वह अपनी शक्ति का उपयोग लोगों को रुलाने में लगा दे तो रावण ही नाम उसे देना उपर्युक्त होगा। शरत्चन्द ने कहा है :

"जिसकी जितनी शक्ति है, वह उतना ही बड़ा दस्यु है।"

चार पुत्र तब हुए थे जब वे वृद्ध हो गये थे। जटायु जी की अवस्था उन ही की अवस्था से मिलती-जुलती थी।

: ५ :

भंगी और युवराज

बापूजी १९३१ में विलायत थे जब यह मनगढ़न्त कहानी लिखी गई थी कि जब युवराज भारत वर्ष आये थे, वे युवराज जो अष्टम एडवर्ड नामक सम्राट हुए, गांधी जी ने उनके सामने दण्डवत प्रणाम किया था।

म० गांधी ने इस कहानी को सुनकर कहा :

"मैं भारत के एक गरीब-से-गरीब भंगी के भी सम्मुख, निर्धन से निर्धन अछूत के सम्मुख, घुटने टेकने के लिए सहर्ष तैयार हूँ, क्योंकि शताब्दियों से भारत की उच्च जातियों ने उन्हें दबा रखा है, और इसकी जिम्मेवारी मेरे सिर भी है। मैं तो भंगी या अछूत के चरण की रज भी लेने के लिए उद्यत हूँ, पर युवराज के सामने तो क्या स्वयं सम्राट के सम्मुख भी मैं दण्डवत प्रणाम नहीं करूँगा, क्योंकि वे धृष्ठतापूर्ण शक्ति के प्रतिनिधि हैं।"

सम्राट पंचम जॉर्ज थे। ये ही १९०१ में मारीशस में पहले पधारे थे तब उस साल के अन्त में महात्मा जी का आगमन हुआ था।

: ६ :

कितने दिन ?

मनुष्य होकर सब कोई सेवा करने के योग्य हैं। युवावस्था में यह शुभ कार्य डटकर किया जा सकता है। बच्चे निष्पाप हैं तो युवक कर्मण्य।

जाते-जाते सेवा करने से लोग मुख मोड़ते हैं। तब जिनसे उन्होंने प्रेरणा पाई हो उनमें कुछ दोष पाने लगते हैं। क्यों ? इसलिए कि जब उनसे सेवा करना बन्द हो जाय उन्हें लांछित न करें।

कोई १० साल सेवा कर लेता है तो कोई २० साल। बिरले ही मानव मृत्युपर्यन्त निन्दा को स्तुति के बराबर समझकर अपना कार्य करते जाते हैं। उनका १० आदमियों पर प्रभाव पड़े तो वे सन्तुष्ट होते हैं जिस तरह कुछ आधे लाख पर पड़ने से खुश होते हैं। एक क्षेत्र में उन्हें पूरी सफलता न मिले तो नये क्षेत्र में आते हैं क्योंकि उनका उद्देश्य उत्थान लाना है।

ऐसे ही लोगों के बारे में कहा गया है कि वे मर जाने के बाद भी काम करते रहते हैं। "उनके पढ़ाये हुए विद्यार्थी गण, उनके बनाये हुए विविध ग्रन्थ उनकी मृत्यु के पश्चात् बराबर कार्य करते रहते हैं।"

: ७ :

युवक और सन्त

अरबों मनुष्य इस समय एक चौराहे पर आ खड़े हैं। वे उस मार्ग को खोज रहे हैं जिस पर चलने से उन्हें शान्ति मिल जावे।

एक बार एक उद्दण्ड युवक ने एक सन्त से कहा, 'अब कहना चाहिए क्रान्ति! क्रान्ति!! क्रान्ति!!! लगभग जिन दिनों में भारतवर्ष में मनचला नवजवान इस तरह प्रलाप कर रहा था उस समय में मूर्द्धन्य कवि टी० एस० एल्यट अपनी कविता के अन्त में लिख रहे थे 'शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!' ये कवि से सहमत न थे।

उन्नीसवीं सदी में भारतीयों के दर्शन का ज्ञान पश्चिमियों को होने लगा था। भारतीयों की एक विशेषता से जर्मन दार्शनिक अर्थर शोपन्हौर अति प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—

"संसार भर के मतों वा धर्मों में कहीं भी मुझे ये शब्द नहीं मिले जो आर्य्यावर्ती आर्य अपने समाज के अधिवेशन की समाप्ति पर प्राचीनकाल में तीन बार उच्चारण किया करते थे अर्थात् शान्ति, शान्ति, शान्ति।"

शान्ति की जितनी आज खोज हो रही है उतनी इससे पूर्व कभी नहीं हुई।

प्रत्येक राष्ट्र को चैन से जीने की आशा होती है जब पड़ौसी को खुशकर पाता है। पड़ौसी देश के बाहर है, दूर है, दूर में जो पड़ा हो उसका सर्व प्रथम ध्यान आता है।

शान्ति पाठ पढ़ते हुए हम अति दूर जो द्यौ है, उसके लिए शान्ति की माँग करते हैं।

हम भारतीय महासागर में शान्ति कायम रखने के लिए चेष्टा करते हैं। सागर देशों की टकराहट में दिन-रात आता है। जहाज में लोग षड्यन्त्र न रचें, हमला करने का आयोजन तैयार न करें तो समुद्र से घेरे हुए देश शान्त रह सकेंगे।

समुद्र तो निकट है, द्यौ दूर है, अन्तरिक्ष भी पास नहीं है। हम प्रार्थना करते हैं कि अन्तरिक्ष में भी शान्ति हो। पास पड़े समुद्र का ध्यान हो तो द्यौ और अन्तरिक्ष का भी ध्यान होता चाहिए।

तत्पश्चात् जिस पृथिवी पर हम निवास करते हैं, उसमें शान्ति आ बसे, यह प्रार्थना की जाती है।

पृथिवी से हमारा गाढ़ा सम्बन्ध है। पृथिवी नाम लेते ही उन सब वस्तुओं का ख्याल आता है जो पृथिवी पर पायी जाती हैं। पृथिवी छोटी होती जा रही है क्योंकि जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है और विदेश जाने की आवश्यकता होती है।

क्या हमें याद भी है कि पानी जमीन से अपेक्षाकृत अधिक है ? जल शान्त हो तो जहाज की यात्रा निर्विघ्न हो पाती है। वह अशान्त हो जाय, उसमें खलबली मचे तो चलता हुआ जहाज टूट फूट जाएगा।

जमीन पर पड़े पौधे, वृक्ष आदि को सींचा जाता है। अन्न का उत्पादन न हो तो हम जी न सकेंगे। पत्ते, जड़, डाल, फल, फूल रोग को दूर करते हैं। हम इसलिए प्रार्थना करते हैं कि औषधियाँ शान्ति प्रदान करें।

अब पर्यटक पेड़ों की शरण में एक दो दिन व्यतीत करने का प्रोग्राम बनाते हैं। इससे पहले आर्यों को कोसा जाता था क्योंकि ये पेड़, वन इत्यादि से प्रेम करते हैं। इन्हें जंगली कहा जाता था।

जिस पश्चिमीय सभ्यता ने पशुओं को मारना सिखाया, प्रकृति से द्वेष करने का पाठ पढ़ाया, उससे संसार ऊबने लगा है।

अन्ततः हम यह प्रार्थना करते हैं कि ज्ञान ऐसा हो जो शान्तिदायक हो।

शिक्षा सिर्फ नौकरी के लिए न हो। वह ज्ञान जो हमें श्रेष्ठ बनाने में असमर्थ हो, त्याज्य है। स्कूल, विद्यालय, विश्वविद्यालय से हम अवश्य लाभ उठावें, परन्तु जो ज्ञान शान्ति प्रदान करने की शक्ति रखता है, उसकी माँग बनी रहे।

सब कोई शिक्षा को उपादेय मानते हैं।

: ८ :

१८५७ के बाद

भारत में देश भक्तों ने अपनी मातृभूमि को १८५७ में मुक्त करने का प्रयत्न किया था। इतिहास कार बताते हैं कि उन्हें असंख्य बुद्धिजीवियों का सहयोग प्राप्त हुआ न था।

देशभक्त विफल हुए और विद्वान् चिन्ताकुल होकर कोई मार्ग बताने में प्रयत्नशील हुए। बनारस तथा कलकत्ते में अध्यापन करके महापण्डित स्वामी विरजानन्द भारद्वाज जमकर अपने मथुरा वाले विद्यालय में बैठ गये थे। उनके पास अगाध विद्या थी, उन्होंने अनुभव संचित किया था। उन्हें सूझा कि आर्ष ग्रन्थों का सहारा लेना चाहिए।

ज्ञान उपलब्ध करके कर्मण्य बनना चाहिए। हमारे पास पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तो पाँच कर्मेन्द्रियाँ भी तो हैं।

ऋषिकृत ग्रन्थ वे ग्रन्थ नहीं हैं जो कोसे जाने के लायक व्यक्तियों की प्रशंसा में लिखे गये हों। ऋषियों का ज्ञान शुद्ध ज्ञान था। जब तक हम ऋषियों के सामने नतमस्तक होते ये हमारे दिन सुखद थे।

समाज मानव शरीर के समान है। देह में सिर की जगह में दो हाथ आ जाएँ या पेट या पीठ तो वह अजायब घर में बेशक रखे जाने के योग्य होगी, पर होगी कुरूप ही।

आजकल देश में अशान्ति फैली हुई है। सेना देश की रक्षा करती है, हाथ का काम करती है, जब कोई सेनापति पदलोलुप होकर स्वयं राजा बन जाता है या स्वयं शासक बनता है समाज शरीर मानो कुरूप हो जाता है।

ज्ञान प्रसार के लिए साधन हैं तो सही, पर जो ज्ञान सुखी बनानेवाला है वह प्राप्त नहीं होता। निडर शिक्षाविज्ञ कहते रहते हैं कि उत्तम शिक्षा से छात्रों को वंचित रखा जाता है। पत्र-पत्रिकाओं की ओर से ज्ञान का प्रचार होना चाहिए थे। कागज कम मिलता है, उसका दुरुपयोग करके अशान्ति फैलायी जाती है, अन्याय का समर्थन किया जाता है, खास गुट की तरफदारी की जाती है।

सभाओं में जिनमें ज्ञान की पिपासा होती है वे समय से पहले पहुँच जाया करते हैं। बोलनेवाले भी दिखाई देते हैं, पर कार्यक्रम इस ढंग का होता है कि अधिक समय खोया जाता है, जिनकी कद्र कोई समझदार आदमी करने को राजी हो ही नहीं सकता, उसकी ओर सभा का ध्यान आकृष्ट करने की कुचेष्टा की जाती है। वातावरण ज्ञान प्रसार के एकदम प्रतिकूल हो जाता है। समय से पहले जिज्ञासुजन उठकर चले जाते हैं।

उत्तमोत्तम पुस्तकें भी प्रसारित करने में कठिनाई होती है।

जिन प्राध्यापकों तथा लेखकों का भाषा पर पूरा अधिकार है, वे विचारों को सुन्दर भाषा में समझा दिया करते हैं। उनकी ओर से शिक्षा देने का साहस भी होता है, किन्तु शिक्षा को अपने जीवन में उतारते नहीं देखे जाते।

शिक्षा विनय देती है, मनुष्य का पवित्रीकरण करती है। मनुष्य को मुक्ति प्रिय है और मुक्ति ज्ञान के बिना मिल ही नहीं सकती। यह संस्कृत सूक्ति बच्चे बच्चे को याद है :

"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।"

ज्ञानी का अवमान होता है क्योंकि वह पतित जनों को देवता कहने से इनकार करते हैं। वे मनुष्य पर कम ध्यान देते हैं और ज्ञान पर अपेक्षाकृत अधिक।

ऐसे ज्ञानी लोगों के ज्ञानप्रेम के कारण आज वे जो नोबेल पुरुस्कार पाते हैं, वे जो गिनेचुने विद्वान् हैं, वेदों के बारे में जो लिखा जाता है उसे पढ़ते हैं। हेमिंगवे ने 'अज्ञात ईश्व्र' नाम से एक कहानी लिखी है। उसने उन क्षेत्रों में से एक का अपनी किताब में अनुवाद दिया है जिनके अन्त में ये शब्द हैं—

"कस्मै देवाय हविषा विधेम।"

पश्चिमीय समझते हैं कि यह वाक्य प्रश्नात्मक है। यही कारण है कि यह गलत विचार फैल गया है कि ईश्वर अज्ञात है। उल्था सही नहीं है, फिर भी वेद मन्त्र को सुरक्षित रखा गया। इस नोबेल पुरस्कार के प्राप्तकर्त्ता ने ज्ञान को बहिष्कृत करना स्वीकार नहीं किया। वेद को समझ पाते तो इनके आनन्द की सीमा न रहती। वेदज्ञान का भण्डार है। जो ज्ञान का शत्रु हैं, वह वेद से विमुख है।

ज्ञान का घर आत्मा है। ज्ञान से शत्रुता करना आत्मा को धक्का देकर मनुष्य में छिपी शक्ति के प्रकटीकरण को रोकना है।

: ६ :

आर्ष ग्रन्थ ही क्यों पढ़ें ?

हमें केवल आर्ष ग्रन्थ पढ़ने का आदेश मिला है।

भारत का साहित्य जितना विशाल है, उतना किसी भी इतर देश का नहीं है। भारतीय साहित्य प्राचीन है, पर उसकी मांग बनी रहती है। कोई पथ प्रदर्शन हमें परामर्श दे तो उन्हें बताना होगा कि साहित्य की एक झलक कैसे मिल सकती है। यदि उन्हें ज्ञात न हो कि थोड़े समय में किन-किन ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए, तो वे पढ़ते रहेंगे और कुछ हाथ न लगेगा।

ऋषि ने हमें कहा—आर्ष ग्रन्थ पढ़ो। ऋषियों द्वारा विरचित ग्रन्थ अत्युत्तम हैं। वे वेदानुकूल होते हैं। 'वेद वाणी' के आद्य सम्पादक वा प्रतिष्ठापक स्व० पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने एक मन्त्र का निम्न अंश देकर दर्शाया है कि स्वयं वेद ने आर्ष ग्रन्थ पढ़ना उचित कहा है—

"देवस्य पश्य काव्यम्, न ममार न जीर्यति ॥"

देव महापुरुष को कहा जाता है। जो चमक उठे, श्रेष्ठ हो, वह देव है। जो देव लिखेगा वही देव का काव्य होगा। महापुरुष या ऋषि की कृति को हमें देखना चाहिए।

नेत्रों से हम देखा करते हैं। कोई सुन्दर प्राकृतिक दृश्य नजर आवे तो हम मृत्यु पर्यन्त उसे याद करते हैं। अमेरिका में फ्रेंच लेखक शातोब्रियाँ ने और आज से दो शती पूर्व फ्रांस ही के लेखक बेरनार्दें दे सें प्येर ने मारीशस में ऐसे नजारे देखे थे। इन्होंने सुन्दर उपन्यास लिखे, जो आज तक पढ़े जा रहे हैं। इन लेखकद्वय के उपन्यास अश्लील नहीं हैं। सें प्येर की पुस्तक का हिन्दी उलथा देखकर स्व० पं० विद्याधर विद्यालंकार प्रफुल्लित हुए। उन्होंने लिखा—"भगवान के कहे हुए काव्य के समान—'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' इस काव्य (सें प्येर के उपन्यास) को भी अमर और अजर होने के लिए हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं।"

पढ़ने वाले भी आँखों से काम लेते हैं। पाठक की आँखें ऋषियों के शब्दों पर पड़ें। वे शब्द याद रहें। क्या जो नेत्रों से विहीन हैं, वे ऋषियों के शब्दों से परिचित न हों? कोई किसी को पाठ करते सुनकर भी शब्दों का स्मरण कर सकता है। दादा गुरु स्वामी विरजानन्द के नेत्र न थे, मगर उन्होंने ऐसा कार्य किया जो कि नेत्रवाले कर नहीं पाते। उनकी निर्वाण शती के अवसर पर उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की गई थी जब यह लिखा गया कि आर्ष ग्रन्थों का इतना आदर करते थे कि उन्होंने स्वरचित कविता को अग्नि की भेंट कर दिया[1]। वे यही चाहते थे कि केवल ऋषिकृत ग्रन्थ रहें।

यदि शब्दों को देखकर, सुनकर, याद करके कोई अपने श्रेष्ठ आचरण से लोगों को परिचित करे, यह दिखा दे कि उत्तम शब्दों का असर हुआ है, तो एक तो वह मरेगा नहीं और दूसरे जीर्ण शीर्ण न होगा। कई लोग शतायु होते जाते हैं, पर उनका शरीर कमजोर हो जाता है। जो आर्ष ग्रन्थ की पूरी तरह से अपनायेंगे, वे अन्तिम घड़ी तक हृष्ट-पुष्ट रहेंगे। अब इसमें सन्देह रहा नहीं कि ऐसे ग्रन्थ बार-बार लोगों को चरित्रवान् बनने की प्रेरणा देते हैं।

आर्ष ग्रन्थों में उपनिषत्, ब्राह्मणग्रन्थ, रामायण आदि को सम्मिलित किया जाता है, यदि ये पुस्तकें किसी की पहुँच के भीतर न हों, तो जिस गीता में ईशोपनिषत् की विस्तार से व्याख्या की गई है, वह उसे भूमिका मान कर पढ़े।

वे सबके लिए हैं, भारतीय भाषाओं में अनूदित वेद मिलें, तो वे पढ़े जायें। न मिलें तो समय-समय पर अंग्रेजी, फ्रेंच आदि में 'वेद सार' प्रकाशित होते हैं, उनको पढ़ा जाय, श्री अरविन्द प्रेस में 'फ्रेंच वेद सार' मुद्रित हुआ है, जिसमें सवा सौ वेद मन्त्र मिलते हैं। वह पाण्डिचेरी, मारीशस, फ्रेंच द्वीप रेइन्यों तथा मादागास्कार गणराज्य में अपनाया जा रहा है। उसमें भी उक्त वेद मन्त्र की व्याख्या की गई है। जो उसका विद्वान् अर्थ करते रहते हैं, वही अर्थ किया गया है। यही कहा गया है कि देव का काव्य एक तो यह मनोहर संसार है, और दूसरा वेद। दोनों को ईश्वर ने ही निर्मित किया है। दोनों नहीं मरते और न ही जर्जरित होते हैं। प्रलय का मतलब है अणु का अणु से अलग होना। संसार का रूप बदलता रहता है, वह मरता नहीं है। वेद ज्ञान की पुस्तकें हैं, उनका मरना या पुरातन होना असम्भव है।

---

१. विरजानन्दः स्वयं अन्ध एव आसीत्। किन्तु स्मरण शक्तिः तस्य आसीत् अतिविलक्षणा। तस्य सर्वं मुखोदगतमासीत्। मननादेव तेन निजज्ञानं दृढ़ीकृतम्। स्वयमसौ क्वचित् मधुरस्तोत्राणि रचयति स्म। किन्तु आर्षग्रन्थानामेव लोके प्रचारः भवेत्, अत्यावश्यकः इति यः तस्याग्रहः आसीत्, तद्वशात् तेन निजकाव्यमखिलं आत्मनः मरणात् प्रागेव अग्निसात्कृतम्॥

"संस्कृत—भवितव्यम्" की लेखमाला के तीसरे लेख से,
जो दि० २। १०। ७१ को प्रकाशित हुआ था।

यदि इन आर्ष ग्रन्थों को कोई किसी कारणवश पढ़ न पावे, जिनके नाम दिये गये हैं, तो कम-से-कम गीता पढ़े। जिस भाँति ऋषि के वेद भाष्य को पढ़ न सकने से पाठक उनकी ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका अवलोकन कर लेते हैं।

पश्चिम में गीता का प्रभाव खूब पड़ा। फिनलैण्ड के तत्कालीन राजदूत ने वाराणसी में आज से दो दशक पूर्व कहा था—

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ही वस्तुतः यूरोप देश को संस्कृत भाषा की सत्ता का ज्ञान हुआ।

भगवद्गीता चिर काल से मनुष्यों को मार्ग प्रदर्शन और शान्ति प्रदान कर रही है। यह नवभारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की सदा सहायक रही है।

आप भारतीयों ने संस्कृत को आधार बनाकर अत्यन्त उज्ज्वल संस्कृति का निर्माण किया है, जो आप लोगों के गौरव की बात है। पुराना संस्कृत साहित्य एक भव्य मन्दिर है, जिसमें मानव-समाज के प्राचीन काल का सम्पूर्ण ज्ञान ठीक रूप से संगृहीत है। जीवन और मृत्यु के विषय में मानव-जिज्ञासा का अन्तिम समाधान का अन्वेषण करते हुए जिस परिणाम पर भारतीय पहुँचे हैं, वह यूनान देश के दार्शनिकों के सिद्धान्तों से बहुत उच्च हैं। धर्म की मीमांसा करते हुए भारतीय साधक तथा भक्त लोगों ने जीवन की गूढ़ समस्याओं का अन्तस्तल तक विचार किया है।[1] वेद आप लोगों के अध्यात्मवाद की आधार भूमि है। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदें वेद के अर्थों का विस्तार करते हैं, आपके सूत्र ग्रन्थ (श्रौत, गृह्य, धर्म) जीवन की सम्पूर्णता और महाभारत काव्य प्राचीन इतिहास द्वारा पुराने ज्ञान का दर्शन करते हैं।

आर्ष ग्रन्थ पठनीय हैं, यह विदेश से आगत महापण्डित ने सुन्दर संस्कृत में स्वीकार किया है। अपने देश में रहकर 'कारलाइल' ने लगभग जो इस विद्वान् ने इस शती में कहा, वह विगत शती में कहा था। जब अपने मित्र एमर्सन को एक गीता थमाई थी।

जर्मनी में रहकर शौपेनहौर ने उपनिषदों का पाठ करके कहा— "इनमें लगभग, अतिमानुष विचार हैं।" वेद का गुण उपनिषद् में उतर आया तब तो एक तत्व ज्ञानी ने ऐसा मत बनाया।

---

१. संस्कृत भाषां उपजीव्य भवतो भारतीयाः समुज्ज्वलां संस्कृतिं निर्मितवन्तः, या वस्तुतः भवतां गौरवाय कल्पते। पुरातनं संस्कृत साहित्यं एवं भव्यं मन्दिरं कस्मिन् मानवस्य प्राचीनकालिकं सर्वं ज्ञाने सामञ्जस्येन संगृहीनं वर्तते। जीवनमरण विषये मानव जिज्ञासाया अन्तिमं समाधानं अन्वेषयन्तो भवन्तो यं परिणामं प्राप्तवन्तः स यवन देशीय दार्शनिकानां सिद्धान्तान् अतिशेते। धर्म मीमांसमाना भारतीयाः साधकाः भक्ताश्च जीवनस्य सुगूढ़ानां अन्तस्तलं आलोडितवन्तः। —अप्रैल १९५३ की "वेद वाणी" से

महर्षि के देहावसान के एक साल बाद अर्थात् १८८४ में श्लेगल से प्रेरणा पाकर हम्ब्रोल्ट[२] ने गीता पढ़ी, और लिखा—"यह कदादित् गम्भीरतम और उच्चतम वस्तु है, जो संसार को दिखानी है।"

आज दिन तक ऋषियों के ज्ञान की विश्वभर में खोज होती रही है। आर्यसमाज मौके को हाथ से जाने न दे। निष्पक्ष होकर जताये कि स्वामी जी के युग से पूर्व उपनिषदों ने अपनी धाक जमाई थी, आज भी रवीन्द्रनाथ ठाकुर, वाल्मीकि, व्यास की कृतियों की पश्चिम में माँग है, न कि सस्ते उपन्यासकारों की। वेदों की ओर हमें मुड़ना चाहिए, स्वामी जी यही कह रहे हैं कि—वेद श्रेष्ठ हैं। जर्मनी, विलायत तथा अमेरिका में भी यही कहा जाता रहा। स्वामी जी कोई नया पन्थ चलाने वाले थोड़े थे कि उनके आग्रह को ठकराया जाये? उन जैसे सत्याग्रही विद्वान् का आग्रह मानने में ही हमारा कल्याण है। आर्यसमाज का कोई स्वार्थ नहीं है। यह बीच में पड़कर विद्या प्रचार के इस युग में लोगों से सुखद ज्ञान ग्रहण करके आनन्दित होने की सलाह दे रहा है।

: १० :

सिपाही

इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है कि जीवन एक संग्राम है। रण से मुख मोड़ना शोभता नहीं है।

भारतीय अच्छे योद्धा हुए हैं। १७९२ में जो शस्त्र यूरोपियों के पास न था उससे टीपू सुलतान लड़ा करते थे। 'नवभारत टाइम्स' ने इस सम्बन्ध में १९७७ में लिखा था—

"राकेट का डिजाइन बनाने के लिए इंगलैण्ड के वि० कांग्रेव भारतीय राकेटों को देखकर इतना प्रभावित हुए कि उसके डिजाइन में संशोधन कर यूरोप में उसका प्रचलन बढ़ाया।"

यह तथ्य मोहन सुन्दरम् की पुस्तक 'मेन आफ स्पेस' से प्रकट हुआ।

टीपू ने १७९२ और १७९६ में श्री रंगपत्तनम् की लड़ाई में ब्रिटिश सरकार को हराया था।

युद्ध से पूर्व भी १७८९ में लन्दन में एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिससे ब्रि० सेना के विरुद्ध भारतीयों द्वारा राकेट के प्रयोग की पुष्टि होती है।

कांग्रेव के परवर्ती सभी विशेषज्ञों और इंजीनियरों ने यह नहीं सोचा था कि प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन का गति के सम्बन्ध में तीसरा नियम मैसूर के निकट भारतीय राकेटों द्वारा साबित होगा।"

२. It is perheps the deepest and lofilest thing the world has to show. —Humboldt.

१८१० में भारतीय योद्धा मारिशस पहुँचे और उनके सहयोग से ब्रिटिश सेना विजयी हुई।

अंग्रेज फिर भी भारतीयों पर अपना धर्म थोपने के बार-बार प्रयत्न करते रहे।

योद्धा के चले जाने पर १८३४ में भारतीय श्रमिक आये। इन्हें ब्रि० शासकों से एक प्रकार का युद्ध करके भारतीयता की रक्षा करनी पड़ी।

अपनों से भी इन्हें भिड़ना पड़ा। उच्च शिक्षित आप्रवासी अंग्रेजों की तरफदारी करने लगे, बिरले ही शिक्षित आप्रवासी भारतीयता के पक्ष में होकर योद्धा बन सके। इन्हें मजदूरों का सहयोग प्राप्त हुआ।

सिपाही की भूमिका अच्छी तरह से निबाही न जाती तो भारतीयता विलुप्त हो जाती। बुर्जो फ्रेंक टापू में लुप्तप्राय हो ही गई।

उन्हें तो हम सिपाही नहीं बता सकते जो भारतीयता बचाने का स्वांग भरते हैं, बचाने वाले को चैन से रहने का अवसर नहीं मिलता। नकली रक्षक लोग बगुले भक्त हैं। क्योंकि जो मन में सोचते हैं वह प्रकट नहीं होता, केवल जो करते हैं वही दिखाई देता है। वे चैन से रहते हैं और छोटे से बड़े बनते हैं, हर तरह से 'सफल' होते हैं। जानी दुश्मन तो वे ही होते हैं।

: ११ :

तीसरे नेत्र से देखो

महात्मा गांधी २१ वर्ष प्रवासियों के बीच बिताकर दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे।

जो भारतीय अखबार पढ़ते थे वे उनके नाम से परिचित थे। अन्य लोगों ने उनका चित्र तक नहीं देखा था, जो देख चुके थे वे उन्हें प्रथम बार देखकर पहचान नहीं पाते थे।

बापू जी गरीबों का साथ देते थे। वे रेलगाड़ी के तीसरे दर्जे के लोगों के बीच रहकर सफर करते थे। वे एक दिन रेलगाड़ी में थे जब ऐसी घटना घटी जिसका उनके जीवन चरित्र के लेखन ने इस प्रकार वर्णन किया है—

"एक बार उन्हें दिल्ली से लाहौर भाषण देने जाना था। जिस समय वे स्टेशन पर पहुँचे, गाड़ी खचाखच भरी थी। बड़ी मुश्किल से वे एक डिब्बे में घुसे पर जगह न होने से एक तरफ खड़े हो गए। कुछ स्त्रियाँ भी एक तरफ खड़ी थीं। दो-तीन स्टेशन बाद इनके पास बैठे हुए मुसाफिर उतरे। वे चाहते तो उनकी जगह बैठ जाते पर वे नहीं बैठे और खड़ी हुई स्त्रियों को वहाँ बैठने के लिए बुलाया। इसी तरह एक गरीब बूढ़ा भी खड़ा था, उसको भी बिठाया। यह देखकर दूसरे यात्रियों पर बड़ा प्रभाव पड़ा। लोगों ने

इनसे बातचीत करना शुरू किया और इनका नाम पूछा इन्होंने अपना नाम मोहनदास करमचन्द गांधी बताया। बैठे हुए लोगों में कुछ लोग तो ऐसे थे जिन्होंने गांधी जी का नाम सुन रखा था। एक सज्जन तो इनका भाषण सुनने के लिए ही लाहौर जा रहे थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि ये हीत्याग मूर्ति गांधी जी हैं, जो इतने घण्टों तक रेल में खड़े रहे तब तो लोग बहुत शर्मिन्दा हुए और इन्हें अपने बीच में आराम से बिठाया और क्षमा माँगी।"

कोई सेवा करता जाय तो हमें उसे भलाई करते देखकर अपनी तीसरी आँख को खोलकर उसे पहचानना चाहिए। बुराई करने वाले से घृणा होती है तो भलाई करने वाले के साथ उसी तरह व्यवहार करना चाहिए ठीक जिस भाँति अन्तिम घड़ी में सफर करने वालों ने किया।

: १२ :

भारत का अन्य देशों पर प्रभाव

भारतीयों ने दूसरों को सता कर, उनके देशों को हड़प कर उन्हें पराधीन नहीं बनाया।

फिर भी भारत को गुरु समझकर युग-युग में अभारतीय उसकी प्रशंसा करते रहे। वह देश अपनी क्रूरता के कारण प्रशंसा का पात्र नहीं बना।

अरब देश के लोग प्रथम प्रशंसकों में से थे।

वे स्पेन देश को जीत चुके थे। इब्न-अल-अरबी नाम के विद्वान् ने जो स्पेन में जन्मे थे, 'अमृत-कुण्ड' नाम के एक संस्कृत ग्रन्थ का अरबी में रूपान्तर करने में मदद दी थी।

अरब के लोग कृतज्ञ थे। डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने जिनका अभी हाल ही में ८८ वर्ष की अवस्था में देहान्त हुआ है, लिखा है कि "फलों में नारियल, तरकारियों में बैंगन, मसालों में अदरख, भारतीय लोहा या इस्पात्, जिसको पूर्व इस्लाम तथा बाद के इस्लाम के लोग बड़े महत्व को दृष्टि से देखते थे (यह लोहा अरब में 'मुहानिदा' कहा जाता था, जिसका अर्थ है हिन्द या भारत का सामान) आदि वस्तु अरब भारत से लेते थे।"

अरब को केवल भारतीय ज्ञान ही पसंद नहीं आया था।

वह युग भी आया जब यूरोप में संस्कृत के विद्वान् उत्पन्न हुए। तब इन लोगों ने भारत वर्ष की प्रशंसा की जिनके पहले मत दिये जाते हैं, तब नाम:

"पूर्वीय अध्यात्मवाद के प्रचुर प्रकाश पुंज की तुलना में यूरोप वासियों का उच्चतम तत्वज्ञान ऐसा लगता है, ऐसे मध्यान्ह सूर्य के व्योमव्यापी प्रताप की पूर्ण प्रखरता में टिमटिमाती हुई अनल शिखा की कोई आदि किरण, जिसकी अस्थिर और निशतेज ज्योति ऐसी हो रही हो मानो अब बुझी तब बुझी।

—फ्रेडरिक शेलिंग

विश्व रेखा गणित के लिए भारत का ऋणी है, यूनान का नहीं ।

—डॉ० थीबो

अरब में ज्योतिष विद्या का विकास भारत से हुआ ।—प्रो० वेबर

भारत ने चीन और अरब को ज्योतिष और अंकगणित सिखाया ।

—कोलब्रुक

पश्चिमी दुनिया की जिन बातों पर अभिमान है, वे वास्तव में भारत से ही वहाँ गई हैं । ज्योतिष, वैद्यक, अंगगणित, चित्रकारी और कानून भारतीयों ने ही यूरोप वालों को सिखाया है ।—मि० डेलमार

जब हम पूर्व की और उसमें भी शिरोमणि स्वरूप भारत की साहित्यिक एवं दार्शनिक कृतियों पर दृष्टिपात करते हैं, तब हमें ऐसे अनेक गम्भीर सत्यों का पता चलता है, जिनकी निष्कर्षों से तुलना करने पर, जहाँ पहुँचकर यूरोपीय प्रतिभा कभी-कभी रुकती गई है, हमें पूर्व के तत्वज्ञान के समक्ष घुटना टेकना पड़ता है ।—विक्तोर कुजें"

: १३ :

भारत बिकाऊ नहीं है

जो भी भारत का नामलेवा अपने जैसे लोगों को अधीनता स्वीकार करके अपने भाइयों को गुमराह करेगा, वह पाप कमायेगा यद्यपि उसे 'लाभ' होता रहेगा ।

देशों में भारत गुरु रहा है । भारतीय संस्कृति का नाम लेकर लोगों को खाई में ढकेलते रहना गुरुघात करना है । भारत को किस विद्वान् ने गुरु कहकर नहीं पुकारा ?

कोई फ्रांस को बेच डाले या इंगलैण्ड को तो उसका कुकृत्य क्षम्य हो सकता है । भारत का, ऋषि के भारत का विक्रय करने वाला जघन्य पाप करने वाला है । जीवन क्षण स्थायी है । जिसे इस बात की चिन्ता है कि ऐसा न हो कि मैं मनुष्य कहे जाने के योग्य न रहूँ, वह इस शताब्दी में कलंकित जीवन व्यतीत कर रहा हो, पाप-पतन से बचाया न जा सका हो, तो उसके लिए बचने का एक उपाय यह है कि नरक से एक पल के लिए निकल कर, धोखा देना एक क्षण छोड़कर जब कोई उसे देखता न हो, किसी से पूछकर यह जानने के बाद कि ऋषि दयानन्द विगत शती की विभूति हुए उनकी जीवनी पढ़े । यह पढ़कर आश्चर्य चकित होगा कि ऋषि अपने पूज्य गुरु प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द का बार-बार आदर करके अपने ग्रंथों के अन्त में लिखा करते थे "इति श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां श्री विरजानन्द सरस्वती स्वामिनां शिष्येण श्री मद्दयानन्दसरस्वती स्वामिना विरचितः…

श्री परमहंस विरजानन्द के शिष्य दयानन्द सरस्वती द्वारा विरचित…"

विगत शती तक में गुरु भक्ति देखी गई। भारत ज्ञानियों का निवास स्थान है। केवल मनुष्य प्राणी ज्ञान हासिल करने में समर्थ है। मनुष्य को उसके ज्ञान से पहचाना जाता है। ज्ञान उसे गुरु ही की कृपा से प्राप्त होता है।

मनुष्य कहलाने के योग्य वही है जो उस उत्तम परम्परा के विरुद्ध आचरण नहीं करता जो चाहती है कि ज्ञान देने वाले को भुलाया न जाय। सबसे बड़े गुरु परमात्मा है। वेद में इस गुरु का आदर करने वाले भक्त के मुँह से ये शब्द कहलवाये गये हैं।

"हे परमाज्ञानिन् देव! ऐसा सामर्थ्य मुझे दीजिये कि आप को सहस्र और अयुत धन के लिए भी न बेचूं, कामवश, लोभवश, भयवश, मोहवश हो आप को न बेचूं। ऋग्वेद, ८, १, ५"

: १४ :

वृहद् जीवन चरित्र से लाभ

महात्मा जी के अनेक वृहद् जीवन चरित्र मिलते हैं। कुछ उनके जीवन काल में प्रकाशित हो गये थे।

उन्नीसवीं सदो में जीवन चरित्र के लेखकों को संख्या न्यून थी। जब कोई बहुत बड़े गिने जाते थे उनका जीवन चरित्र लिखने का निर्णय लिया जाता था।

ऋषि दयानन्द के देहावसान के थोड़े ही दिन बाद उनकी स्मृति में उनके शिष्यों ने लाहौर में डी० ए० वी० कालेज की नींव रखी।

उन्हीं दिनों में पं० लेखराम को ऋषि का जीवन चरित्र रचने के लिए चुना गया। वे इस कार्य के उपयुक्त थे। पण्डित जी खोज करने लगे वे उन व्यक्तियों से मिलने लगे जो ऋषि के निकट सम्पर्क में रहते थे।

१८६८ में ज्यों ही स्वामी विरजानन्द का ६० वर्ष की अवस्था में देहावसान हुआ था उनके बारे में भी इसी तरह की खोज करनी चाहिए थी। प्रज्ञाचक्षु दण्डी जी अपने शिष्य स्वामी दयानन्द ही को भाँति पदयात्रा करते रहते थे। उनका वृहद् जीवन चरित्र होता तो १८ वीं, १९ वीं शतियों के भारत वर्ष का धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक लघु इतिहास मिल जाता। १९७८ में उनकी द्वितीय जन्म शती मनाई जायेगी।

पं० लेखराम सामग्री जुटा कर लिखने लगे। इतने में उनकी हत्या हुई। उन्होंने कुछ नोट छोड़ दिये थे जिनके आधार पर पं० आत्माराम अमृतसरी ने जीवन चरित्र को पूरा किया।

वह हजार बड़े-बड़े पृष्ठों का ग्रन्थ है। बहुत दिनों तक सिर्फ उर्दू भाषी इसको पढ़ पाते थे। अभी हाल ही में उसका हिन्दी में रूपान्तर किया गया है।

ग्रंथकार तथ्य को निष्पक्ष होकर पेश करते हैं। ऋषि का जीवन

इतना उज्ज्वल था कि तथ्यों के वर्णन मात्र से उनके पावन चरित्र से पाठक को अच्छी तरह से परिचित करा दिया गया।

कोई घर से विद्याध्ययनार्थ निकल गया हो तो उसे माता-पिता को आर्थिक सहायता पर निर्भर करना नहीं चाहिए। क्योंकि बिरले ही छात्र बिना सहायता लिए उच्च शिक्षा पा लिया करते हैं। कम पढ़े-लिखे अपने देश तथा मानव समाज के काम आते हैं। जो शिक्षित होते हैं उन्हें दिन रात यही चिन्ता रहती है कि कब धन कुबेर बन पावेंगे।

पं० लेखराम द्वारा विरचित जीवन चरित्र से यही मालूम होता है कि जिसने निष्काम भाव से विद्याध्ययन किया है उसी ने अकेले उतनी सेवा की जितनी सैकड़ों लोगों के संयुक्त प्रयत्नों से नहीं हुआ करती।

जो कभी निराश हुआ हो वह इस वृहद् जीवन चरित्र के पाठ से नई आशा से पूरित होकर एक दम नया आदमी बन जाता है।

छोटी जीवनियों या लेखों के पाठक संतोष लाभ करें तो उन्हें इतना ही ज्ञात होगा कि ऋषि बाल विवाह का अन्त ले आये, वर्ण व्यवस्था के समर्थकों की संख्या तथा दाह क्रिया पसन्द करने वालों की संख्या बढ़ाने में सफल हुए और महिलाओं को उच्च स्थान देने में।

सच तो यह है कि जैसे आजकल प्राचीन देशों में खुदाई करके पृथिवी के गर्भ में छिपे रहे नगरों को प्रकाश में लाया जाता है जिन्हें देखने के लिए देश देशान्तर से लोग आते हैं ठीक उसी प्रकार भारत का ज्ञान, धर्म सभ्यता तथा संस्कृति जो छिपा दी गई थी। उसको ऋषि प्रकाश में ले आये जिससे हंसी-मजाक करने वाले आलोचकों की घिग्घी बँध गई। भारत का उद्धार करने का मतलब है दुनिया का उद्धार करना है।

जो ऋषि के सम्पर्क में आये थे, वे भी उनकी देन के मूल्य को कूत नहीं पाते थे। स्वा० श्रद्धानन्द का मुंशीराम नाम था। अपनी युवावस्था में मुंशीराम ने ऋषि के तीन प्रवचन सुने थे वे प्रभावित हुए, फिर भी अन्य युवकों के समान होने के कारण वे मन ही मन कहते थे कि अगर एक परमात्मा तथा वेद को मानना स्वामी जी छोड़ दें तो संसार का कोई भी विद्वान् उनका सामना करने वाला दिखाई न देगा! परिपक्व हो जाने पर मुंशीराम ईश्वर-भक्त बने और वेदों का प्रचार-प्रसार के लिए उन्होंने गुरुकुल खोला। दयानन्द की छाप उनपर पड़ गई। पं० लेखराम भी स्वामी जी से मिले थे। वे भी मान गये थे कि ऋषि महान् थे।

पं० लेखराम द्वारा विरचित ऋषि का वृहद् जीवन-चरित्र समय निकालकर पढ़ने वाले पाठक ही बता सकते हैं कि महान् आत्माओं की जीवनी मामूली पुस्तक में ढूंढने से उनका सत्य स्वरूप दीखेगा नहीं। इस शती में और दो वृहद् जीवन-चरित्र रचे गये। पं० लेखराम का ग्रन्थ फिर भी पढ़ना चाहिए। वह "ब्राह्मण धर्म में नया जीवन फूंकने की कहानी" है।

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।

२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।

३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।

४. सत्यार्थप्रकाश १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश। (जैसे हारून का Haron)।

५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।

६. सत्यार्थप्रकाश की आधार ग्रन्थ सूची।

७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।

८. अन्त में अकारादिक्रम से प्रमाण सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थ प्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्तजी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी संस्करण में दी गई है।

२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।

३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।

४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वांइट के मोटे मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५.००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की सुनहरी जिल्द।
विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य साधना में संलग्न, रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- ० यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झांकी देखना चाहते हैं।
- ० यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं।
- ० यदि आप प्राचीन राज्यव्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं।
- ० यदि आप रामायण के सम्वन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं।
- ० यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं।
- ० यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं।

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण ६००० श्लोकों में समाप्त।

मूल्य : ४० रुपये

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा लिखते हैं—

"सम्पादन, टीका-टिप्पणी और लौह-लेखनीधारी स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा हुई है। पं० आर्यमुनि, पं० राजाराम शास्त्री, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने भी रामायण की टीका क्षेपक-रहित प्रकाशित की थीं। उसमें पादटिप्पणियों का अभाव था। इस टीका में टिप्पणियों की भरमार है जिससे विषय का प्रतिपादन भलीभाँति हो जाता है।...स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का परिश्रम, स्वाध्याय, विद्वत्ता प्रत्येक अध्याय में दृष्टिगोचर होता है।"

श्री अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व ठा० अमरसिंह जी महाराज) लिखते हैं—

"रामायण को देखकर ऐसा लगा कि इसमें कोई आवश्यक बात छूटी नहीं तथा कोई अनावश्यक और अनर्गल बात रहने नहीं पाई। टिप्पणियों तथा शंकाओं के समाधानों ने तो सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दी है।"

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

वैदिक साहित्य के प्रमुख प्रकाशक व विक्रेता

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६
के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखवाली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.००
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	७.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	२.५०
मानव जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	५.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
The only way	३.००
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणबीर लिखित

श्रीमहात्मा आनन्द स्वामी उर्दू	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू औषधियाँ	३.००
वैदिक विवाह पद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा अजिल्द	२०.००
" सजिल्द	३०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

वैद्य गुरुदत्त

विश्वदेवा	६.००
अद्वैतमीमांसा	६.००

पण्डित बिहारीलाल शास्त्री

विचारवाटिका ३.००

प्रो० विष्णुदयाल

वेद भगवान् बोले ४.००

स्वामी सर्वदानन्द

आनन्द उपदेशमाला १.५०

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश ७.००

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार २०.००

दयानन्दप्रकाश **स्वामी सत्यानन्द** १५.००

पं० भगवद्दत्त

भारतीय संस्कृति का इतिहास ७.००

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

महर्षि दयानन्द की देन ४.००

सत्यार्थप्रकाश **स्वामी दयानन्द** २५.००

संस्कारविधि ,, ४.००

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ,, ८.००

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ,, ०.१५

आर्याभिविनय ,, १.००

शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण ,, ०.३७

आर्योद्देश्यरत्नमाला ,, ०.२५

बालशिक्षक ,, ०.३७

व्यवहारभानु ,, १.००

सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार** १.५०

पूर्व और पश्चिम ,, ७.५०

जीवन की राहें ,, ४.००

सु-राज्य की रूपरेखा ,, ०.५०

प्राणायाम विधि **नारायण स्वामी** ०.६०

आर्यसमाज क्या है ? ,, १.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००

स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द** ४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास ४०.००

वेदान्तदर्शन का इतिहास ३०.००

सांख्यसिद्धान्त २४.००

सांख्यदर्शन १६.००

वेदान्तदर्शन ३०.००

वैशेषिकदर्शन २५.५०

न्यायदर्शन २४.००

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान १.५०

पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त) १.००

कथा-पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द** २.५०

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०

स्वामी श्रद्धानन्द १.००

गुरु विरजानन्द १.००

पं० लेखराम १.००

पं० गुरुदत्त १.००

स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

वैदिक धर्मशिक्षा प्रथम भाग ०.६०

वैदिक धर्मशिक्षा द्वितीय भाग ०.६०

वैदिक धर्मशिक्षा तृतीय भाग १.००

वैदिक धर्मशिक्षा चतुर्थ भाग १.००

वैदिक धर्मशिक्षा पंचम भाग १.००

वैदिक धर्मशिक्षा षष्ठ भाग १.००

वैदिक धर्मशिक्षा सप्तम भाग १.२५

वैदिक धर्मशिक्षा अष्टम भाग १.२५

नैतिक शिक्षा नवम भाग १.५०

नैतिक शिक्षा दशम भाग १.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया ।

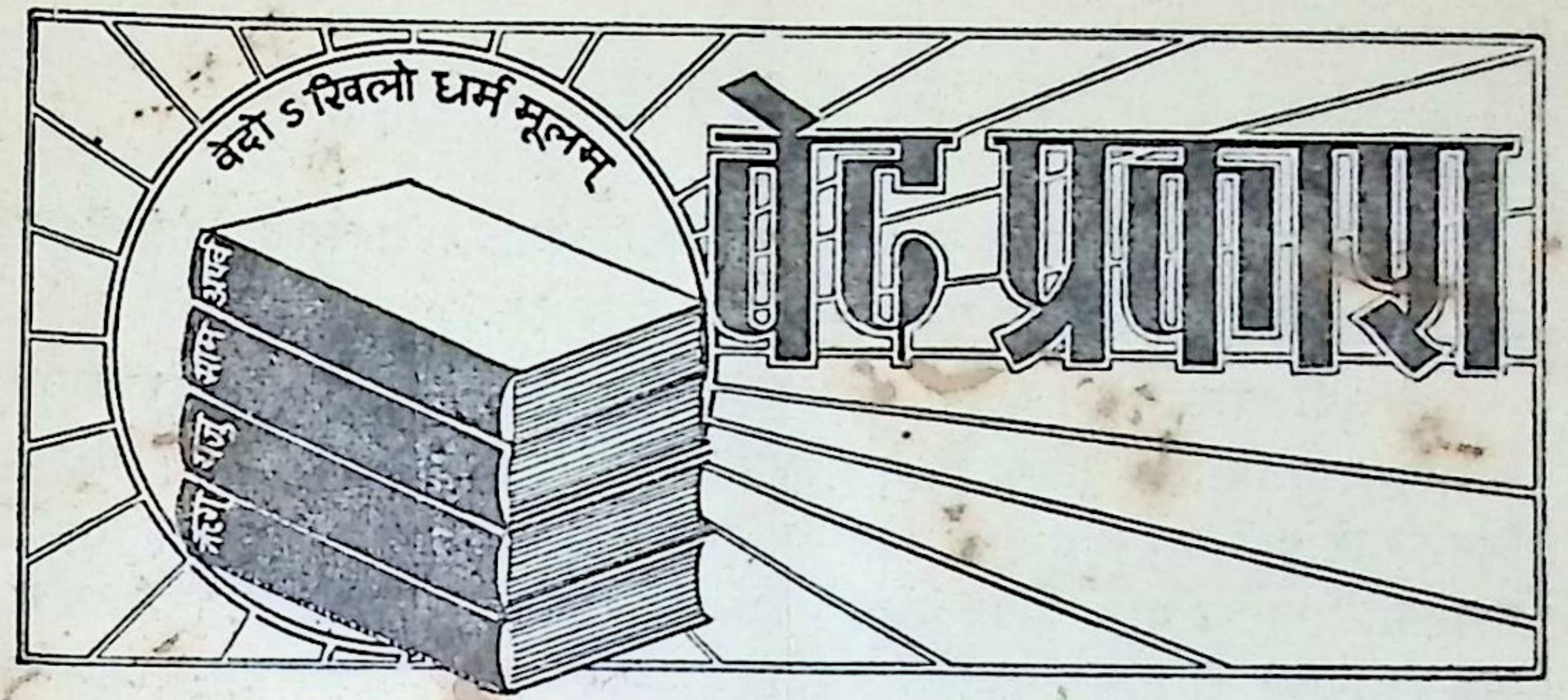

वेद-आज्ञा

युक्त आहार-विहार

जुषस्व सप्रथस्तमं वचो देवप्सरस्तमम् ।
हव्या जुह्वान आसनि ।। ऋ० १ । ७५ । १ ।।

पदार्थः—हे विद्वन् ! (आसनि) अपने मुख में (हव्या) भोजन करने योग्य पदार्थों को (जुह्वानः) खानेवाले आप जो विद्वानों का (सप्रथस्तमम्) अति विस्तारयुक्त (देवप्सरस्तमम्) विद्वानों को अत्यन्त ग्रहण करने योग्य व्यवहार वा (वचः) वचन है (तम्) उसको (जुषस्व) सेवन करो ।

भावार्थः—जो मनुष्य युक्तिपूर्वक भोजन-पान और चेष्टाओं से युक्त ब्रह्मचारी हों वे शरीर और आत्मा के सुख को प्राप्त होते हैं ।

हमारा भोजन

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् ।
तव द्युक्षास इन्द्रवः ।। ऋ० ३ । ४० । ५ ।।

पदार्थः—हे (इन्द्र) पूर्ण अवस्था की कामना करनेवाले जो (तव) आपके (द्युक्षास) प्रकाश में रहने (इन्द्रवः) और स्नेह करनेवाले होवें उनके समीप से (वरेण्यम्) भोग करने योग्य (सुतम्) उत्तम प्रकार बनाया (सोमम्) श्रेष्ठ ओषधियों से युक्त अन्न को (जठरे) उत्पन्न हो सुख जिसमें उस पेट में आप (दधिष्व) धरो ।

भावार्थः—राजा आदि मनुष्यों को सम्पूर्ण पदार्थों के मध्य से उन्हीं पदार्थों का खान और पान करना चाहिए कि जो बुद्धि, अवस्था और बल को निरन्तर बढ़ावें ।

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति । प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली । पृ० सं० २४८ । मूल्य १५.००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र और सूक्त अन्वयार्थ और सरल स्पष्ट भाषा में व्याख्या सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवास युक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

महर्षि दयानन्द के सपनों का आर्यसमाज

आर्यसमाज के मूर्धन्य विचारकों द्वारा प्रस्तुत लेख, जिनमें बताया गया है महर्षि क्या चाहते थे और वह सब कैसे पूरा किया जा सकता है। हर आर्यसमाजी के लिए आवश्यक पुस्तक।

मूल्य ५.०० मात्र

गोविन्दराम हासानन्द

(आर्य साहित्य के प्रमुख प्रकाशक व विक्रेता)

४४०८, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

◈ ओ३म् ◈

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २७, अंक ११] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [जून, १९७८

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

परमात्मा क्या है ?

वेदान्त-दर्शन आर्य सभ्यता तथा ऋषिमुनियों की प्रतिभा और तपस्या की परमोत्तम विभूति है। उस परम-तत्त्व का, जिसे परमात्मा, परब्रह्म परमेश्वर आदि अनेक नामों से पुकारते हैं, जैसा विशुद्ध विवेचन वेदान्त-दर्शन में है, वैसा संसार के किसी भी अन्य दर्शन या ग्रन्थ में नहीं है। वेदान्त-दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले उपनिषद्, गीता आदि अनेक ग्रन्थ हैं, इन ग्रन्थों में परमात्मा अथवा परब्रह्म के स्वरूप का जैसा सुन्दर, स्पष्ट, सरल और सरस वर्णन वह अपने ढंग का बिलकुल अनोखा है। परब्रह्म परमातमा का निम्नलिखित विवेचन इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर है, जिसे ब्रह्म के जिज्ञासुओं और आध्यात्मिक ज्ञान के पिपासुओं की सेवा में समर्पित किया जाता है।

ब्रह्म क्या है ?

ब्रह्म वह परम-तत्त्व है, जिसमें सब कुछ है, जो सब ओर है, जिससे जगत् के सब पदार्थों की उत्पत्ति होती है, जिसमें सब पदार्थ वर्तमान रहते हैं, जिसमें सब लीन हो जाते हैं और जो सब स्थानों, सब कालों और सब वस्तुओं में विद्यमान है। ब्रह्म वह ज्ञान-स्वरूप तत्त्व है, जिससे ज्ञाता, ज्ञान तथा ज्ञेय का; द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्य का; और कर्ता, हेतु, तथा क्रिया का उदय होता है, ब्रह्म वह सत्, चित् और आनन्द-मय तत्त्व है जिससे पृथ्वी और स्वर्ग में आनन्द की वर्षा होती है। ब्रह्म केवल ज्ञानियों के अनुभव में ही आ सकता है, उसका वर्णन नहीं हो सकता। वह अवर्णनीय अनभि-व्यक्त, अप्रगट और इन्द्रियों से परे है। उसका कोई चिह्न नहीं है और वह प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा जाना नहीं जा सकता। वह वाद-विवाद से भी जाना नहीं जा सकता।

मुण्डकोपनिषद् में कहा है कि वह ब्रह्म सत्य, तपस्या, सम्यक्ज्ञान तथा ब्रह्मचर्य से ही जाना जा सकता है। जब ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है तो मनुष्य उसे अपने हृदय में प्रकाशमान ज्योति की तरह अनुभव करने लगता है :—

> "सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
> सम्यक्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ॥
> अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रो
> यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥"

श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी यही कहा है :—

> तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतस्वरणीषु चाग्निः ।
> एवमात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥

अर्थात् जिस प्रकार तिल में तेल, दही में घृत, नदी में जल और यज्ञकाष्ठ में अग्नि रहती है उसी प्रकार वह ब्रह्म सब प्राणियों की आत्मा में निवास करता है। उसे मनुष्य सत्य और तप से प्राप्त कर सकता है।

ब्रह्म न है और न नहीं है

जैसा कि हम ब्रह्म के सम्बन्ध में यह नहीं कह सकते कि वह नहीं है, वैसे ही हम उसके सम्बन्ध में यह भी नहीं कह सकते कि वह है। यह परमतत्त्व वह है जिसमें कि सत्ता और असत्ता दोनों भावों का समावेश है। न वह सत् है न असत्, न दोनों के बीच की स्थिति। न वह है और न नहीं है। उसको किसी प्रकार वर्णन नहीं कर सकते। शून्य और अशून्य सापेक्षक शब्द है। जिसको शून्य नहीं कह सकते उसके सम्बन्ध में शून्यता और अशून्यता का भला क्या विचार? भला वह तत्त्व शून्य कैसे कहा जा सकता है, जिसमें सारा जगत् इस प्रकार मौजूद रहता है जैसे कि जल में तरंग और मिट्टी में घड़ा। भला उस तत्त्व को शून्य कैसे कहें जिसके भीतर तमाम विश्व इस प्रकार वर्तमान है जैसे लकड़ी के टुकड़े के भीतर उससे बनाई जाने वाली वस्तुएँ? लेकिन हमारे दृष्टिकोण से वह शान्त और अजरतत्त्व, जिसमें कि सारी सृष्टि वर्तमान है, आकाश से भी अधिक शून्य और सूक्ष्म है। इसलिए उसे हम शून्य से भी शून्य कह सकते हैं।

ब्रह्म का शाब्दिक वर्णन

यद्यपि ब्रह्म का किसी प्रकार भी वास्तविक वर्णन नहीं हो सकता, तब भी हम उसका शाब्दिक वर्णन यदि करना चाहें तो यह कह सकते हैं कि छोटे से छोटे परमाणु के हजारवें भाग के भीतर जो चिन्मात्र सत्ता वर्तमान है वही ब्रह्म है। वह सत्ता न तो दिखाई देती है और न वर्णन की जा सकती है। न वह समीप है और न दूर। शुद्ध आत्मा का चित् रूप केवल अनुभव किया जा सकता है, वर्णन नहीं। वह सब कुछ है। वह सब का आत्मा है और सब से रहित भी है। वह सब भूतों का आत्मा, शून्य और सत् तथा असत् दोनों ही है। वह न वायु है, न आकाश है, न बुद्धि है, न शून्य है।

वह कुछ नहीं है, तो भी सबका आत्मा है। वह कोई ऐसा पदार्थ है जो आकाश से भी सूक्ष्म है। न वह काल है, न वह मन है, न वह आत्मा है, न वह सत्ता है, न असत्ता, न देश, न दिशाएँ, और न वह ज्ञान है और न अन्य पदार्थ। वह संवेद्य रहित संवित् है, चैत्य रहित चिति है, वह संसार की पराकाष्ठा है, वह सब दृष्टियों की सर्वोत्तम दृष्टि है, वह सब महिमाओं की महिमा है, और सब गुरुओं का गुरु है। वह सब प्राणी रूप मोतियों का तागा है, जो उनके हृदय रूपी छेदों में पिरोया हुआ है। वह सब प्राणीरूपी मिर्चों की तीक्ष्णता है। वह पदार्थ का पदार्थत्व है, वह सर्वोत्तम तत्त्व है। वह वर्तमान वस्तुओं की सत्ता है और स्वयं सत्ता और असत्ता दोनों है। वह सब जगह, सब वस्तुओं से युक्त तथा सर्व भावों से मुक्त है। सब ओर उसके हाथ और पैर हैं। सब ओर उसके सिर और मुख हैं। सब ओर उसके कान हैं। संसार की सब वस्तुओं को घेर कर वह स्थित है।

गीता में भी श्रीभगवान् ने कहा है :—

"सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥"

वह इन्द्रियों द्वारा जाने जानेवाले सब गुणों से रहित है और उनसे युक्त भी है। वह सब का भरण करने वाला किन्तु असक्त है। सब गुणों का भोगने वाला, किन्तु निर्गुण है। सब प्राणियों के भीतर और बाहर है। वह धर और अवर दोनों है। अति सूक्ष्म होने के कारण अविज्ञेय (जानने योग्य नहीं) है। वह दूर भी है और समीप भी। वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, स्थूल से भी स्थूल, भारी से भी भारी और अच्छे से भी अच्छा है। वह इतना बड़ा है कि उसके आगे सारा जगत् भी परमाणु के समान दिखाई पड़ता है, वरन् दिखाई भी नहीं पड़ता। वह इतना सूक्ष्म है कि उसके सामने सूक्ष्म आकाश-तत्त्व भी अणु की तुलना में महामेरु जैसा स्थूल मालूम पड़ता है। वह आत्मा है, वह विज्ञान है, वह शून्य है, वह परमब्रह्म है, वह श्रेय है, वह शिव है, वह विद्या है, और वही परम-स्थिति है। वह सबका अनुभव-रूप अन्तरात्मा है। शरीर में वह सदा चिन्मात्र रूप से स्थित है। वह जगत् रूपी तिल का तेल है, जगत् रूपी घर का दीपक है, जगत् रूपी वृक्ष का रस है, जगत् रूपी पशु का पालने वाला ग्वाला है। वह जगत् में वर्तमान् होते हुए भी नहीं है, वह शरीर में रहते हुए भी अत्यन्त दूर है, वह ऐसा प्रकाश है जिससे सूर्य का प्रकाश उत्पन्न होता है। उससे विष्णु आदि देवता ऐसे उत्पन्न हैं जैसे कि सूर्य से उसकी किरणें। उससे अनन्त जगत् ऐसे उत्पन्न होते हैं जैसे कि समुद्र से बुलबुले। उसकी ओर तमाम दृश्य पदार्थ इस प्रकार जा रहे हैं जैसे कि महासमुद्र की ओर नदियाँ। वह सब पदार्थों और आत्माओं को दीपक की नाईं प्रकाशित करता है। वह आकाश में, शरीर में, पत्थरों में, लताओं में, घाटियों में, पहाड़ों में, हवाओं में और पाताल में वर्तमान है। उसने आकाश को शून्य बनाया, पहाड़ों को कठिन बनाया और जलों को बहनेवाला बनाया। उपनिषद् में भी कहा है कि पहाड़ और समुद्र, नदियाँ और पेड़-पौधे तथा रस पदार्थ सब उसी आदि ब्रह्म से उत्पन्न हैं—

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वऽस्मा-
त्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः ।
अतश्च सर्वा औषधयो रसाश्च
येनैष भूतैस्तिष्ठन्ते ह्यन्तरात्मा ।। मुण्डकोपनिषद्

सूर्य उसके वश में एक दीपक है। जैसे बादल से वर्षा की बूंदें गिरती हैं, वैसे ही उस अक्षय और पूर्ण अमृत से नाना प्रकार के असार संसारों के दृश्य उदय होते हैं। जैसे मरुस्थल में मृगतृष्णा की नदियाँ दिखाई पड़ती हैं वैसे ही उसमें भी त्रिभुवन के उदय और अस्त रूपी लहरें उठा करती हैं। वह सब प्राणियों के भीतर रह कर उनका संहार करने वाला काल है। वह सर्व भावों में गुप्त रूप से वर्तमान रहता हुआ भी सब से अतिरिक्त है। वह हर एक के शरीररूपी पिटारी में चिति रूपी मणि के रूप में मौजूद है। उससे नानाप्रकार के जगत् ऐसे उदय होते रहते हैं, जैसे कि चन्द्रमा से उसकी किरणें। वह अनन्त, अजर, आदि, मध्य और अन्त रहित निरामय शिव है। सब समय और सब जगह वह बिना कान के सुनता है, बिना आँख के देखता है, बिना जिह्वा के स्वाद लेता है, बिना त्वचा के स्पर्श करता है, बिना नाक के सूंघता है। उसका कोई कारण नहीं है, जगत् उसका वैसा ही कार्य है जैसे कि तरंगें जल का। जैसे मशाल के घुमाने से उसमें चक्र दिखाई पड़ने लगता है और उसको स्थिर कर देने पर चक्र गायब हो जाता है, वैसे ही ब्रह्म में जब स्पन्दन होता है तब संसार की शोभा उदय हो जाती है और जब शान्ति हो जाती है तो जगत् का दृश्य लोप हो जाता है। उसका यह व्यापक, महान्, अक्षय और शुद्ध स्वभाव है कि जब उसमें स्पन्दन होता है, तो जगत् की सृष्टि हो जाती है और जब स्पन्दन की शान्ति होती है, तो जगत् का प्रलय हो जाता है। जैसे हवा की सत्ता सब जगह या तो शान्त रूप में है या चलते हुए रूप में, उसी प्रकार ब्रह्म अपने शान्त और स्पन्दयुक्त रूप से सर्वत्र वर्तमान् है; उन दोनों सत्ताओं में व्यवहार के कारण ही नाममात्र का भेद है, वास्तविक भेद नहीं है। ज्ञान का, प्रकाश का, दृश्य का और तम का जो अनादि ज्ञान रूप भाव है वही परमात्मा का रूप है। परब्रह्म वह तत्त्व है जो कुछ भी नहीं होता हुआ भी सदा सब कुछ है, जो यह या वह कुछ न होता हुआ भी सब ही है। परमात्मा वह पदार्थ है जो कल्पना से मुक्त, शान्त और प्रकाशमय सब का आत्मा है। जो अमूक होता हुआ भी मूक है, मनन करता हुआ भी पत्थर के तुल्य जड़ है, भोक्ता होने पर भी नित्य तृप्त है और कर्त्ता होने पर भी कुछ न करने वाला है। जो अंग-हीन होते हुए भी सब अंगों वाला और हजारों हाथ वाला है, जो किसी वस्तु में न रहते हुए भी सारे जगत् में व्याप्त है, जिसमें किसी इन्द्रिय की शक्ति नहीं रहते हुए भी सब इन्द्रियों की क्रियाएँ होती रहती हैं। जिसमें मनन न होते हुए भी मन की सब कल्पनाएँ होती रहती हैं। जैसे समुद्र से तरंगें, भँवर और लहरें उदय होती हैं वैसे ही उससे घट-पट आदि के आकार वाले अनेक पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं। जैसे कटक, अंगद, केयूर और नूपुर आदि अनेक आभूषणों के रूप में सोना प्रकट होता है, वैसे ही वह भी सैंकड़ों पदार्थों के झूठे आकार में प्रकट हो रहा है। उससे ही काल की गति है, दृश्य

की दृश्यता है, मन की क्रिया है और उसी के प्रकाश से यह सब जगत् प्रकाशित हो रहा है। वह परमाणु से भी परे है। सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं। आकाश के भीतरी भाग से भी शुद्ध, सूक्ष्म और शान्त है। उसके प्रकाश का न आदि है और न अन्त और न उसको प्रकाशित करने वाला कोई दूसरा पदार्थ है। उसका रूप आकाश के, शिला के और पवन के भीतर मौजूद है। वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से परे होने के कारण अवर्णनीय है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह कोई वहुत उत्तम, सूक्ष्म, सर्वात्मक, शुद्ध, अनुभवमात्र तत्त्व है जो कि सब कुछ है। वह न सत् है, न असत् और न दोनों का मध्य। वह कुछ भी नहीं है, तो भी सब कुछ है। वह मन और वचन में आने वाली कोई वस्तु नहीं है। वह शून्य से शून्य है और सुख से भी अधिक सुखकर है। वह शुद्ध आनन्द-स्वरूप है।

ओ३म् तत् सत्

□

हृदय-रोग दूर करने के उपाय

अथर्ववेद के काण्ड एक अनुवाक ५ सूक्त २२ में चार मन्त्र हैं। जिनमें हृदय रोग दूर करने के उपाय ब्रह्मा ऋषि ने बताये है।

वे मन्त्र इस प्रकार हैं :—

ओ३म् अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते।
गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि॥ १॥
ओ३म् परित्वा रोहितैर्वर्णैर्दीर्घायुत्वाय दध्मसि।
यथायमरपा असदयो अहरितो भुयत्॥ २॥
ओ३म् या रोहिणी देवत्याऽगावो या उत रोहिणीः।
रुपं रुपं वयोवयस्ताभिष्ट्वा परि दध्मसि॥ ३॥
ओ३म् शुकेषु ते हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रयेषु ते हरिमाणं नि दध्मसि॥ ४॥

मन्त्रों के अनुसार हृदय रोग दूर करने के उपाय निम्नलिखित हैं :—

(१) उगते हुए सूर्य की किरणें ग्रहण की जावें। सूर्योदय से ५-६ मिनट पहिले उसकी सिन्दूरी लालिमा को देखते हुए सूर्योदय का इन्तजार करें एवं सूर्य की सर्वप्रथम किरण आप ही पर पड़े और जब सूर्य का सिन्दूरी रंग समाप्त हो जाये तो हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जाता है इसके करीब सूर्योदय के बाद १० मिनट तक किरणों को ग्रहण करना चाहिये।

(२) लाल गाय का दूध पीवें अगर किसी कारणवश लाल गाय का दूध न मिल सके तो सफेद गाय का दूध इस्तेमाल करें और लाल गाय का दूध प्राप्त करने

का प्रयास करते रहें। यह भी ध्यान रहे कि हृदय-रोग में गाय की ही छाछ, गाय का ही दही और गाय का ही घी खाना चाहिये।

(३) हल्दी का प्रयोग :—प्रातः काल असली हल्दी का आधा तोला चूर्ण एक गिलास दूध में घोलकर लेवें। दूध इच्छानुसार एक दो गिलास ज्यादा भी ले सकते हैं जिन सज्जनों को कच्ची हल्दी मिल सके वे उसका शाक खायें एवं अचार भी बना लेवें।

(४) हरड़ का प्रयोग:—रोजाना रात को सोते समय आधा तोला हरड़ का चूर्ण फाँक कर एक गिलास दूध पीवें, दूध एक-दो गिलास ज्यादा भी ले सकते हैं। हरड़ बड़ी लें, एवं अगर हो सके तो पंसारी से रोहिणी किस्म की हरड़ लेवें। (नोट—हरड़ सात प्रकार की होती है:—(१) रोहिणी, (२) विजया, (३) पूतना, (४) अमृता (५) अभया, (६) जीवती, (७) चेतकी। साधारणतया बड़ी हरड़ किसी भी किस्म की हो उपयोग कर सकते हैं।

उपरोक्त प्रयोग शास्त्रीय है और इसके लिए अथर्ववेद के भाष्यकर्त्ता सायणाचार्य, मैक्समूलर, जयदेव विद्यालंकार, सत्यदेव इत्यादि के भाष्य विचार किये गये हैं। एक-दो विद्वानों का यह भी विचार है कि तोता पालने से उस कमरे में हृदय रोग का दौरा नहीं होता, लेकिन यह विवादग्रस्त हैं।

ऊपर लिखी हुई मात्राएँ, अगर रोग की अधिकता हो तो, अधिक बढ़ाई जा सकती है। उपरोक्त प्रयोग अनुभूत है और आशा है पाठकगण लाभ उठावेंगे अगर किन्हीं को ज्यादा स्पष्टीकरण की आवश्यकता हो तो वे कृपया पत्र द्वारा सम्पर्क कर सकते हैं।

पता:—
आर० सी० गोयल **रमेशचन्द्र**
सहायक निदेशक,
भूमि व भवन कर विभाग
सीकर (राजस्थान)

लेखक महोदय ने इस प्रयोग का स्वयं अनुभव किया है, जिससे उनका रोग सर्वथा नष्ट हो गया, और उन्होंने लगभग ९८ व्यक्तियों पर इसका प्रयोग किया है, जो सभी आरोग्य-लाभ कर चुके हैं। पाठकों को इससे लाभ उठाना चाहिये।

—सम्पादक

□

गुरू और शिष्य

वा० विष्णुदयाल

प्राचीन भारत में लोग आत्मा की खोज में निकला करते थे। शरीर को प्राथमिकता नहीं दी जाती थी। जब कभी किसी कुरूप विद्वान् का निरादर किया जाता था तो निरादर करने वालों की समाज में इज्जत नहीं होती थी। शरीर की कीमत कितनी कम है यह तब मालूम होता है जब आदमी मुर्दा हो जाता है। मृत पशुओं के चमड़े से काम लिया जाता है जब कि मनुष्य की चमड़ी किसी भी काम के लायक नहीं रहती। पेड़ गिर जाय तो उसकी लकड़ी का उपयोग किया जाता है।

आर्यसमाज आत्मा की उपेक्षा करने को तैयार नहीं है। उसने प्राचीन भारत को आधुनिक भारत में स्थापित करने का संकल्प किया है। सौ साल हो गये, जब से उसके निर्माता ने वैदिक युगीन भारत की ओर हमें लौटाने के प्रयत्न करने का आरम्भ किया था।

आदर्श गुरू

उन्हें ठीक जिस समय किसी आदर्श गुरू की आवश्यकता पड़ी वे उन्हें मिल गये।

क्या स्वा० दयानन्द जैसे सुन्दर शरीरधारी ने नेत्रहीन गुरू पाकर उनके चरणों में बैठने से इंकार किया था?

वे तत्क्षण गुरू के कृपाभाजन हो गये। प्राचीन युग में जब कोई गुरू अपने शिष्य से असंतुष्ट होते थे तो उन से पढ़ाये गये ग्रन्थों का ज्ञान लौटाने को कहते थे मानो शिष्य का शरीर वह गृह समझा जाता था जिसमें ज्ञान का निवास नहीं हो सकता था। दण्डी जी आदित्य ब्रह्मचारी दयानन्द से रुष्ट हुए न थे जब उन्होंने उन्हें पठित पुस्तकों को नदी में बहाने का आदेश दिया था। गुरू ने अथर्ववेद के इस मन्त्रांश के अनुसार आचरण किया था:

"एतत् (यह) मुख्य (वासः) वस्त्र तुझे अब (आ अगन्) प्राप्त हुआ है, इस वस्त्र को (अप ऊह) छोड़ जो पहले तूने धारण किया है—पहला वस्त्र है अज्ञान, जो प्राप्त हुआ है वह है ज्ञान।"

नये गृह में आर्ष ग्रन्थ में पाये जाने वाला ज्ञान निवास करने लगा।

यदि मथुरा में शिष्य गुरू से न मिल कर उनसे कलकत्ते में मिलते आर्ष ग्रन्थ पढ़ने पर जो बल दिया गया था वह दिया न गया होता।

दण्डी जी को पढ़ाने का अनुभव हो गया था। कलकत्ते में अध्यापन कर चुके थे।

पढ़ना उनका व्यसन-सा हो गया था। वे किशोर थे जब कनखल में उनके गुरू स्वामी पूर्णानन्द ने चार साल लगाकर उन्हें अष्टाध्यायी नामक व्याकरण पढ़ाया। इस व्याकरण के ग्रन्थ का दण्डी जी ने साथ देना अन्तिम घड़ी तक न छोड़ा। जब वे स्वर्ग सिधारने लगे उसी तरह शिष्यगण रोने लगे ठीक जिस तरह महात्मा बुद्ध संसार को जब छोड़ने वाले थे उनके प्यारे शिष्य आनन्द रोने लगे थे। दण्डी जी ने शिष्य-मण्डली से कहा :

"रोने की क्या जरूरत है? मैं अष्टाध्यायी में समा रहा हूँ। यह रहे तो समझना कि विरजानन्द जीवित है।"

शिष्य ने वही किया जो गुरू ने किया था। भारत में किताबों की कमी न थी। पुस्तकों के जंगल में पाठक खो जाया करते थे। सत्यार्थप्रकाश रचकर ऋषि दयानन्द ने हमें कहा कि यह अर्थात् अमुक-अमुक ग्रन्थ अपनाओ और शेष किताबों को पढ़कर जो अल्प-समय मिलता है उसे व्यर्थ न खोओ। उन्होंने भी कुछ पुस्तकों को त्यागने को कहा।

गुरू के समान वे व्याकरणी थे। शब्द के सच्चे अर्थ की ओर उन्होंने हमारा ध्यान खींचा।

शब्दों के अर्थ करने में विद्वान् गलती करते न थे। स्वामी जी ने जोरदार शब्दों में हमें कहा कि वेदों की ओर लौटो, उस जमाने को पुनर्जीवित करो जब लोग गलती से बचा करते थे।

स्वामी दयानन्द की सीटी

सत्यार्थप्रकाश की शती धूम-धाम से मॉरीशस में मनायी जा रही थी जब श्रोताओं को स्मरण कराया गया था कि चार सदी पहले यह द्वीप निर्जन था। भारतीय नाविक फल और मीठा जल लेने यहाँ आते थे। वे अपने साथ काक ले आया करते थे। रॉलिन्सन ने माना है कि यह पक्षी भारतीय नाविकों का साथ देता था। व्यापारी जहाज के आरोही थे। वे एक बार बेबिलोन गये थे जहाँ पक्षियों का अभाव था। उनके साथ एक कौआ था जिसे देखकर उस देश के निवासी गद्‌गद् हो गये। दूसरी बार वे एक मोर ले गये थे जो नृत्य करता था। अब उस देश के लोग काक पक्षी की उपेक्षा करने लगे! यह जानने के लिए कि जहाज ज़मीन के निकट आया है कि नहीं; काक पक्षियों को छोड़ने की आदत थी।[1]

---

1. We hear of Indian merchants who took periodical voyages to the land of Baberu (Babylon) There were very few birds in that country, and on their first visit the merchants brought with them an Indian crow, which excited great admiration. But on

जब यह टापू आबाद हुआ, इसके प्रथम शासकों ने भारतीय कौए यहाँ के वनों में देखे थे। ये उन पक्षियों के वंशज थे जो भारतीय व्यापारी अपने साथ सर्वत्र ले जाया करते थे।

जो पक्षी सावधान रहा करते थे वे जहाज से उड़कर अति दूर जाते न थे। सीटी सुनते ही वे जहाज पर आया करते थे। सावधानी से काम न लेने वाले बहुत दूर पहुँचते थे और सीटी सुन ही नहीं पाते थे।

श्रोताओं को कहा जाता था, हम भी पक्षी हैं। वेदों में आत्मा को पक्षी कहा गया है। पक्षी की कथा विदेशों में सुनायी गई थी, पर मनोरञ्जनार्थ सुनायी गई कथा का एक अंग भूलकर लोग कहने लगे कि परमात्मा पिता हैं, आत्मा मनुष्य है और तीसरा जो पवित्रात्मा है कबूतर है। यह हमारे त्रैतवाद का बिगाड़ा गया रूप है। फिर भी इसमें पक्षी की चर्चा होती है।

जो हम में से सावधान होंगे वे सीटी सुनकर जहाँ लौटना चाहिए वहाँ लौट जायेंगे। स्वामी जी ने कहा, वैदिक काल में लौटना अभीष्ट है। वैदिक युग हम पक्षियों का जहाज है जिसमें रहकर लहरों का सामना कर सकेंगे, सुरक्षित रह पावेंगे।

स्वामी जी जोर-शोर से वेदों का आश्रय लेने का आग्रह अपने प्रवचनों तथा ग्रन्थों में किया करते थे। उस बलपूर्वक किये गये आग्रह की तुलना सीटी से की जा सकती है।

बीसवीं सदी में फिर सीटी बजी है। महात्मा गांधी ने वैदिक युग को महत्त्व देकर उसे इस युग में पुनर्जीवित करने की इच्छा उन शब्दों में व्यक्त न की जो ऋषि के शब्द थे।

वे विलायत में अपनी युवावस्था में रह चुके थे। जो उनमें प्रतिक्रिया हुई वह हमें इस मत के होने की इजाजत देती है कि ऋषि ने रोग का जो निदान किया था उसी का इन्होंने भी किया था।

महात्मा जी का कहना था कि पश्चिम की सभ्यता रोगग्रस्त है, नहीं-नहीं विष है। यह मानती[2] है कि वस्तु सबकुछ है, आत्मा का कोई स्थान नहीं है। ऐसी स्थिति में भारत की संस्कृति नई मांग के अनुसार होनी चाहिए, यह उनकी धारणा थी। नई माँग है कि वस्तु से जो भिन्न है उसे पहचाना जाय।

---

a subsequent voyage they took a wonderful performing peacock, and the poor crow found himself quite eclipsed !

—Long ago merchants sailed far out of sight of the coast, taking "shore-sighting" birds, which were released from time to time, in order that they might guide the mariners to land.

—H. G. Rawlinson, *India and the Western World*

2. Gandhi realised that, in this age of fast changes and quick means of communication, India was busy with evoling a culture which should be worthy of her and able to meet the new challenges of the world...

ऋषि ने जो कहा, वह उस महापुरुष द्वारा दोहराया गया जो जगत में पूजे जाते थे।

धन को येन केन प्रकारेण जुटाना, यह वर्तमान युग के मानवों का उद्देश्य हो गया है। पश्चिम के अनेक चिन्तक यह देखते आ रहे हैं। वे अब चिन्तित हो उठे हैं।

महात्मा बुद्ध दुःख का निवारण करने में प्रयत्नशील थे। स्वा० दयानन्द तथा महात्मा गांधी ने दुःख से छुटकारा पाने के लिए वैदिक युग तथा रामायण युग से शिक्षा ग्रहण करने को कहा। हम एकदम बहरे होंगे तो सीटी न सुनेंगे। जिसने दोनों कानों में रुई भर दी है वही सत्यार्थ को नहीं अपनायेगा। मॉरीशस तक ने इस ग्रन्थ को छपवाया, इसके फ्रेन्च उल्था को मुद्रित करवाया। जब आदर्श गुरू दण्डी जी को आदर्श शिष्य प्राप्त हुए थे तब गुरू अस्सी वर्ष की अवस्था के हो गये थे। उनका स्वर क्षीण था। शिष्य का स्वर तीव्र था। आवाज में तीव्रता न होती तो हमारी निद्रा भंग न होती।

He agreed with Tagore that what he called the 'thing' stifle the spirit.

Some persons have bluntly put the question. Ban Gandhism set back the hands of the clock of time and revert to the simplicity of a by gone age ?

Many of the great thinkers of the west are beginning to ask themselves whether their life is based on sound and sensible foundations whether the loss of its basic sensililties and their substitution by a mad rush for speed and the crazy pursuit of wealth, real by makes sense. —*Dr. K. Z. Saiyidain*

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश (जैसे हारून का Haron)।
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची।
७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।
८. अन्त में अकारादिक्रम से प्रमाण-सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च-स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी-संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वाइंट के मोटे मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५.००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज-संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की सुनहरी जिल्द।

विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य साधना में संलग्न, रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झांकी देखना चाहते हैं।
- यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं।
- यदि आप प्राचीन राज्यव्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं।
- यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं।
- यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं।
- यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं।

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण ६००० श्लोकों में समाप्त। मूल्य : ४० रुपये

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा लिखते हैं—

"सम्पादन और टीका-टिप्पणी लौह-लेखनीधारी स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा हुई है। पं० आर्यमुनि, पं० राजाराम शास्त्री, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने भी रामायण की टीका क्षेपक-रहित प्रकाशित की थीं। उसमें पादटिप्पणियों का अभाव था। इस टीका में टिप्पणियों की भरमार है जिनसे विषय का प्रतिपादन भलीभाँति हो जाता है।...स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का परिश्रम, स्वाध्याय, विद्वत्ता प्रत्येक अध्याय में दृष्टिगोचर होते हैं।"

श्री अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व ठा० अमरसिंह जी महाराज) लिखते हैं—

"रामायण को देखकर ऐसा लगा कि इसमें कोई आवश्यक बात छूटी नहीं तथा कोई अनावश्यक और अनर्गल बात रहने नहीं पाई। टिप्पणियों तथा शंकाओं के समाधानों ने तो सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दी है।"

महात्मा नारायण स्वामी जी की अनुपम पुस्तक

कर्त्तव्य-दर्पण

छपकर तैयार, पूरे कपड़े की जिल्द, मूल्य ४.००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद् सदस्य तथा उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति।

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

निम्न विषयों को लेखक ने सरल भाषा में समझाया है।

१. मन (भौतिकवादी दृष्टिकोण)
२. मन (आध्यात्मिक दृष्टिकोण)
३. चेतना, मन तथा आत्मा ४. चेतना
५. ईश्वर ६. सृष्ट्युत्पत्ति ७. कर्म
८. निष्काम कर्म ९. शिक्षा १०. जीवन
११. पुनर्जन्म १२. मृत्यु

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसी !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्त्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभु मिलन की राह	६.००
घोर घने जंगल में	६.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
महामन्त्र उर्दू	३.५०
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू ओषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
चतुर्वेद शतकम्	८.००
सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा (अजिल्द)	२०.००

पं सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

प्रो० विष्णुदयाल

वेद भगवान् बोले ६.००

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

ब्रह्मचर्य सन्देश ७.००

स्वामी सत्यानन्द

दयानन्दप्रकाश १५.००

डॉ० प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००
महर्षि दयानन्द की देन ४.००
सत्यार्थप्रकाश **स्वामी दयानन्द** २५.००
संस्कारविधि ,, ४.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ,, १०.००
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश ,, ०.१५
आर्याभिविनय ,, २.००
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण ,, ०.३७
आर्योद्देश्यरत्नमाला ,, ०.२५
बालशिक्षक ,, ०.३७
व्यवहारभानु ,, १.००
सन्ध्या विनय **नित्यानन्द वेदालंकार** २.००
पूर्व और पश्चिम ,, ७.५०
जीवन की राहें ,, ४.००
सु-राज्य की रूपरेखा ,, ०.५०
प्राणायामविधि **नारायण स्वामी** ०.६०
आर्यसमाज क्या है ? ,, १.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००
स्वाध्यायसंग्रह **स्वामी वेदानन्द** ४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य ०.५०

पं० इन्द्र विद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे सैंकड़ा १५.००
सत्संग गुटका ५० पैसे (छोटा) ,, ४०.००
आर्य सत्संग गुटका (बड़ा) ८० पैसे ,, ६०.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका २.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

वेदार्थ विज्ञान १.५०
पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथ्वी सूक्त) १.००
कथा-पचीसी **स्वामी दर्शनानन्द** २.५०
बाल शिक्षा ०.६०
उपनिषद् प्रकाश १२.००
वैशेषिक दर्शन ८.००
न्याय दर्शन ६.००
सांख्य दर्शन ५.००

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.००
स्वामी श्रद्धानन्द १.००
गुरु विरजानन्द १.००
पं० लेखराम १.००
पं० गुरुदत्त १.००
स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००
नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.००
नैतिक शिक्षा पंचम भाग १.००
नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग १.००
नैतिक शिक्षा सप्तम भाग १.२५
नैतिक शिक्षा अष्टम भाग १.२५
नैतिक शिक्षा नवम भाग १.५०
नैतिक शिक्षा दशम भाग १.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।

926 (VI) दि. सं. 78 (साप्ता.)

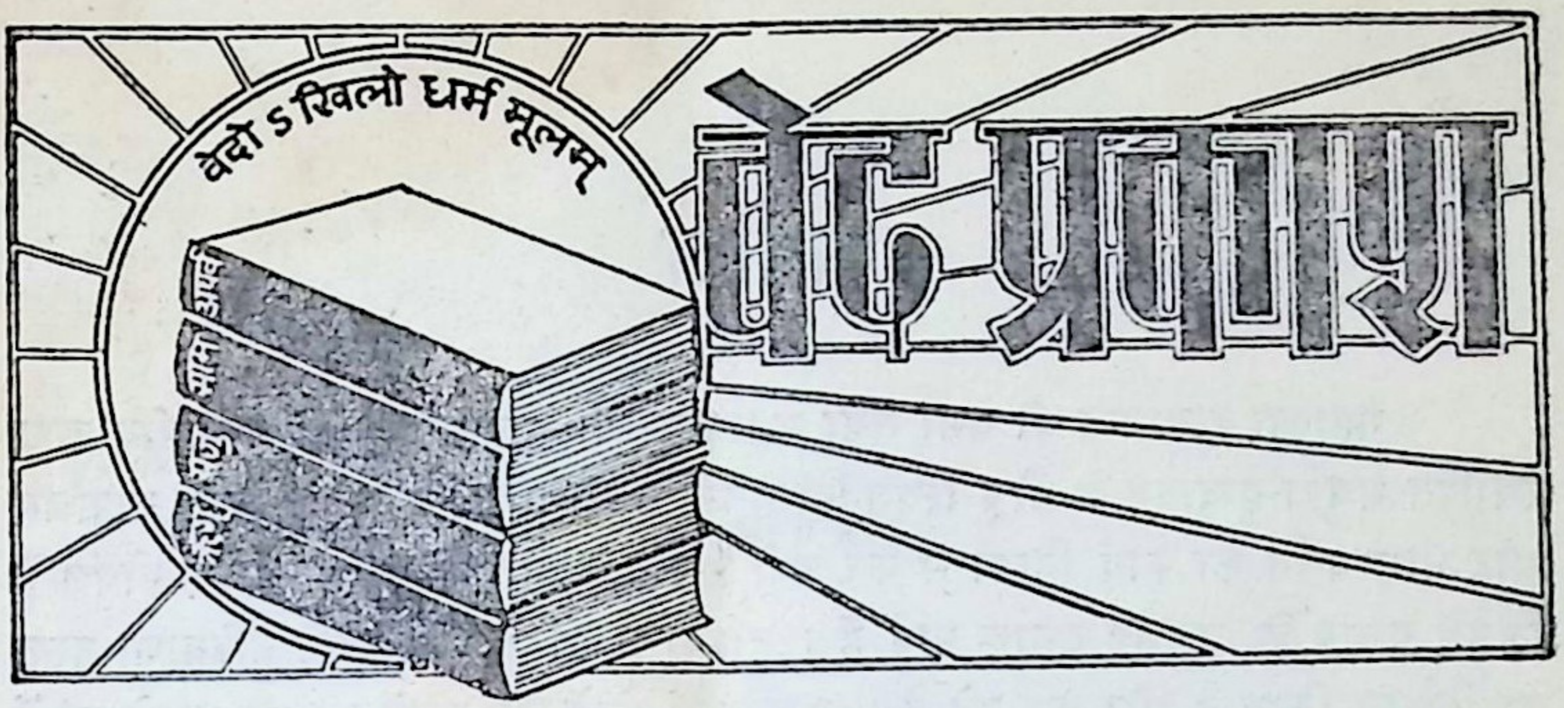

स्वामी धर्मानन्द जी भी चल बसे

आर्यजगत् के गौरव, ऋग्वेद एवं सामवेद के आङ्गल भाषा में भाष्य करनेवाले, गुरुकुल कांगड़ी के आरम्भिक और मेधावी स्नातक, आश्रम-मर्यादा के पालक, वेद-सम्बन्धी दर्जनों ग्रन्थों के लेखक स्वामी धर्मानन्द जी महाराज का ८.११.७८ को प्रातः हृदय-गति अवरुद्ध होने से देहान्त हो गया। आपके निधन से आर्यजगत् की महती क्षति हुई है। आर्यजगत् की पुरानी पीढ़ी के विद्वान् जा रहे हैं। दो-चार शेष हैं। नये विद्वान् आ नहीं रहे हैं। कारण, अब आर्यसमाज को विद्वानों की आवश्यकता नहीं है। आज आवश्यकता एम० पी० और मिनिस्टरों की है। आर्यसमाज के सम्मेलनों में उन्हीं का बोलबाला रहता है। क्या आर्यजगत् के कर्णधार सोचेंगे? स्वामी जी के प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि होगी उनके वेदभाष्य और अप्रकाशित ग्रन्थों को प्रकाशित कराना तथा सिद्धान्तविहीन, मांस और अण्डे खानेवाले, शराब पीनेवाले भ्रष्ट लोगों से महर्षि दयानन्द की पवित्र वेदि की सुरक्षा करके विद्वानों का सत्कार करना।

—जगदीश्वरानन्द

अपील

महात्मा हासानन्द जी वर्मा तथा महामना पं० मदनमोहन जी मालवीय द्वारा स्थापित मथुरा-वृन्दावन के बीच स्थित 'हासानन्द गौशाला' आज ४३ वर्षों से गोपालन और गोसम्वर्धन का कार्य निष्ठा से कर रही है। वर्तमान गौशाला में २७० गोवंश है जिसमें पचास के लगभग दुधारू गायें हैं। हरियाणा सांडों द्वारा हमने हरियाणा नस्ल का विकास किया है और कर रहे हैं। पार्श्ववर्ती क्षेत्रों की गायों को भी अपने सांडों द्वारा हम निःशुल्क सेवा देते हैं। गोपालन और गोसम्वर्धन की दिशा में इस भाँति किये जा रहे हमारे कार्यों से सन्तुष्ट होकर 'पशुपालक विभाग, उत्तर प्रदेश गौशाला फेडरेशन' तथा सम्वन्धित विभागीय अधिकारी समय-समय पर हमें संस्तुति-पत्र प्रदान करते रहे हैं किन्तु वाधायें सत्कार्यों को भी प्रायः आ घेरती हैं; यद्यपि वह अग्निपरीक्षा होती है परन्तु कार्य तो बाधा से प्रभावित होता ही है।

इस वर्ष हमारे साथ भी ऐसा ही हुआ है। मथुरा की बाढ़ के प्रकोप के समाचार आपने पढ़े और सुने होंगे। इस बाढ़ से खादर की ४० एकड़ की हमारी सारी खेती वर्बाद हो गई है जिसके एवज़ में गायों के लिये भूसे का प्रवन्ध करने तथा अन्न की क्षतिपूर्ति पर हम पर २०००० रु० से अधिक का अतिरिक्त भार आ पड़ा है। यमुना के सहारे-सहारे ४०० एकड़ भूमि में फैली हमारी चरागाह भी, जिसमें न केवल हमारा गोवंश ही, वरन् यहाँ की सभी गौशालाओं का तथा आसपास के गाँवों का भी पशुधन चरता और विश्राम पाता था, प्रायः दलदल बन गया है। चरकर पेट भरने के लिये भी कोई स्थान बचा ही नहीं है। चारा, जो थोड़ा-बहुत बाज़ार में मिलता है, बहुत महँगा हो गया है। फलतः चारे की विषम समस्या हमारे सामने आ खड़ी हुई है। इस विपदा में गौशाला के गोवंश का पालन आप-जैसे गो-सेवकों के सहयोग पर ही निर्भर करता है।

हमें आशा है कि चारा अथवा धन के रूप में अपना योगदान देकर आप गौमाता का उद्धार करेंगे। आप गौमाता का भला करेंगे तो गौमाता आपका भी भला करेगी।

आपके सहयोग के लिये हम आपके अति आभारी होंगे।

सधन्यवाद दान प्राप्त

२५१.०० रमेशचन्द्र जी, कैलाश नगर, दिल्ली
२५१.०० अजय प्रिन्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली
५१.०० चन्द्रप्रकाश शिवनाथ राघव, काशी, वाराणसी

मन्त्री, मथुरा-वृन्दावन हासानन्द गोचर भूमि ट्रस्ट-समिति, मथुरा।

◈ ओ३म् ◈

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २८, अंक ५]   वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया   [दिसम्बर १९७८

सम्पादक : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

एक और एथेन्स का सत्यार्थी—
महर्षि दयानन्द सरस्वती

—डॉ० लक्ष्मीनारायण दुबे

स्वर्गीय सुदर्शन की एक कहानी पढ़ी थी 'एथेन्स का सत्यार्थी'। वह सत्यान्वेषी एथेन्स का तरुण दार्शनिक सत्य के नग्न दर्शन में बावला हो गया। और जब उसने सत्य का नग्न स्वरूप देखा तो वह नयन-ज्योति से विहीन हो गया।

कहानी का नायक भले ही काल्पनिक हो परन्तु भारत में भी एक और एथेन्स का सत्यार्थी हुआ था। वह कल्पना अथवा भावुकता नहीं थी—वह यथार्थ था, नितान्त यथार्थ और जीवित यथार्थ!

वह एथेन्स का सत्यार्थी था, वह एक व्यक्तित्व था : **महर्षि दयानन्द सरस्वती!** जी हाँ! महर्षि दयानन्द सरस्वती!! विद्यामल्ल, तर्क-कर्ण, अजेय विचार-सेनानी, दृढ़, उग्र, अक्खड़, साहसी और जुझारू!!

स्वामी दयानन्द सरस्वती सचमुच एक व्यक्तित्व थे। ऊँचाई ६ फुट आठ इंच। विशाल काया। मुखमण्डल पर अद्वितीय तेजस्विता!! अखण्ड ब्रह्मचर्य तथा अनुभूत योगसिद्धि ने उनके व्यक्तित्व को अपूर्व कान्ति, आकर्षण, प्रभाव तथा दर्प से अभिभूत कर लिया था।

वे कबीर की भाँति अक्खड़ थे—सब कुछ को झाड़-फूंककर रखनेवाले। कालिदास के समान अनासक्त योगी और आर्य-धर्म के उत्थान में रसखान के समान निष्ठापूर्ण प्रीतियुक्त। उनमें भूषण का राष्ट्रदर्प था। उन्हें समूचे भारत ने 'महर्षि' कहा। वे ठीक महर्षि ही थे। परन्तु तुलसी के समान 'कवित विवेक एक नहीं मोरे, सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे' वे भी कहा करते थे कि मैं यदि कपिल तथा कणाद के युग में हुआ होता तो उनके सेवक बनने की भी पात्रता नहीं रखता था।

एक ओर एथेन्स के सत्यार्थी थे—गांधी जी, परन्तु वे मध्यम-मार्गी थे, जबकि स्वामी जी अतिवादी। उन्होंने किसी से समझौता नहीं किया। कदापि मध्यम मार्ग स्वीकार नहीं किया।

भीष्म पितामह के बाद उनसे बड़ा दूसरा कोई ब्रह्मचारी नहीं हुआ। जगद्गुरु शंकराचार्य के पश्चात् उनसे बड़ा कोई विद्वान् नहीं हुआ।

उन्होंने अपने जीवन के अड़तालीस वर्ष विद्या के अखाड़े में दण्ड पेलने में व्यतीत किये थे। उनका शरीर फौलाद तथा बुद्धि कुशाग्र हो गई थी। वे महायज्ञ दण्डी स्वामी परिव्राजकाचार्य विरजानन्द महाराज के पट्ट शिष्य थे। उन्होंने तीन वर्षों में अपने शिष्य को ऐसा तैयार किया कि वे रामानन्द के लिए कबीर, समर्थ रामदास के लिए छत्रपति, महामति प्राणनाथ के लिए महाराजा छत्रसाल, परमहंस के लिए स्वामी विवेकानन्द और महात्मा गांधी के लिए जवाहरलाल नेहरू बन गये। स्वामी जी ने वैदिक धर्मप्रचार, आर्योत्थान, शास्त्रार्थ तथा भीषण प्रहारों से आक्रान्त हिन्दू धर्म की समुचित रक्षा की।

उनका जीवन क्या था?—शास्त्रार्थ, शास्त्रार्थ और शास्त्रार्थ!! वे शास्त्रार्थ-समरांगण के अपराजेय योद्धा थे। वे हिन्दू धर्म की तलवार बने। उन्होंने चुनौती दी, ललकारा। देश की पण्डित-मण्डली में वे वनराज की भाँति प्रवेश करते थे और दहाड़ते थे। उनकी सिंहगर्जना ने भारतीय संस्कृति के घोर आलोचकों तथा विरोधियों के कान खड़े कर दिए। कलकत्ता में रामकृष्ण परमहंस ने उनके मुख-मण्डल पर दर्प-युक्त लालिमा देखी थी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उनको गुरुदेव कहा था। महर्षि अरविन्द ने उन्हें सच्चे सैनिक, योद्धा तथा शिल्पी के रूप में स्मरण किया था। सरदार वल्लभभाई पटेल ने स्पष्टतया लिखा था कि 'मेरे प्रथम गुरु दयानन्द हैं और दूसरे गांधी जी'।

वे सत्य के शहीद थे। उन्हें सत्य से कोई डिगा नहीं सका। इसकी कीमत उन्हें चुकानी पड़ी। उन्हें सत्रह बार विष दिया गया था। वे ज़िन्दा शहीद थे। सत्य की यज्ञाग्नि में उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था। वे जीवित समिधा थे। उन्होंने सत्य के कारण न किसी से समझौता किया और न कोई सन्धि। उनकी भाषा खड्ग की भाषा थी। उनका तूणीर अक्षय था। हिमालय के एक महन्त ने उनको समस्त सम्पदा देने को कहा परन्तु वे आडम्बर स्वीकार नहीं कर सके। रुपयों से भरे बोरे उनके पास भेजे गये परन्तु उन्होंने मूर्ति-पूजा का विरोध समाप्त नहीं किया। काशी के विद्वानों ने कहा था कि यदि आप प्रतिमा-पूजन के विपरीत वक्तव्य देना बन्द कर दें तो आपकी हाथी पर सवारी करके शोभायात्रा निकाली जावे और आपको अवतार घोषित कर दिया जावे। परन्तु वे टस से मस नहीं हुए। जोधपुर में जाते समय उनके शुभचिंतकों ने भावी संकट को देखते हुए उन्हें रोका था। इस पर महर्षि ने ऐतिहासिक उत्तर दिया था: "यदि लोग मेरी उँगलियों की बत्तियाँ बनाकर जलायें तब भी मुझे कुछ शंका नहीं हो सकती। मैं वहाँ जाऊँगा और अवश्य वैदिक धर्म का, प्रचार करूँगा।"

उनके खण्डन-खड्ग ने सबको धराशायी कर दिया। हरद्वार में फहरायी उनकी पाखण्ड-खण्डिनी पताका ने अपने विलोडन में समूचे भारत को ले लिया। उन्होंने सत्य के पीछे प्राणोत्सर्ग भी कर दिया। उनकी टंकारा (सन् १८२४) की धनुष टंकार अजमेर (सन् १८८३) में जाकर शाश्वत परिणति पा गयी। वे 'शिवरात्रि' (ऋषि-बोधोत्सव) के लोक-कल्याण से सम्पृक्त होकर 'दीपावली' (निर्वाण-पर्व) के ज्ञान-दीपक बन गये। नश्वर देह चली गयी परन्तु आलोकपुंज आज भी लहरा रहा है। सत्याग्रही होने के नाते उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखा। वे पक्षपात-रहित, निःसंग तथा ताटस्थ्य-वृत्ति से सम्पन्न थे—"यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मत-मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूँ, वैसे ही दूसरे देशस्थ व मत वालों के साथ भी बर्तता हूँ। जैसे स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी बर्तना योग्य है क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आजकल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करने और दूसरे मत की निन्दा, हानि और वध करने में तत्पर होते हैं, वैसे मैं भी होता···परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं। उनको अपने युग ने ग़लत समझा था—परन्तु इस ग्रन्थ (सत्यार्थप्रकाश) में ऐसी बात नहीं रखी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्य-जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य-जाति की उन्नति का कारण नहीं है।"

उन्होंने अवतार, मसीहा, पैगम्बर, महन्त, पोप, पण्डे, पुरोहित तथा आडम्बर-पूर्ण धर्म का डटकर विरोध किया था। इस दिशा में वे अत्यन्त निर्मम थे। किसी को भी बख्शते नहीं थे। दो टूक, बेलाग बातें कहते थे। सत्यार्थी रूप ने उन्हें निर्भीक, प्रखर तेजस्वी और जुझारू सेनापति बना दिया था। उनकी स्पष्टोक्ति थी—"मैं अपना मंतव्य उसी को जानता हूँ कि जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना, और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।" महर्षि के उपदेशों का सारभूत अंश तथा मुख्य प्रयोजन निम्न था—"सर्वसत्य का प्रसार कर, सबको ऐक्य मत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सबसे सबको सुख-लाभ पहुंचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा-सहाय और आप जनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जाये, जिससे सब लोग सहज से धर्मार्थ-काम-मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें, यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।"

महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों का सिरमौर तथा सर्वोपरि 'सत्य' है। वे समस्त मनुष्यों को एक ईश्वर की सन्तान मानते थे। उन्होंने प्रारब्ध को ललकारा और पुरुषार्थ को अंग लगाया। एकमात्र परमेश्वर ही उनका उपास्य देव था। वेद उनके लिए समस्त ज्ञान-विज्ञान तथा विद्या की अपौरुषेय कृति है। उनके सत्यनिष्ठ

व्यक्तित्व ने आचार्य सायण, महीधर तथा मेक्समूलर से वैमत्य स्थापित करके वेदों का सच्चा तथा शुद्ध भाष्य प्रस्तुत किया। वे चाहते थे कि आजीवन प्रत्येक व्यक्ति मुस्कराता रहे। संन्यासी होते हुए भी उन्होंने गृहस्थ धर्म को अप्रतिम महत्ता दी और गृहस्थों को सद्गृहस्थ बनाया। आर्यसमाज के दस नियमों में सत्यपरक नियमों का प्राबल्य है। उन्होंने गडरियों के गीतों को विश्व में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने 'वेदों की ओर' का शंखनाद किया। वेद तथा शिक्षा के द्वार नारियों तथा अवर्णों के लिए खोले। उन्होंने वास्तविकता तथा बुद्धिवाद के द्वारा धर्म को निष्ठापूर्ण, आचरणमूलक तथा सत्यासत्य-विभेदक बनाया। वे मानव-समता, जन्मना नहीं अपितु कर्मणा वर्ण-व्यवस्था तथा नारी-जागरण के अग्रणी थे। उन्होंने कांग्रेस की स्थापना के पूर्व स्वराज्य, स्वदेशी, स्वभाषा, स्व-संस्कृति तथा स्व-ऐक्य का सूत्रपात किया। उनके व्यक्तित्व तथा कृतित्व और उनके द्वारा संस्थापित आर्यसमाज से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन तथा हिन्दी साहित्य प्रभावित हुआ। इसीलिए उनका जीवन-चरित्र गांधी जी के ईर्ष्या का विषय बन गया था। 'स्वराज्य माझा जन्मसिद्ध अधिकार आहे' के उद्घोष के अर्द्धशती पूर्व उन्होंने सिंह-गर्जना की थी—"अत्याचार करनेवाले की अपेक्षा सहन करनेवाला अधिक पापी होता है।" गौरांग महाप्रभुओं के काले शासन के मध्य उन्होंने अपने 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा था—"कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है।"

स्वामी जी ने ही सर्वप्रथम भारतीय इतिहास के आधुनिक काल में 'भारत भारतीयों का है' की ऋचा हमें प्रदान की थी। उनकी शिष्य-मण्डली ने राजनीति, क्रान्ति, धर्म, समाज-सुधार तथा शिक्षा-आन्दोलन में जो अविस्मरणीय कार्य किये, उनका सामना या सानी सिर्फ गांधी जी की ही शिष्य-मण्डली कर सकती है। वे सर्वोदयी थे। उन्होंने व्यष्टि से लेकर समष्टि, स्वास्थ्य से लेकर मोक्ष तक को अपने चिन्तन तथा कार्य-परिधि में समेटा है। वे आज की समग्र क्रान्ति के आदिपुरुष थे।

प्रवचन, मनन, गवेषणा, शास्त्रार्थ, यात्रा तथा सम्भाषण के व्यस्त तथा संघर्ष-पूर्ण जीवन के मध्य में से समय निकालकर वे स्वाध्याय तथा ग्रन्थलेखन का कार्य भी कर लिया करते थे। भारत के इतिहास में कोई ऐसा मनुष्य नहीं हुआ जिसे साढ़े तीन हज़ार ग्रन्थ कण्ठस्थ हों। उनके साथ सदा-सर्वदा बारह सौ ग्रन्थ रहते थे। उनमें बचपन से ही अध्ययन तथा मनन की अटूट स्पृहा थी। मथुरा में स्वामी विरजानन्द के आश्रम में वे दिनभर तो पढ़ा करते थे परन्तु रात में स्वाध्याय करने हेतु वे विचित्र तथा अनुकरणीय उपक्रम करते थे कि चौराहों पर जो स्त्रियाँ दीपक जलाकर रख जाया करती थीं, उन सबको एकत्र करके रातभर पढ़ते थे। जब स्वामी जी लाहौर पहुँचे थे, तब उनको लिवा लाने के लिए स्टेशन पर चार गाड़ियाँ आयी थीं। उनमें से एक गाड़ी तो स्वामी जी के ग्रन्थों से ही भर गई थी। इसी स्वाध्यायी पृष्ठभूमि ने उन्हें सत्य का प्रह्लाद बना दिया था। उनके स्वाध्याय की प्रशंसा मेक्समूलर ने की थी। उनके ऋण को लाला लाजपतराय, शहीद भगतसिंह, लाला हरदयाल, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस तथा वीर सावरकर ने स्वीकार किया था। स्वामी जी के शिष्य

न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे और उनके शिष्य गोपालकृष्ण गोखले तथा उनके भी शिष्य महात्मा गांधी थे। दयानन्द के परमप्रिय शिष्य प्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्यामजी-कृष्ण वर्मा थे जिनके शिष्य वीर सावरकर और उनके भी शिष्य मदनलाल ढींगरा थे। इस प्रकार स्वामी जी के व्यक्तित्व-रूपी हिमालय से गंगा की धारा गांधी जी में और यमुना की धारा सावरकर-ढींगरा में आ समायी थी।

ऐसा था स्वामी जी का घनिष्ठ व्यक्तित्व जो कि अतुल शौर्य-पराक्रम-शक्ति का आगार था। वे अपने युग तथा समकालीनों में दुर्लभ व्यक्तित्व-सम्पन्न थे। 'प्रसाद' की 'कामायनी' के मनु के व्यक्तित्व की रेखाएँ उन पर सटीक चरितार्थ होती थीं—

अवयव की दृढ़ मांसपेशियाँ, ऊर्जस्वित था वीर्य अपार,
स्फीत शिराएँ स्वच्छ रक्त का होता था जिनमें संचार।

गोस्वामी तुलसीदास की पंक्तियाँ भी उनसे दूर जाती नहीं दिखाई पड़तीं—

वृषभ-स्कन्ध केहरि-ध्वनि
बलनिधि बाहु विशाल।

वे झुके नहीं, टूटे नहीं। सब कुछ दे दिया परन्तु सत्य को नहीं छोड़ा—सत्य को निबाहा। कबीर का 'नेह' दयानन्द का 'सत्य' है—

नेह निबाहे ही बने, दूजी बने न आन।
तन दे, मन दे, शीश दे, नेह न दीजे आन॥

वे जहाँ भी गये, सनातनियों ने उनका विरोध किया, ईंट-पत्थर बरसाये। परन्तु वे उन्हें पुष्पहार मानते रहे। 'एक भारतीय आत्मा' ने मरण-त्योहार के गीत गाये। 'नवीन' ने मृत्यु-गीत लिखे परन्तु दोनों को जिया दयानन्द ने। मृत्यु कई बार आकर लौट गयी। वे आजीवन अनिकेतन बने रहे। भारत ही उनका निकेतन तथा मनुष्यता ही उनका आवास बनी। 'नवीन' का क्या यह बाना नहीं था?—

हम अनिकेतन, हम अनिकेतन,
हम तो रमते राम, हमारा क्या घर? क्या दर! कैसा वेतन?
हम अनिकेतन, हम अनिकेतन।
अब तक इतनी यों ही काटी,
अब क्या सीखें नव परिपाटी?
कौन बनाए आज घरौंदा?
हाथों चुन-चुन कंकड़-माटी।
ठाट फकीराना है अपना, बाघम्बर सोहे अपने तन,
हम अनिकेतन, हम अनिकेतन।

भारत-दिवाकर दयानन्द की वाक्पटुता, शास्त्रदर्शिता, तार्किकता, प्रकाण्ड पाण्डित्य, वेदनिष्ठा, आर्ष ज्ञान का प्रचार-प्रसार, अप्रतिम मेधा, प्रचण्ड संघर्ष-शक्ति तथा सर्वकल्याणक-वृत्ति ने उनको भारतीय इतिहास के पाँच सहस्र वर्षों की व्याप्ति में सर्वथा अनुपमेय बना दिया। उन्होंने व्यक्ति की अपेक्षा सिद्धान्त को अधिक महत्त्व दिया। इसीलिए सन् १८७७ में लाहौर में उन्होंने स्पष्ट कहा था और काश्मीरपति

महाराजा रणवीरसिंह के धनागार को अस्वीकार करते हुए कहा—"मैं वेद-प्रतिपादित ब्रह्म को सन्तुष्ट करूँगा न कि काश्मीरपति को।"

उनके मतानुसार सारे अधर्मों, पापों तथा भ्रष्टाचार की जड़ मूर्ति-पूजा थी। इसीलिए उन्होंने बड़ी प्रचण्डता, आन्तरिकता तथा योग्यता के साथ इसका प्रबलतम विरोध किया। विकट प्रतिकूलताओं, प्रचण्ड संग्राम, घोरतम विरोध, लुभावने प्रलोभनों और विरोधियों द्वारा प्राणनाश के भागीरथ तथा अनवरत प्रयासों के मध्य भी उनकी सत्य-ध्वजा झुकी नहीं। भगवान् बुद्ध, जगद्गुरु शंकराचार्य, चैतन्य महाप्रभु, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, मध्वाचार्य आदि आचार्यों की परम्परा में आचार्य दयानन्द का मौलिक, अभूतपूर्व तथा अनूठा प्रदेय है—उनका भारतीय राष्ट्रीय एकता का नैष्ठिक प्रतिपादक रूप। वे 'आर्य', 'आर्यावर्त' तथा 'आर्य भाषा' के पुरस्कर्ता थे। उनके द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए किये गए परिपक्व तथा व्यावहारिक कार्य अविस्मरणीय हैं। उनके 'सत्यार्थप्रकाश' के चार अंग्रेज़ी अनुवाद हो चुके हैं। अनेक भारतीय तथा विदेशी भाषाओं के अतिरिक्त, हाल ही में उसके वर्मी तथा चीनी भाषाओं में भी अनुवाद हुए हैं।

दयानन्द ने व्यक्ति को नहीं प्रत्युत संस्था को अपना उत्तराधिकारी बनाया। उन्होंने मोर्चे खोले, लड़ाइयाँ लड़ीं और हिन्दुओं की रीढ़ की हड्डी को सीधा किया। पहली बार सिंहनाद से हिन्दू जनता में राष्ट्रीय स्वाभिमान तथा गरिमा की झंकृति आयी। सांस्कृतिक पुनर्जागरण को उन्नीसवीं शताब्दी में चरितार्थ करनेवाले घटक तथा उपादानों तथा 'प्रथम आत्मीय सभा' (बंगाल : सन् १८१५), 'ब्रह्मा सभा' (सन् १८२८), 'परमहंस सभा' (बम्बई, सन् १८४०), 'वेद समाज' (मद्रास, सन् १८६५) 'प्रार्थना समाज' (बम्बई, सन् १८६७), 'नव विधान समाज' (कलकत्ता : सन् १८७२-७३), 'सनातन धर्म रक्षिणी सभा' (पंजाब, सन् १८७७), 'उपासना सभा' (अमृतसर : सन् १८७७-७८), 'सत्य धर्मावलम्बी-सभा' (अलीगढ़ : सन् १८७९), 'हिन्दू सत्यसभा' (दानापुर : सन् १८७९), 'वैदिक धर्म सभा' (उदयपुर : सन् १८८१), और 'सत्सभा' (पंजाब), हिन्दू सभा' (पंजाब), 'थियोसोफिकल सोसायटी'; 'देव समाज' (लाहौर) आदि के मध्य 'आर्य समाज' (सन् १८७५) का ऐतिहासिक तथा महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। हिन्दी भाषा-भाषी जनता के लोकजीवन के विभिन्न पक्षों-पार्श्वों तथा साहित्य को जितना 'आर्यसमाज' ने प्रभावित किया वह 'भूतो न भविष्यति'। दयानन्द-युग ने गांधी-युग की सर्वतोमुखी समग्र चेतना के निर्माण की पूर्व-पीठिका तैयार की।

ऐसा था एथेन्स का सत्यार्थी जो कि भारत का निडर मार्टिन लूथर बना।

□

माँसाहार

☐ पण्डित राजेन्द्र जी

बुद्ध

बौद्ध मत के पंचशील में पहला स्थान 'प्राणातिपात विरति' अर्थात् किसी भी प्राणी की हिंसा न करे, को दिया गया है। किन्तु हम देखते हैं कि जितने घोर मांसाहारी बौद्ध हैं, संसार में कदाचित् ही दूसरे मतावलम्बी होंगे। अन्य मतों में कुछ ऐसे भी पशु हैं जिनका मांस खाना वर्जित है, परन्तु बौद्धों में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। यह क्यों ? बौद्ध मत में पांच प्रकार के मांसाहार में हिंसा नहीं समझी जाती—अदृष्ट, अश्रुत, अपरिशंकित, स्वाभाविक मृत, पक्षीहत अर्थात् ऐसे पशुपक्षी का मांस जो देखने, सुनने और इस सन्देह से रहित हो कि उसे खाने के लिये मारा गया है तथा जिसकी स्वाभाविक मृत्यु हो गई हो अथवा किसी हिंसक पशु-पक्षी द्वारा मारा गया हो। इस सम्बन्ध में डॉ० अम्बेदकर ने अपनी पुस्तक 'अछूत कौन और क्यों' में निम्न प्रकार लिखा है—श्री टामस वाल्टन ने भिक्षुओं में इस प्रथा की उत्पत्ति की इस प्रकार व्याख्या की है; उसकी कथा के अनुसार—

"बुद्ध के समय में वैशाली सिंह नाम का एक धनी सेनापति था, जिसने बौद्धधर्म ग्रहण कर लिया था। वह भिक्षु-संघ का उदार नायक बन गया और भिक्षुओं को मांस-भोजन की कमी न होने देता था। जब यह बाहर पता लगा कि भिक्षु इस प्रकार का भोजन ग्रहण कर लेते हैं, तो लोगों ने उसकी निन्दा करनी शुरू की। जो संयमी, तपस्वी भिक्षु थे, जब उन्होंने यह सुना तो भगवान् को सूचना दी। भगवान् ने भिक्षुओं को इकट्ठा किया। जब वे इकट्ठा हुए तो भगवान् ने उन्हें सम्बोधन करके कहा—भिक्षुओ ! किसी ऐसे पशु का मांस नहीं खाना चाहिये, जिसे तुमने देखा हो कि तुम्हारे लिये मारा गया है, जिसके बारे में सुना हो कि तुम्हारे लिये मारा गया है। किन्तु उन्होंने भिक्षुओं को त्रि-कोटि परिशुद्ध मत्स्य-मांस की आज्ञा दे दी अर्थात् ऐसे पशु के मांस की जिसको न देखा हो कि हमारे लिए मारा गया है, न सुना हो कि हमारे लिए मारा गया है। पालि और सु-फेन विनय (पिटक) के अनुसार बुद्ध और भिक्षु-संघ को मध्याह्न-भोजन दिया गया था। उस भोजन के लिए ही एक बैल की लाश की व्यवस्था की गई थी। निर्ग्रन्थों ने भिक्षुओं की निन्दा की। बुद्ध ने यह त्रि-कोटि-परिशुद्ध का नया नियम बनाया। अब से जो मांस-भोजन भिक्षु कर सकते थे, वह 'त्रिकोटि-परिशुद्ध' अथवा 'त्रिकोटि-परिशुद्ध मांस' कहलाने लगा। इस थोड़े में 'अदृष्ट, अश्रुत, अपरिशंकित, अथवा चीनी अनुवाद के ढंग पर 'मेरे लिये मारा गया, ऐसा न देखा, न सुना, न सन्देह हुआ' कहा गया। तब दो और तरह का मांस भिक्षुओं के लिए नियमानुकूल ठहराया गया। जिस पशु की स्वाभाविक मृत्यु हो गई हो, तथा जो शिकारी पक्षी अथवा किसी जंगली पशु द्वारा मारा गया हो। इस प्रकार पांच तरह का ऐसा मांस हुआ, जिसका

कोई बौद्ध स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग कर सकता था। तब यह 'अदृष्ट, अश्रुत और अपरिशंकित' एक जाति हो गई और 'स्वाभाविक मृत्यु' तथा 'पक्षीहत' को मिला देने से तीन बन जाता है! (पृष्ठ १४२-१४३)

महात्मा बुद्ध की इस बड़ी भूल और अदूरदर्शिता-पूर्ण अहिंसा की व्याख्या का ही दुष्परिणाम है कि आज मांसाहार का अबाध्य रूप में प्रचार बौद्धों में देख रहे हैं। बहुत-से लोग बुद्ध के नाम से जोड़ी गई ऐसी कथाओं की सत्यता में सन्देह करते हैं, परन्तु जो बात सिद्धान्तरूप से भी सभी बौद्धों को मान्य है उस पर शंका करने का दूसरों को क्या अधिकार है! बौद्ध तो आज उच्च स्वर से यह घोषणा करते हैं कि बुद्ध स्वयं मांसाहारी थे और उनकी मृत्यु रुग्णावस्था में शूकर-मांस खाने से हुई। राहुल सांकृत्यायन ने लोगों की इस धारणा का कि 'शूकर मांस, शूकर मांस न होकर एक शाक अथवा शकरकंदी थी' खंडन किया है और उनका स्पष्ट मत है कि वह शूकर-मांस ही था।

महात्मा गांधी

महात्मा गांधी को भी सत्य-अहिंसा का अवतार माना जाता है। उनकी अहिंसा की परिभाषा क्या थी और उनके अनुयायी जो आज खुले रूप में मांस, मछली और अंडों के आहार का प्रचार कर रहे हैं उनका महात्मा गांधी के विचारों से कहाँ तक मेल खाता है, इस पर यहाँ कुछ प्रकाश डाला जाता है।

एक बार महात्मा जी ने अपने 'हरिजन' पत्र में लिखा था कि जब तक देश में खाद्यान्न की कमी है, यहाँ से मछलियों का निर्यात बन्द कर दिया जाय। इस पर एक सज्जन ने उनसे प्रश्न किया कि आप क्या मछली खाने में हिंसा नहीं समझते? महात्मा जी ने इसका उत्तर यह दिया कि "मेरे विचार में मांसाहार से अधिक हिंसा मांसाहार के निषेध करने में है।" ये पंक्तियाँ लेखक ने 'हरिजन' में स्वयं देखी हैं; दुर्भाग्य से उसकी अंक और वर्ष-संख्या अंकित न रख सका। यदि किन्हीं सज्जन के पास 'हरिजन' की फाइलें हों तो मुझे लिख भेजने की कृपा करें। यही बात अंडों के सम्बन्ध में भी है। श्री काका कालेलकर ने लिखा है—'गांधी जी स्वयं कहते थे कि मुर्गे के सम्बन्ध के बिना जो मुर्गी अंडे देती है और जिसमें से बच्चा कतई पैदा नहीं होता और जो दीर्घकाल रखने से सड़ते नहीं किन्तु सूख जाते हैं, ऐसे अंडे खाने में कोई दोष नहीं। जिस अंडे में जीव है नहीं और जीव पैदा होना सम्भव है नहीं, उस अंडे को खाना दुग्धाहार के जितना ही निर्दोष है।'

उन्होंने ऐसे अंडे स्वयं खाने का प्रयोग नहीं किया। लेकिन काफी दाम खर्च करके ऐसे अंडे मँगवाकर शाकाहारी मरीजों को खिलाये थे सही।

जब मुझे वर्धा में हैजा हुआ था तब उन्होंने मुझे ऐसे अंडे खाने की सलाह दी थी। मैंने कहा था कि मैं भी मानता हूँ कि ऐसे निर्जीव अंडे खाने में अहिंसा की दृष्टि से तनिक भी दोष नहीं है, लेकिन मैं खाऊँगा नहीं। मैंने कहा कि ऐसे अंडे खाना शुरू

किया तो मामूली अंडे खाते देर नहीं लगेगी। इसलिए जो आहार मैंने त्याज्य माना है, उससे दूर रहूँ यही अच्छा है। (आरोग्य सितम्बर १९५९)

इस प्रकार गांधीजी की अहिंसा भी बुद्ध-जैसी ही थी। परिणामतः यदि आज की कांग्रेस सरकार मांस, मछली, अंडों का प्रचार कर रही है तो उनके विचार और सिद्धान्त के प्रतिकूल, जैसा कि प्रायः लोग समझते हैं, कार्य नहीं कर रही। श्री विनोबा भावे के भी ऐसे ही विचार हैं। अहिंसा की गांधी जी की व्याख्या अद्भुत है। मांसाहार बिना जीव-हिंसा के प्राप्त नहीं होता और यह जीव-हिंसा का स्थूल रूप है; वाणी और मन की हिंसा तो उसका सूक्ष्म रूप है।

उपर्युक्त विचार महात्मा बुद्ध और गांधी के विचारों की तुलना में कितने दूरगामी और दूरदर्शितापूर्ण हैं, पाठक स्वयं ही इसका निर्णय करें। महापुरुष की साधारण भूलें मनुष्य-जाति को कितना पथभ्रष्ट कर सकती हैं, इसका उदाहरण आज के बौद्ध मतावलम्वी और हमारी सरकार की वर्त्तमान दोषयुक्त अहिंसा-नीति है।

विवेकानन्द

आइये, इस प्रसंग में स्वामी विवेकानन्द की मांसाहार-सम्बन्धी मान्यता पर भी थोड़ा विचार कर लें। स्वामी विवेकानन्द के अध्यात्मवादी विचारों और लेखों की संसार में धूम है। अंग्रेजी-शिक्षित समुदाय तो आज उन पर लट्टू है। इस देश और विदेश में सर्वत्र उनके पाण्डित्य की धाक है। स्वा० विवेकानन्द के अपने एक शिष्य-द्वारा यह पूछे जाने पर कि संन्यासियों को मांस-मछली खाना चाहिये या नहीं, स्वामी जी ने कहा, 'हाँ निन्दा का भय माने बिना मांस-मछली तुम जी-भर खा सकते हो। शाक-पात खाकर जीनेवाले आमाशय के रोगी साधुओं से सारा देश भर गया है। ये लक्षण सत्त्व के नहीं, भयानक तमस् के हैं और तमस् मृत्यु की कालिमा का नाम है। आकृति में दमकती हुई कान्ति, हृदय में अदम्य उत्साह, कर्म-चेष्टा की विपुलता और उद्वेलित शक्ति, ये सत्त्व के पहचान हैं। इसके विपरीत तमस् का लक्षण आलस्य और शैथिल्य है, अनुचित आसक्ति और निद्रा का मोह है। कौन भोजन शुद्ध और कौन अशुद्ध है, क्या इसी विचिकित्सा में जीवन बिता दोगे अथवा इन्द्रिय-निग्रह का भी कुछ ध्यान है? हमारा लक्ष्य इन्द्रियों का निग्रह है, मन का वश में लाना है। अच्छे और बुरे का भेद, शुद्ध और अशुद्ध का विचार, इन्द्रिय-निग्रह नहीं, उस उद्देश्य के सहायक-मात्र हैं।' (संस्कृति के ४ अध्याय, पृष्ठ ५०१-५०२)

यह विश्वविख्यात दार्शनिक स्वामी विवेकानन्द के मांसाहार-सम्बन्धी विचार कितने विलक्षण और युक्तिशून्य हैं? स्वामी जी स्वयं मांसाहारी थे।

दयानन्द

अब दयानन्द के विचारों को देखें। दयानन्द ने सर्वप्रकार के मांसाहार का चाहे वह मारे हुए पशु का हो अथवा स्वाभाविक रीति से मरे हुए का, सर्वथा निषेध

किया है। मनु का प्रमाण देते हुए उन्होंने पशु-पक्षियों के मारने का परामर्श देनेवाले, काटनेवाले, मारने, लेने और बेचने, मांस को पकाने, परोसने और खानेवाले आठ प्रकार के घातक और हिंसक माने हैं। स्वाभाविक रीति से मरे हुए पशु के मांसाहार में हिंसा न होने से उसके खाने में क्या दोष है? इसके उत्तर में दयानन्द ने दो स्थानों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं—

" 'क्या बिना हिंसा किये अर्थात् मरे हुए पशु का मांस खाना भी पाप है?' जो मरे पश्चात् उनका मांस खावे तो उसका स्वभाव मांसाहारी होने से अवश्य हिंसक होके हिंसारूपी पाप से कभी नहीं बच सकेगा, इसलिए किसी अवस्था में भी मांस नहीं खाना चाहिये।"

प्रश्न—"यदि राजपुरुष हानिकारक पशुओं वा मनुष्यों को मार दें; तो फिर क्या उनका मांस फेंक दें?"

उत्तर—"चाहे फेंक दें, चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें या जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावें, तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती; किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है।"

यहाँ मैंने संसार के चार महापुरुषों के मांसाहार-सम्बन्धी विचारों का तुलनात्मक विवेचन किया है। यद्यपि बहुत-से लोग इन महापुरुषों के तुलनात्मक विवेचन को अनुचित कहते हैं किन्तु मेरी दृष्टि में इसमें कोई दोष नहीं है।

महापुरुषों की साधारण भूल के परिणाम संसार के लिए बड़े भयानक सिद्ध होते हैं—इतिहास इसका साक्षी है। अतएव उन पर पर्दा डालना भीरुता और विचारों की दासता है।

उपर्युक्त विचार-विवेचन से पाठक समझ सकते हैं कि सन्त-महात्मा तथा एक आप्त पुरुष और ऋषि में क्या भेद है। आप्त पुरुषों के विचार सदा रहनेवाले और दोषरहित होते हैं।

□

सत्यनारायण व्रत कथा

स्वामी जगदीश्वरानन्द की लौह लेखनी का प्रसाद!
अब तक छपी सभी कथाओं में सर्वश्रेष्ठ!
कथा एक घण्टे में सम्पूर्ण हो जाती है!

सत्यनारायण-कथा का रहस्य जानने और लीलावती-कलावती की कथाओं की शिक्षा जानने के लिए अवश्य पढ़िए।

आकर्षक आवरण, मोती-सी छपाई, बढ़िया कागज और मूल्य प्रचारार्थ केवल ५० पैसे।

भारी संख्या में मँगाइए, इष्ट-मित्रों को बाँटिए।

प्राप्ति स्थान—गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६

ऐसा न्याय करो तो जानें !

जिन लोगों को भारतीय चिन्तनशैली पर ही विश्वास नहीं है, उनकी बात ही ग्रौर है; पर जिन्हें भारत के प्राचीन सदाचार, व्यवहार, नीति ग्रौर दण्डविधान पर ग्रभिमान है, वे उससे प्रेरणा लेकर ग्रादर्श शासक सिद्ध होते रहे हैं।

ग्रभी दो पीढ़ी पहले की बात है। धरती का स्वर्ग कहलानेवाली भूमि काश्मीर के प्रजा-पालक नरेश थे श्री रणवीरसिंह। उन्हें महाभारत में वर्णित 'राजधर्म' पर बड़ी श्रद्धा थी। समय-समय पर विद्वानों को बुलाकर वे प्राचीन ग्रन्थों में से प्रजा-वत्सल नरेशों के चरित्र सुना करते ग्रौर विद्वानों से उसी प्रकार का नरेश बनने के लिए ग्राशीर्वाद माँगा करते थे। महाभारत की ये पंक्तियाँ उन्हें बहुत ही प्रिय थीं ग्रौर वे ग्रक्सर गुनगुनाया करते थे—

मात्स्य न्यायं प्रवर्तते यदि राजा न पालयेत्।

तथा

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति धार्मिकः।

ग्रर्थात्—'यदि राजा धर्मपूर्वक प्रजा का पालन न करे तो जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, उसी प्रकार बलवान् लोग मदान्ध होकर निर्बल का सब-कुछ छीन लिया करते हैं' तथा 'जिस देश में भयानक काले रङ्ग का एवं लाल-लाल ग्राँखोंवाला किन्तु धर्म पर ग्राधारित राजदंड (राज का भय) विचरण करता रहता है, वहाँ ग्रपराधी लोग नहीं रहा करते।'

इन पंक्तियों का ही यह प्रभाव था कि वे स्वयं तो ग्रादर्श न्याय करने के लिए हर समय तैयार रहते ही थे, उनके नीचे के कर्मचारी भी कुछ ग़लत काम करते हुए घबराते थे। प्रजा में चारों ग्रोर सुख-चैन था।

एक दिन एक सेठ ने महाराज के दरबार में उपस्थित होकर कहा—"ग्रन्नदाता ! मेरा दिवाला निकल गया है। व्यापार में बुरी तरह घाटा ग्रा गया है ग्रौर सिर पर दो लाख से ग्रधिक रुपयों का कर्ज़ा हो गया है। माँगनेवाले मुझे बुरी तरह परेशान कर रहे हैं। इसलिए हुज़ूर, मेरे दिवाले की ग्रर्ज़ी मंजूर करके मुझे दिवालिया घोषित कर दें।"

महाराज ने दिवाली तो कई बार देखी-सुनी थी परन्तु 'दिवाला' शब्द उनके लिए एकदम नया था। इसलिए उन्होंने पूछा—"सेठ जी ! दिवाला होता क्या है ?"

सेठ ने रिरियाते हुए कहा—"ग्रन्नदाता ! जैसे शरीर में से प्राण निकल जाते हैं वैसे ही किसी व्यापारी की सारी दौलत व्यापार में डूब जाने से दिवाला निकल जाता है। ब्रिटिश भारत में ऐसे व्यापारी को सरकार कानूनी ढङ्ग से दिवालिया मान लेती है ग्रौर फिर कोई लेनदार उसे रुपये के लिए तङ्ग नहीं कर सकता।"

महाराज यह सुनकर बोले—"देखिए सेठ जी ! जब ग्रापने लोगों का रुपया लिया हुग्रा है तो उसके लौटाने की ज़िम्मेवारी भी ग्राप पर है। ग्राप उनसे बचने की कोशिश

मत कीजिए। अपने सगे-सम्बन्धियों से रुपया उधार लेकर वह कर्ज़ा चुकाने का प्रयत्न कीजिए।"

"अन्नदाता ! मेरा कोई सगा-सम्बन्धी नहीं है। मैं तो अब इस दुनिया में जैसे अकेला ही रह गया हूँ।" कहते-कहते सेठ रोने लगा।

उसे इस प्रकार जी छोटा करते देखकर महाराज बड़ी नर्मी से बोले—"सुनो सेठ ! तुम रोओ नहीं। देखो, अगर तुम्हारा इस दुनिया में कोई भी नहीं है तो हम तो हैं ! तुम हमारी प्रजा हो। हम तुम्हारी इज़्ज़त-आबरू बचाने के लिए कुछ भी उठा न रखेंगे। हम यह नहीं चाहते कि हमारी प्रजा में कोई भी आदमी बड़ी मछली की तरह छोटी मछलियों अर्थात् निर्बल एवं दीन लोगों को निगल जाय। इसलिए तुम ऐसा करो, दो लाख रुपये बिना किसी सूद के हमसे ले लो और सबका कर्ज़ा चुका दो। उन बेचारे लोगों को भी तो रुपये की ज़रूरत होगी न ! रहा हमारा रुपया लौटाने का सवाल, सो तुम तो उत्साही व्यापारी हो, कमाकर देते रहना।"

महाराज के इन शब्दों से भी साहूकार को कुछ शान्ति न हुई तो महाराज ने गरजकर कहा "मन्त्री जी ! यह सेठ कहता है कि जैसे मनुष्य के शरीर से प्राण निकल जाते हैं, उसी प्रकार इसका दिवाला निकल गया है। भला, निष्प्राण शरीर को पड़ा रहने दिया जायगा तो भयंकर बदबू भी तो फैलेगी न ! आप इस सेठ की दुकान के बाहर पचास मन लकड़ियों का ढेर लगवाइये और उसमें आग लगाकर इस सेठ को जला दीजिए।"

यह कहते ही महाराज उठ खड़े हुए और सेठ की किसी भी अनुनय-विनय पर कोई ध्यान नहीं दिया।

भरे बाज़ार में हज़ारों मनुष्यों की भीड़ के बीच सेठ की दूकान के सामने जब सेठ जी को पूरे पचास मन लकड़ियों के ढेर पर बैठाया जाने लगा तो सेठ जी बिखर गये। मौत सामने नाचती देखकर उनका लोभ हिरन हो गया और दूसरे ही क्षण सेठ जी के घर में से पूरे दो लाख रुपये निकलकर बाहर आ गये।

मन्त्री जी ने महाराज की सेवा में जाकर निवेदन किया—"अन्नदाता, साहूकार सबका रुपया लौटाना चाहता है और हुज़ूर से प्राणों की भीख माँगता है।"

महाराज मुस्करा पड़े और बोले—"हमें यह पहले ही पता था मन्त्री जी ! जानते नहीं—यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति धार्मिक:।"

यह है एक भारतीय शासक की कहानी। किन्तु आज के शासकों को ऐसी कहानियाँ सुनने या पढ़ने की फ़ुर्सत कहाँ है ? महाभारत, कौटिल्य अर्थशास्त्र, शुक्रनीति एवं मनुस्मृति आदि ग्रन्थों का सार विद्वानों से सुनने के बजाय उन्हें क्लबों में बैठकर सुन्दरियों के नृत्य देखने में जीवन की अधिक सार्थकता जँचती है।

न्याय के नाम पर 'दूध का दूध और पानी का पानी' छानने के लिए भारतीय नरेशों की तरह मुकद्दमों की तह में पहुँचने का कष्ट उठाने के बजाय बहादुरशाह रङ्गीले की तरह सुरा-सुवर्ण सुन्दरी की उपासना करना ही उन्हें ज़्यादा पसन्द है।

□

आत्म-सुपर्ण

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद ।
भासान्तरिक्षमा पृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद् दृंह ॥
—यजु० १७।७२

शब्दार्थ—आत्मन् ! तू (सुपर्ण असि) शोभन पक्षों वाला पक्षी है। तू (गरुत्मान्) महान् आत्मा वाला है। तू (पृष्ठे पृथिव्याः सीद) गौरवपूर्ण आत्मा वाला होकर संसार में विराजमान हो। तू (भासा अन्तरिक्षम् आ पृण) अपनी आभा से अन्तरिक्ष को भर दे। तू (ज्योतिषा दिवम् उत् तभान) अपनी ज्योति से द्युलोक को उन्नत कर और (तेजसा दिशः उद् दृंह) अपने तेज से सब दिशाओं को उन्नत कर।

व्याख्या—मन्त्र में आत्म-उन्नति करते हुए संसार के उद्धार करने का सुन्दर उपदेश और सन्देश है। आइए, एक-एक पद पर चिन्तन और विचार कीजिए—

१. सुपर्णः असि

हे आत्मन् ! तू शोभन पंखों से युक्त पक्षी है। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध मन्त्र **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'** [१।१६४।२०] में परमात्मा और जीवात्मा दोनों को 'सुपर्ण' कहा है। ब्रह्म और जीव दोनों चेतना और पालन आदि गुणों के कारण सदृश, व्याप्य-व्यापक भाव से संयुक्त, परस्पर मित्रतायुक्त, सनातन एवं अनादि हैं। ये दोनों एक-दूसरे का आलिंगन किये हुए वैसे ही अनादि प्रकृतिरूपी वृक्ष पर स्थित हैं।

कैसा है यह आत्म-सुपर्ण ?

तस्य श्रद्धैव शिरः। ऋतं दक्षिणः पक्षः। सत्यमुत्तरः पक्षः।
योग आत्मा। महः पुच्छं प्रतिष्ठा॥—तैत्तिरीय ब्राह्म० ४

श्रद्धा उस [आत्म-सुपर्ण] का सिर है। ऋत=ज्ञान उसका दाहिना पंख है, सत्य उसका बायाँ पंख है। चित्तवृत्ति का निरोध उसका आत्मा है और तेज एवं हृदय की विशालता उसकी पूँछ है।

अन्य ग्रन्थों में अन्य पक्ष भी बताये गये हैं। योगवासिष्ठ में कहा है—

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्माभ्यां जायते परमं पदम्॥ —यो० वा० १।७

जैसे आकाश में पक्षी दो पंखों से उड़ता है, एक से नहीं, उसी प्रकार साधक को ज्ञान और कर्म दोनों के अनुष्ठान से परमपद की प्राप्ति होती है। अतः ज्ञानी और कर्मयोगी बनो।

२. गरुत्मान्

हे आत्मन् ! तू गरुत्मान् है। तू महान् आत्मा है। गरुत्मान् शब्द 'गॄ सेचने' धातु से निष्पन्न होता है। अतः अर्थ होगा—तू सींचने वाला है। अपनी जीवन-वाटिका का सिंचन तू स्वयं ही करेगा। तुम स्वयं अपनी जीवन-नैय्या के नाविक बनो। महात्मा

बुद्ध के उस सन्देश का सदा स्मरण रखो—'**अप्पो दीपो भव**'—तुम स्वयं अपने दीपक बनो। रूसी लेखक गोरकी ने भी कहा है—

Burn like a lamp and lit your way yourself.

दीपक की भांति जलो और अपने मार्ग को स्वयं प्रकाशित करो।

परमात्मा कुदाल लेकर तुम्हारा मार्ग निर्माण करने नहीं आयेगा, तुम्हें स्वयं ही पुरुषार्थ करके अपना निर्माण करना होगा। अपनी असफलताओं पर निराश मत होओ। मार्ग के अन्धकार से उत्साहहीन मत बनो। वेद के सन्देश को सदा अपने समक्ष रखो—

अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः।
रुचे जनन्त सूर्यम्॥ —सा० ५०२

मनुष्य अनुकरणप्रिय होते हैं। आगे बढ़ने के लिए, उन्नति करने के लिए वे सदा नया पग उठाते हैं। यदि उन्हें मार्ग नहीं सूझता, यदि मार्ग में अन्धकार दिखाई देता है तो वे प्रकाश के लिए अपनी रुचि के अनुसार नया सूर्य निर्माण कर लेते हैं।

गरुत्मान् का एक अर्थ है—मन और आत्मा के बल से मुक्त होकर गौरवशाली बनना चाहिए।

३. पृष्ठे पृथिव्याः सीद

आत्मन्! तू गौरवपूर्ण बनकर संसार में विराजमान हो, संसार में विचरण कर। पृथिवी की पीठ पर बैठने का तात्पर्य है, संसार में रहना सीखो।

एक बार स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने एक निर्मले सन्त बहादुरसिंह जी से पूछा—"महात्मन्! कोई तत्त्व की बात बताइये।" उन्होंने उत्तर दिया—"मैंने अब तक सत्सङ्ग द्वारा जो कुछ प्राप्त किया है, उसका सार यह है कि मनुष्य को चार बातें आनी चाहियें। जिसे ये चार बातें आती हैं, वह संसार में कहीं रमे, सुखी ही रहेगा और यदि ये चार बातें नहीं आतीं तो चाहे वह विद्वान् हो, साधु हो, धनी हो, गृहस्थ हो—सब जगह दुःख पायेगा। वे चार बातें हैं—१. कहणी, २. सहणी, ३. बहणी और ४. रहणी।

१. कहणी—क्या कहना, कब कहना, कैसे कहना—जिसे यह आता हो, वह सबको अपने वश में कर लेगा।

२. सहणी—सहन करना। कोई कठोर वचन कहता है, अपशब्दों का प्रयोग करता है, लाञ्छन लगाता है, उन सबको सहन करना। जो सहिष्णु नहीं है, वह दुःखी है; जिसमें सहनशीलता है, वह सुखी रहता है।

३. बहणी—बैठना। कहां बैठना, किस स्थान पर बैठना—जो इस बात को जानता है वह सर्वत्र सम्मानित होता है। बड़े-बूढ़े, गुरुजनों के पास बैठने का प्रकार और है, संगी-साथियों के पास बैठने की विधि दूसरी है, योगाभ्यास में बैठने का आसन और है। जो बैठने का ठीक प्रकार जानता है, वह सर्वत्र आदर और मान पाता है।

४. **रहणी**—मनुष्य को कहाँ किस प्रकार रहना चाहिए। संसार में रहना सीखो। कैसे रहें संसार में? संसार में रहो परन्तु अपने लक्ष्य को सदा ध्यान में रखो—

ज्यों तिरिया पीहर बसे, सुरत रहे पिय माहीं।
तैसे नर जग में रहे, प्रभु को बिसरे नाहीं॥

और सुनिए—

आदमी को चाहिए दुनिया में रहना इस तरह।
जिस तरह तालाब के पानी में रहता है कमल॥

संसार में रहो, खाओ-पिओ, परन्तु परमात्मा को मत भूलो।

'पृथिवी शरीरम्' [अ० ५।६।७] पृथिवी का अर्थ है शरीर। अपने शरीर में बैठकर साधना कर। शरीर में इन्द्रियाँ हैं, मन है, बुद्धि है। साधना के द्वारा इन्हें निर्मल और निर्दोष बना। इन्द्रियों के विषयों में फँसकर मनुष्य दुःखी होता है और इन्द्रियों को वश में करके सिद्धि को प्राप्त करता है।

४. भासा अन्तरिक्षम् आ पृण

'आत्मन्! तू अपनी आभा से, अपनी ज्योति से, अपने ज्ञान की जगमगाहट से अन्तरिक्ष को भर दे।' अन्तरिक्ष के समान समस्त प्रजा को घेरकर तू उनपर छत्रछाया रख।

अन्तरिक्ष का एक अर्थ हृदय भी है। अपने हृदय को **भासा**=उस प्रभु के दिव्य तेज से भर ले। कैसा है उस प्रभु का तेज? उसका तेज है सहस्रों सूर्यों से भी प्रखर, परन्तु साथ ही अत्यन्त शीतल और आनन्ददायक।

जब साधक इस दिव्य तेज को धारण कर अध्यात्मप्रसाद को प्राप्त कर लेता है तब उसकी स्थिति क्या होती है? योगदर्शन १।४७ का भाष्य करते हुए व्यास जी ने कहा है—

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति॥

'प्रज्ञालोक प्रकट होने पर शोचनीय विषयों से रहित हुआ योगी, सोचते हुए जनों को ऐसे देखता है, जैसे पर्वत पर खड़ा हुआ मनुष्य भूमि पर स्थित लोगों को देखता है।'

वह केवल देखता ही नहीं रहता; उनके उद्धार में लग जाता है। महर्षि दयानन्द ने संसार की दुरवस्था को देखकर अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया।

५. ज्योतिषा दिवम् उत् तभान

'आत्मन्! अपनी ज्योति से द्युलोक को उन्नत कर।' अपने यश और कीर्ति से दिग्दिगन्त को व्याप्त कर दे। द्यौ को भी अपनी ज्योति से द्योतित कर दे। यशस्वी बन और घोषणा कर दे—

अहमस्मि यशस्तमः॥—अथर्व० ६।३९।३

'मैं संसार में सबसे अधिक यशस्वी हूँ।'

धन के द्वारा यशस्वी बनो तो इतना धन प्राप्त करो कि डिण्डिम घोष के साथ कह सको—

मूर्धाहं रयीणाम्॥—अथर्व० १६।३।१

'मैं ऐश्वर्यशालियों का मस्तक हूँ, ऐश्वर्यशालियों में शिरोमणि हूँ।'

इसी प्रकार बल में, विद्या में, बुद्धि में जिसमें भी यशस्वी बनो, उच्चकोटि के यशस्वी बनो। अपने यश से भूमण्डल को आपूर कर दो।

ज्योतिषा दिवमुत् तभान् का यह भी तात्पर्य है कि तू ज्ञान से अपने मस्तिष्क को उन्नत रख। विद्या का बड़ा महत्त्व है। विद्या से मोक्ष की प्राप्ति होती है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

विद्यया तदारोहन्ति यत्र कामाः परागताः।
न तत्र दक्षिणा यान्ति नाविद्वाꣳ सस्तपस्विनः॥—शत० १०।४।२।१६

'विद्या के प्रभाव से मनुष्य उस पद को प्राप्त करता है, जहाँ सब सुखों की सीमा है। जो पदार्थ धन, चतुरता और विद्याहीन तप से प्राप्त नहीं हो सकते, वे सब विद्या के प्रताप से प्राप्त हो जाते हैं।'

निरुक्तकार महर्षि यास्क लिखते हैं—

विद्यातः पुरुषविशेषो भवति।—नि० १।५

'विद्या से मनुष्य श्रेष्ठ एवं पूजनीय बन जाता है।'

भीष्म पितामह ने कहा है—

नास्ति विद्या समं चक्षुः। महा० शान्ति० १७५।३५

'संसार में विद्या के समान कोई नेत्र नहीं है।'

भर्तृहरि जी लिखते हैं—

विद्याविहीनः पशुः।—नीति० २०

'विद्या से रहित मनुष्य पशु के समान है।'

६. तेजसा दिशः उद् दृंह

'आत्मन्! तू अपने तेज से सब दिशाओं को, दिशाओं में रहनेवाले मनुष्यों को उन्नत कर।'

अपने जीवन को विद्या से भरपूर करके, अपने जीवन को यज्ञमय बनाकर, अपने-आपको योग की विभूतियों, अष्टसिद्धियों और नवनिधियों से लैस करके संसार में भ्रमण कर। संसार के मानवों के लिए अपने ऐश्वर्यों को बिखेर दे। अपनी विद्याओं को छिपा मत, उन्हें अपने साथ लेकर मत मर, उन्हें दूसरों को सिखा, दूसरों को प्रदान कर।

महर्षि दयानन्द व्याख्यान देते हुए योग के गूढ़ रहस्यों का भी उद्घाटन कर देते थे। एक भक्त ने निवेदन किया—"ऋषे! इन गूढ़ रहस्यों को सभा में नहीं कहना चाहिए। यह तो सुअर के आगे मोती बिखेरने के सदृश है।" महर्षि ने उत्तर दिया—"इतनी बड़ी सभाओं में जिज्ञासु भी आया करते हैं और ईश्वर की कृपा हो जाए तो सुअर भी हंस बन जाता है।"

मनुष्य को चाहिए कि वह स्वयं तेजस्वी होकर प्रत्येक दिशा में, जन-जन में, मानव-मानव में, योग, यज्ञ और विद्या का प्रचार और प्रसार करके सभी के जीवन को योगमय एवं यज्ञमय बनाकर उन्नत कर दे।

□□

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न, रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झाँकी देखना चाहते हैं।
- यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं।
- यदि आप प्राचीन राज्यव्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं।
- यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं।
- यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं।
- यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं।

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण ६००० श्लोकों में समाप्त। मूल्य : ४० रुपये

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा लिखते हैं—

"सम्पादन और टीका-टिप्पणी लौह-लेखनीधारी स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा हुई है। पं० आर्यमुनि, पं० राजाराम शास्त्री, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने भी रामायण की टीका क्षेपक-रहित प्रकाशित की थीं। उनमें पादटिप्पणियों का अभाव था। इस टीका में टिप्पणियों की भरमार है जिनसे विषय का प्रतिपादन भलीभाँति हो जाता है।...स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का परिश्रम, स्वाध्याय, विद्वत्ता प्रत्येक अध्याय में दृष्टिगोचर होते हैं।"

श्री अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व ठा० अमरसिंह जी महाराज) लिखते हैं—

"रामायण को देखकर ऐसा लगा कि इसमें कोई आवश्यक बात छूटी नहीं तथा कोई अनावश्यक और अनर्गल बात रहने नहीं पाई। टिप्पणियों तथा शंकाओं के समाधानों ने तो सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दी है।"

महात्मा नारायण स्वामी जी की अनुपम पुस्तक

कर्त्तव्य-दर्पण

छपकर तैयार, पूरी कपड़े की जिल्द, मूल्य ४·००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश (जैसे हारून का Haron)।
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची।
७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।
८. अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी-संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च-स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी-संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास-अनुसार।

बढ़िया कागज। १६ प्वाइंट के मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजबूत जुजबन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५.००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज-संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की सुनहरी जिल्द।
विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१.००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

एक नवीन प्रकाशन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की शताब्दी के अवसर पर महर्षि के ग्रन्थों के आधार पर संकलित

सत्यार्थ-सरस्वती

[सत्यार्थ प्रकाश का भाष्य]

इसके संकलनकर्त्ता हैं पं० मदनमोहन जी विद्यासागर

ग्रन्थ में १४ प्रवाह हैं। आरम्भ के १० प्रवाह बहुत विस्तृत हैं। सत्यार्थप्रकाश के साथ ही अनेक बातों को महर्षि के अन्य ग्रन्थों से लेकर उस-उस विषय के साथ ग्रथित कर दिया गया है। अनेक स्थानों पर नवीन प्रश्नोत्तर भी जोड़ दिये गये हैं; कठिन स्थलों को सरल बना दिया गया है। जो विषय यत्र-तत्र फैले हुए थे, उन्हें एक स्थान पर रख दिया गया है। अन्त में 'आर्योद्देश्य-रत्नमाला' भी संग्रहीत कर दी गई है। पुस्तक का कागज और छपाई उत्तम है। संकलन में परिश्रम किया गया है।

सजिल्द पुस्तक का मूल्य है २५ रुपये।

पुस्तक सीमित संख्या में छपी है। तुरन्त आदेश भेजें।

५०·०० के ग्रन्थ ४०·०० में!

सत्यार्थ प्रकाश शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में

१. सत्यार्थ प्रकाश २५.००

[सम्पादक पं० भगवद्दत्त]

२. सत्यार्थ सरस्वती २५.००

[लेखक पं० मदनमोहन विद्यासागर]

दोनों ग्रन्थ एक-साथ खरीदने पर ५०·०० के स्थान पर ४०.०० में प्राप्त करें; डाकखर्च अलग।

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५·००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र सूक्त-अन्वयार्थ और सरल-स्पष्ट भाषा में व्याख्या-सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवासयुक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी]

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतु विज्ञान, भूतत्त्व विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्नि विज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

मूल्य २०·००; राज संस्करण ३०·००

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६ के प्रकाशन

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह	३.५०
तत्वज्ञान	७.००
मानव और मानवता	१०.००
प्रभुमिलन की राह	८.००
घोर घने जंगल में	८.००
प्रभुभक्ति	३.००
महामन्त्र	३.००
आनन्द गायत्री-कथा	२.००
उपनिषदों का सन्देश	४.००
एक ही रास्ता	३.००
मानव-जीवन-गाथा	२.५०
शंकर और दयानन्द	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००
प्रभु-दर्शन	४.००
दो रास्ते	४.००
यह धन किसका है ?	६.००
भक्त और भगवान्	३.००
बोध कथाएँ	४.००
मन की बात	४.००
महामन्त्र (उर्दू)	३.५०
Anand Gayatri Discourses	३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू)	१०.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा (दस भाग)	१०.७०

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे सैंकड़ा	१५.००
सत्संग गुटका ५० पैसे(छोटा) ,,	४०.००
आर्य सत्संग गुटका (बड़ा) ८० पैसे ,,	६०.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका	२.००
सन्ध्या-हवन-दर्पण (उर्दू में)	२.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली	८.००

म० नारायण स्वामी

प्राणायाम-विधि	०.६०
कर्त्तव्य-दर्पण (गुटका साइज)	४.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण	४०.००
शिवसंकल्प	४.००
ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
वेदसौरभ	४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त)	१.००
घरेलू औषधियाँ	३.००
वैदिक विवाहपद्धति	२.००
विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
ऋग्वेदशतक	२.००
यजुर्वेदशतक	२.००
सामवेदशतक	२.००
अथर्ववेदशतक	२.००
चतुर्वेद शतकम्	८.००
कुछ करो कुछ बनो	३.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
आदर्श परिवार	४.००
दिव्य दयानन्द	३.००
सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा (अजिल्द)	२०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन	७.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश (जीवन-चरित्र)	१५.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

वेद व्यावहारिक है	०.७५
शंका-समाधान	०.७५
पूजा क्या क्यों कैसे !	०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई	०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव	०.७५
रामचन्द्र देहलवी लेखावली	७.००

पं सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार	२०.००
ब्रह्मचर्य सन्देश	७.००
बुढ़ापे से जवानी की ओर	२५.००
संस्कार चन्द्रिका	४५.००

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित राज्य-व्यवस्था ८.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल १५.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.५०

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

स्वाध्यायसंग्रह ४.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम. ए.

यज्ञ की महिमा १.५०

बालोपयोगी पुस्तकें

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.००
स्वामी श्रद्धानन्द १.००
गुरु विरजानन्द १.००
पं० लेखराम १.००
पं० गुरुदत्त १.००
स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.५०

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

पं० इन्द्रविद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

श्री रामशरण वशिष्ठ

पशु हिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००
वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान १.५०
वेदार्थ विज्ञान १.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना व संघर्ष ४.००

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य १.५०

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

हृदयरोग कारण निवारण ८.००
गर्भस्थिति प्रसव व शिशुपालन ४.००

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ७.५०
सु-राज्य की रूपरेखा ०.५०

स्वामी दर्शनानन्द

कथा-पच्चीसी २.५०
बालशिक्षा-धर्मशिक्षा ०.६०

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००
आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५
व्यवहारभानु १.००
बालशिक्षक ०.३७

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते ? २.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ? २.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ? २.००
जो चाहें सो कैसे पायें ? २.००
अपना खर्च कैसे घटायें ? २.००
अवसर को पहचानो ! २.००
अपने आपको पहचानिए ! २.००
आप सफल कैसे हों ? २.००
उन्नति कैसे करें ? २.००
धनकुबेर कैसे बनें ? २.००

सीताराम सहगल

अमर भारती ३.००

मनहर चौहान

महाभारत ३.००
रामायण ३.००

महिला-उपयोगी

सुबोध मेक-अप ४.००

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली से प्रकाशित किया।

९२७(VII)

३.६५

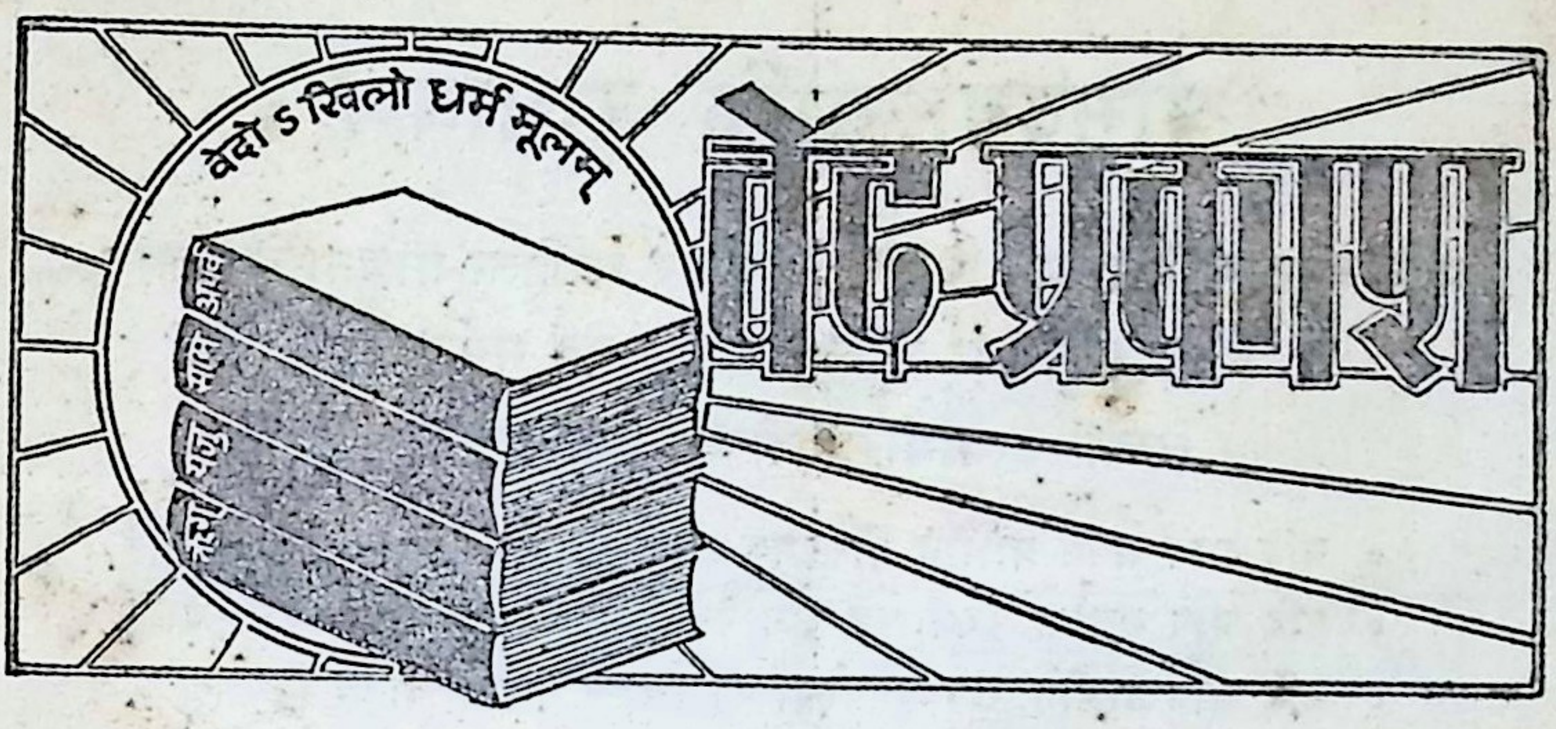

'वेद प्रकाश' के २९वें वर्ष के विशेषांक

१. वेदाङ्क—अगस्त मास में श्रावणी के पावन पर्व पर ५ वेदमन्त्रों की सुललित व्याख्या स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा

२-३. 'वैदिक राजनीति अंक' सितम्बर-अक्तूबर में, पं० सुरेशचन्द्र वेदालंकार द्वारा

४. 'वैदिक संस्कृति अंक' नवम्बर में स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा

५. 'संख्या अंक' दिसम्बर में स्वामी वेदव्रतानन्द जी द्वारा

६-७. 'अथर्ववेद सूक्ति-सुधा अंक' जनवरी-फरवरी में स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा

८. नारी अंक—मार्च मास में स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा।

अपना शुल्क शीघ्र भेजें

—व्यवस्थापक

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न, रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झाँकी देखना चाहते हैं,
- यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं,
- यदि आप प्राचीन राज्यव्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं,
- यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं,
- यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं,
- यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं,

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण ६००० श्लोकों में समाप्त। मूल्य : ४० रुपये

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा लिखते हैं—

"सम्पादन और टीका-टिप्पणी लौह-लेखनीधारी स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा हुई है। पं० आर्यमुनि, पं० राजाराम शास्त्री, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने भी रामायण की टीका क्षेपक-रहित प्रकाशित की थीं। उनमें पादटिप्पणियों का अभाव था। इस टीका में टिप्पणियों की भरमार है जिनसे विषय का प्रतिपादन भलीभाँति हो जाता है।...स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का परिश्रम, स्वाध्याय, विद्वत्ता प्रत्येक अध्याय में दृष्टिगोचर होते हैं।"

श्री अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व ठा० अमरसिंह जी महाराज) लिखते हैं—

"रामायण को देखकर ऐसा लगा कि इसमें कोई आवश्यक बात छूटी नहीं तथा कोई अनावश्यक और अनर्गल बात रहने नहीं पाई। टिप्पणियों तथा शंकाओं के समाधानों ने तो सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दी है।"

महात्मा नारायण स्वामी जी की अनुपम पुस्तक

कर्त्तव्य-दर्पण

छपकर तैयार, पूरी कपड़े की जिल्द, मूल्य ४·००

◈ ओ३म् ◈

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २८, अंक १२]   वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया   [जुलाई १९७९

सम्पा० : विजयकुमार   आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

सम्पादकीय

प्रिय पाठकगण ! इस अंक के साथ 'वेदप्रकाश' अपने जीवन के २८ वर्ष पूर्ण कर रहा है। 'वेदप्रकाश' ने २८ वर्षों में विशेषाङ्कों के रूप में जो साहित्य पाठकों को दिया है, उसकी सभी ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

पिछले कई वर्षों से 'वेदप्रकाश' के सभी अंक प्रायः विशेषांक ही होते हैं। 'वेदप्रकाश' की लोकप्रियता हमें प्राप्त होनेवाले पाठकों के पत्रों से भली-भाँति जानी जा सकती है।

श्री विजय शास्त्री जी जालन्धर से लिखते हैं—

"मैं वर्षों से 'वेदप्रकाश' पढ़ रहा हूं। कुछ वर्ष से आपके विद्वत्तापूर्ण लेख इसमें प्रकाशित हो रहे हैं। अन्य किसी विद्वान् के लेख न होने पर भी पत्रिका केवल आपके विचारों की महत्ता के कारण मुझे अत्यन्त प्रिय लगती है, अतः मैं इसे संग्रहणीय समझता हूँ।"

जालन्धर से ही काशीराम अग्रवाल लिखते हैं—

मई मास का 'वेदप्रकाश' अंक मिला, पढ़कर कुछ ज्ञान वृद्धि हुई। 'आत्मा की खोज' शीर्षक से लिखा गया श्री रामशरण वासिष्ठ का लेख अत्यन्त रोचक एवं इस विषय में ज्ञानवृद्धि में सहायक है।"

पं० गंगाजी राव विद्यावाचस्पति हिसार से लिखते हैं—

'वेदप्रकाश' पत्रिका प्राप्त हुई। 'यजुर्वेद सूक्ति सुधा' अंक अच्छा लगा, पढ़कर प्रसन्नता हुई।

श्री कर्त्तारसिंह जी लिखते हैं—

मैं 'वेदप्रकाश' से पिछले पाँच वर्ष से संपृक्त हूँ तथा एक-एक अंक को बहुत

ही सुरक्षित भी रखता हूँ, निज सम्पत्ति रूप में। यही आशा मुझे 'वेदप्रकाश' के अन्यान्य प्रबुद्ध पाठकों से भी है। चूंकि पिछले चार वर्षों से तो वेदप्रकाश का प्रत्येक अंक मात्र अंक न होकर विशेषांक के रूप में आ रहा है, यह बहुत ही अच्छी परिपाटी आपने डाली है, इसके लिए आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। आशा है 'वेदप्रकाश' इसी भांति विशेषांक के रूप में उपलब्ध होता रहेगा।"

इस प्रकार के अनेक पत्र उद्धृत किये जा सकते हैं। 'वेदप्रकाश' की इसी परम्परा में इसी बार निम्न लघु विशेषांक देने की योजना है—

१. वेदाङ्क अगस्त मास में।

२—३. वैदिक राजनीति अंक, दो अंकों में समाप्त। लेखक सुरेशचन्द्रजी वेदालंकार।

४—५. अथर्ववेद सूक्ति सुधा।

६. वैदिक संस्कृति अंक।

७. नारी अंक।

इसी प्रकार के अन्य भी कई रोचक एवं पठनीय अंक।

वेदप्रकाश का वृहद् विशेषांक—

पिछले कई वर्षों से हम 'वेदप्रकाश' का वृहद् विशेषांक नहीं दे पाये। इस बार दीपावली के पावन पर्व पर हम 'वेदोपदेश' नाम से वेदप्रकाश का वृहद् विशेषांक अपने पाठकों को भेंट कर रहे हैं। इस विशेषांक में चारों वेदों के चुने हुए ५४ मन्त्रों की सुललित एवं मनोहर व्याख्या होगी। आपने वेदप्रकाश में अनेक बार वेदमन्त्रों की लम्बी-लम्बी व्याख्याएँ पढ़ी हैं। इस विशेषांक में ऐसी ही ५४ मन्त्रों की व्याख्या होगी। वेदप्रकाश साइज में लगभग ३०० पृष्ठों का यह अंक होगा। यह अंक उपदेशकों के लिए उनका साथी होगा। जिन समाजों में उपदेशक नहीं पहुंच पाते, वहाँ इस अंक से वेदोपदेश किया जा सकेगा। पुस्तक-रूप में इस ग्रन्थ का मूल्य २० रुपये होगा, परन्तु 'वेदप्रकाश' के ग्राहकों को यह ग्रन्थ २५% कमीशन काटकर मिलेगा। स्वयं ग्राहक बनें और अपने इष्ट मित्रों को ग्राहक बनाएँ।

अपना वार्षिक शुल्क भेजें—जैसे 'वेदप्रकाश' नियमित रूप से आपके पास पहुंचता है, आप भी अपने कर्त्तव्य का पालन करें। इस अंक के प्राप्त होते ही अपना शुल्क मनीआर्डर द्वारा शीघ्र भेजें। जो पाठक विशेषांक लेना चाहते हैं वे २० रुपये भेजें।

मेरी प्रचार यात्राएँ—मुझे प्रचार के लिए भारत में और भारत से बाहर भी जाना पड़ता है। जून मास में तो निरन्तर कथाएँ और वेदोपदेश करता रहा हूँ। जून में सुभाषनगर दिल्ली, आर्यसमाज रुड़की, आर्यसमाज नगर शाहदरा, आर्यसमाज रघुवरपुरा आदि में कार्यक्रम हुए हैं। इस वर्ष लंका और नेपाल की भी यात्राएँ कीं; इनके संस्मरण भी पाठकों की ज्ञानवृद्धि के लिए अगले किसी अंक में विस्तारपूर्वक लिखूंगा।

मुझे इतना अवकाश नहीं होता कि लेखों की नकल करके विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भेजता रहूँ। मेरे लेख प्राय: वेदप्रकाश में ही छपते हैं। मेरे कार्यक्रमों की सूचना भी इसी के माध्यम से प्रसारित होती है, अतः मेरे साथ सम्पर्क रखने के इच्छुक सभी पाठकों से आग्रह है कि वे पूर्व की भाँति 'वेदप्रकाश' का अपना सहयोग देते रहेंगे।

शुभ कामनाओं के साथ
जगदीश्वरानन्द

वैदिक प्रार्थनाएँ

(रामकृष्ण 'भारती')

सब करते हैं तेरा ध्यान

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥

(ऋ० १, २२, २०)

ज्ञानी, ध्यानी, तपी-तपीश्वर, सब करते हैं तेरा ध्यान॥
तेरा ही सिमरन करते वे, सदा माँगते हैं वरदान॥
विष्णु-रूप हो भगवन्, प्रियतम ! तेरा पद सबसे ऊँचा॥
सभी चाहते तुझको पाना, कौन बने जग में नीचा॥
धर्मात्मा, विद्वान्, वहाँ से, दुःख में कभी नहीं गिरते॥
कायर-नास्तिक तुझे न पाते, ये पीछे हैं पछताते॥
सूर्य-नेत्र आकाश लोक का, ज्योति प्रसारित चारों ओर॥
व्यापक आप दयामय जित-तित, कहीं न है अग-जग का छोर॥
तेरी चरण शरण में स्वामिन् ! जो निज को अर्पित करता॥
सब दुःखों से तर जाता है, परम मोक्ष वह है पाता॥
हम पर भी हे नाथ, कृपालो ! दयादृष्टि इक बार करो॥
प्रियतम हम तेरे बच्चे हैं, हमें नाथ स्वीकार करो॥

घरेलू औषधियाँ

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती द्वारा लिखित घरेलू ओषधियों का चौथा संस्करण छपकर तैयार हो गया। इस पुस्तक की लोकप्रियता इस बात से सिद्ध है कि ५ वर्ष में चौथा संस्करण छपा है। इस ग्रन्थ में सभी रोगों पर १००० नुस्खे हैं। नुस्खे बहुत सरल हैं। कठिन-से-कठिन रोगों का इलाज आप कुछ पैसों में घर बैठकर सकते हैं।

बढ़िया टाइटल, उत्तम छपाई और मूल्य केवल ३.५० रुपये।
निराशा से बचने के लिए शीघ्र मँगाएँ।

आदर्श वैदिक परिवार

—प्रो० रामप्रसाद
अध्यक्ष वेद विभाग, गुरुकुल कांगड़ी

यजुर्वेद अध्याय ३३ में एक मन्त्र आता है जिसके अनुसार सब वेदानुयायी चाहते हैं कि—

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ॥

यजुः ३३. ७७ ॥

(ये नः सूनवः) जो हमारी सन्तान हैं, पुत्र-पौत्रादि हैं, वे (अमृतस्य गिरः उप-शृण्वन्तु) अमृतस्वरूप परमेश्वर की वेदवाणियों को गुरुचरण में बैठकर या ज्ञानी वेदज्ञ विद्वान् उपदेशक या संन्यासी महात्माओं के समीप बैठकर श्रवण करें जिससे कि वे (नः सुमृडीकाः भवन्तु) हमारे लिए सुखकर हों, उत्तमविध सुखकारी हों ।

इस मन्त्र से एक उपदेश हमें यह मिलता है कि हम अपने परिवारों में महर्षि दयानन्द के आदेशानुसार "वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना आर्यों का परम धर्म है—" वेद के स्वाध्याय को अपना परमधर्म मानकर नित्यप्रति उसका स्वाध्याय करें, श्रवण, मनन और निदिध्यासन करें । समय-समय पर ज्ञानी वेदज्ञ विद्वानों एवं संन्यासी-महात्माओं को अपने परिवारों में बुला-बुलाकर उनके प्रवचन कराएँ, जिससे कि हमारी आनेवाली सन्तति उन्हें सुने, समझे और उनके अनुकूल आचरण करे । इस प्रकार आचरण करनेवाली सन्तति निःसन्देह हमारे लिए सुखकर होगी—यशस्कर होगी ।

वेद में पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाने के लिए सामूहिक रूप में तथा व्यक्तिगत रूप में भी बहुत-सी सुन्दर प्रेरणाएँ दी गई हैं । आइये, इस प्रसंग में आज अथर्ववेद के "साम्मनस्य सूक्त" पर विचार करते हैं ।

इस सूक्त में परस्पर मिलकर द्वेषभाव को छोड़कर इस प्रकार कार्य करने का उपदेश दिया गया है, जिससे कि हम सबमें 'सांमनस्य' उत्पन्न हो, सबके मन में एकीकरण की भावना हो, सहृदयता हो अर्थात् एक-दूसरे के दुःख में दुःख और सुख में सुख अनुभव करने की भावना सदा बढ़ती रहे । इस प्रकार के विस्तृत सामाजिक जीवन का आरम्भ घर से होता है । अतः निम्न मन्त्रों में कुटुम्बीजन किस प्रकार परस्पर सहृदयता, सांमनस्य और अविद्वेष की भावना को अपने में उत्पन्न करें, इसका उपदेश दिया गया है । इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में वेद हमें उपदेश देता है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ अथर्व ३.३०.१ ॥

हे मनुष्यो ! (वः अविद्वेषं कृणोमि) मैं तुम्हारे विद्वेषभाव को दूर करता हूँ और उसके स्थान पर (सहृदयं सांमनस्यं कृणोमि) तुममें सहृदयता तथा सांमनस्य को उत्पन्न करता हूँ जिससे कि तुम्हारी एक-दूसरे के प्रति भावना और तुम्हारा एक-दूसरे

के प्रति किया हुआ चिन्तन आत्मीयतापूर्वक हो। और (अन्यः अन्यम् अभिहर्यंत) तुम परस्पर एक-दूसरे को ऐसे चाहो, ऐसे स्नेह करो (जातम् वत्सम् इव अघ्न्या) जैसे नवजात बछड़े को गौ माता स्नेह करती है।

इस मन्त्र के द्वारा वेद भगवान् उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो, तुम्हारे अन्दर किन्हीं भी कारणों से जो विद्वेष 'वि+द्विष अप्रीतौ' एक-दूसरे के प्रति वैरभाव—बिल्कुल भी प्रीति न करने की प्रवृत्ति आ गई है, जिसके कारण परस्पर एक-दूसरे को देखकर तुम्हारे अन्दर प्रीति या तृप्ति नहीं उत्पन्न होती, ऐसे विद्वेष भाव को मैं सर्वथा बाहर निकालकर तुम्हारे अन्दर वे भाव भरना चाहता हूँ जिनके परिणामस्वरूप तुम्हें एक-दूसरे को देखकर ऐसी प्रीति, ऐसी तृप्ति अनुभव हो जैसी कि ग्रीष्म ऋतु में एक प्यासे को शीतल जल के प्राप्त हो जाने से मिल जाती है। इसके लिए मैं तुममें 'सहृदयता' लाना चाहता हूँ। सहृदयता क्या है? समान हृदयता—हृदयगत भावना की समानता, परिवार में एक-दूसरे के दुःख को देखकर दुःख और सुख को देखकर सुख अनुभव करना ही सहृदयता कहाती है। जिस परिवार के सदस्यों में सहृदयता नहीं होती उस परिवार के सदस्यों में प्रीति अर्थात् एक-दूसरे को देखकर तृप्ति का अनुभव होना असम्भव है। इसलिए जो महानुभाव अपने परिवार में प्रीति की बेल बोना चाहते हैं, उन्हें उसकी जड़ों को सहृदयता के जल से सींचना होगा, तभी वह बेल हरी-भरी अर्थात् फूल-फल सकेगी।

जहाँ सहृदयता होगी वहीं पर सांमनस्य पनप सकेगा अर्थात् एक-दूसरे के प्रति स्वाभाविक रूप से मन में शुभ विचारों की सृष्टि होगी। चूंकि मन के अधीन सम्पूर्ण इन्द्रियाँ होती हैं इसलिए जैसे मन के विचार होते हैं वैसे ही अन्य सब इन्द्रियों के व्यवहार होते हैं। अतः अन्य सब इन्द्रियों से उत्तम और प्रशस्त व्यवहारों की सृष्टि उत्पन्न करने के लिए मन में शुभ विचारों का होना आवश्यक है तथा शुभ विचारों के लिए परस्पर सहृदयता की आवश्यकता होती है और सहृदयता तब उत्पन्न होती है जब मनुष्य विद्वेष को छोड़कर एक-दूसरे के दुःख में दुःख और सुख में सुख अनुभव करने लगें। ऐसा करने पर हमारे जीवन में अगला उपदेश सहज ही समा सकेगा। वह क्या कि तुम एक-दूसरे को ऐसे चाहो—एक-दूसरे से ऐसा स्नेहपूर्ण व्यवहार करो जैसे गौ अपने नवजात बछड़े से करती है।

पारिवारिक जीवन में आगे वेद एक सन्तानरूप में विद्यमान पुत्र एवं पत्नी आदि के व्यावहारिक जीवन पर प्रकाश डालता है—

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शंतिवाम्॥ ३.३०.२।

(पुत्रः पितुः अनुव्रतः) पुत्र पिता का अनुव्रती—अनुकूल कर्म करनेवाला अर्थात् आज्ञाकारी हो। (मात्रा संमनाः भवतु) और माता के साथ एकमन होकर आचरण करनेवाला हो। (जाया पत्ये मधुमतीम् शन्तिवाम् वाचम् वदतु) पत्नी पति के प्रति मधुमयी शान्तिजनक वाणी बोले।

इस मन्त्र में वेद ने आदेश दिया है कि परिवार में पुत्र का कर्त्तव्य है कि वह पिता का अनुवर्ती हो। इस वाक्य से पुत्री भी पिता के अनुकूल आचरण करे, ऐसा ग्रहण कर लेना चाहिये।

वेद के इस उपदेश से मनुष्य के मन में यह संदेह उत्पन्न हो सकता है कि क्या पिता की सभी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये? लेखक को स्वयं कई बार ऐसा सन्देह हुआ जबकि उसने कई ऐसी घटनाएँ देखीं जिनमें एक पिता पुत्र को गोदी में बिठाकर स्वयं बीड़ी पीता हुआ उसे भी पीने को प्रेरित करता हुआ प्यार से उसके मुख में अपने ही हाथ से बीड़ी रखता है। इसी प्रकार एक पिता अपने बेटे को ऋषि दयानन्द के साहित्य के पढ़ने और आर्यसमाज में जाने से रोकता है, एक बेटे को मांस-अण्डे खाने को प्रेरित करता है—यह सोचकर कि बेटा शक्तिशाली बनेगा इत्यादि। इस प्रकार के संदेहों का वेद ने बहुत ही सुन्दर रूप से निवारण कर दिया है। वेद ने यहाँ 'अनुव्रत' शब्द दिया है जिसका तात्पर्य यह है कि उसके पिता के जीवन में जो व्रत हो, श्रेष्ठ कर्म हो; वरणीय कर्म हो या उनके जो आदेश श्रेष्ठ हों "व्रतमनु इति अनुव्रतः" उन्हीं के अनुकूल चलना, उन्हीं को मानना ही पुत्र का धर्म है। इसके विपरीत अपने पिता के असद् उपदेशों और उलटे कार्यों का शिष्टाचार एवं मधुरतापूर्वक समझा-बुझाकर परित्याग करना ही उसका कर्तव्य है। इसी प्रकार पुत्र (एवं पुत्री भी) अपनी माता के मन से अपना मन एक करके अर्थात् उनकी मनोभावनाओं का यथेष्ट सम्मान करते हुए व्यवहार करें।

परिवार में जहाँ भी माता-पिता अपनी आनेवाली सन्तान से यह आशा रखें वहाँ उनका स्वयं का भी कर्तव्य है कि उनके सम्मुख जीवन में पग-पग पर अपने व्यवहार द्वारा ऐसा आदर्श उपस्थित करें कि जिसे देखकर उन्हें अर्थात् बालकों को अपने माता-पिता पर गर्व अनुभव हो और वे अपने-आपको भाग्यशाली समझें तथा प्रभु का हृदय से धन्यवाद करें जिसने उन्हें ऐसे अच्छे आदर्श धार्मिक माता-पिता प्रदान किये। उनका सन्तान के प्रति उपदेश शब्दों से नहीं अपितु व्यवहारों से प्रस्फुटित हो। इसलिए वेद ने कहा कि पत्नी को पति से मधु के समान मधुर शान्तिमय सम्भाषण करना चाहिए और ऐसा ही पति को भी। पति-पत्नी का परस्पर का यह आदर्श दिव्य व्यवहार आनेवाली सन्तति के लिए जीवन में पग-पग पर प्रेरणा का स्रोत बनता रहेगा। ऐसा आदर्श जीवन होने पर, समय-समय पर यदि आवश्यकता पड़ने पर कुछ उपदेश भी माता-पिता द्वारा दिया जायेगा तो सन्तान उस उपदेश को श्रद्धापूर्वक शिरोधार्य करने में सुख अनुभव करेगी।

इसके अनन्तर परिवार में एक पुत्र वा पुत्रों के उत्पन्न होने के पश्चात् यदि दूसरा पुत्र या पुत्री उत्पन्न हो, तो उसका माता-पिता के प्रति तो वही व्यवहार रहना चाहिये जो उपर्युक्त मन्त्र में निर्देश किया गया है; परन्तु उनका परस्पर में कैसा व्यवहार होना चाहिये, इसके सम्बन्ध में वेद उपदेश देता है—

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥ ३. ३०.३॥

(भ्राता भ्रातरं मा द्विक्षत्) भाई भाई से द्वेष न करे, (उत स्वसा स्वसारं माद्विक्षत्) बहिन बहिन से द्वेष न करे। (साम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा) [समान गति से एक-दूसरे का आदर सम्मान करते हुए परस्पर मिल-जुलकर कर्मों के करनेवाले होकर अथवा] एकमत से प्रत्येक कार्य करनेवाले होकर (भद्रया वाचं वदत) भद्रभाव से परिपूर्ण होकर सम्भाषण करो।

इस मन्त्र में जहाँ यह बतलाया गया है कि भाई भाई से और बहिन बहिन से द्वेष न करे, वहाँ इससे यह उपदेश भी ग्रहण करना चाहिये कि भाई बहिन से और बहिन भाई से भी द्वेष न करे। यहाँ 'मा द्विक्षत्' में "द्विष अप्रीतौ" धातु का प्रयोग है जिसका अर्थ हुआ अप्रीति न करे। अब अप्रीति न करे तो क्या ? अर्थापत्ति से निकाला कि प्रीति करे। "प्रीति" में "प्रञ्_तर्पणे" धातु है अर्थात् भाई भाई को, बहिन बहिन को, भाई बहिन को और बहिन भाई को परस्पर ऐसा व्यवहार करना चाहिये जिससे वे एक-दूसरे को देखकर तृप्त हों—गद्गद हों। "सम्यञ्चः" सम् इत्येकीभावे सम् एकीभूय अञ्चन्ति गच्छन्तीति सम्यञ्चः। वे सदा एक-दूसरे का आदर-सम्मान करते हुए स्नेहपूर्वक मिल-जुलकर कार्य करें और लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समान रूप से प्रयत्नशील रहें। "सव्रताः" उनके व्रत-कर्म समान हों, श्रेष्ठ हों। यह समान कर्म और समान भाव से उसका किया हुआ पुरुषार्थ उनको निश्चित रूप से अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर करता रहेगा।

इस प्रकार पारिवारिक अभ्युत्थान में संलग्न भाई-बहिनों को परस्पर सम्भाषण भी ऐसा करना चाहिये जो भद्रभाव से परिपूर्ण हो अर्थात् बोलते समय यह विचारकर सब बोलें कि हमारे बोलने से कल्याण हो। क्वचिद् अपवाद को छोड़कर दुर्भाग्य से आज परिवारों में वर्तमान भाई-भाई आदि वह वाणी भी नहीं बोल पाते जो उनके इस लोक को सुखमय बना सके, परलोक की बात तो क्या कहें! फिर भी आश्चर्य है कि आज हम अपने-आप को सभ्यता के उच्च शिखर पर विराजमान अनुभव करते हैं।

वास्तव में इन वैदिक दिव्य व्यवहारों से जो परिवार सम्पन्न रहेगा, वह कितना धन्य होगा!

सूक्त के अग्रिम मन्त्र में वेद उपदेश देता है कि—

येन देवा न वियन्ति न च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥ ३,३०.४॥

हे मनुष्यो! (येन देवा न वियन्ति) जिससे देवजन परस्पर-विरुद्ध पृथक्-पृथक् नहीं होते (न च मिथः विद्विषते) और न ही परस्पर विद्वेष करते हैं अर्थात् जिसको पाकर देवजन सदा संगठित रहते हैं और एक-दूसरे को देखकर फूले नहीं समाते (तत् संज्ञानं ब्रह्म) वह परस्पर एकता उत्पन्न करनेवाला दिव्य ज्ञान (वः गृहे पुरुषेभ्यः) तुम्हारे घर में सबके लिए समान रूप से प्रदान करते हैं।

इस मन्त्र से यह भाव निकलता है कि जो दिव्य ज्ञान सदा देवों को एकसूत्र में पिरोए रखता है, उनमें परस्पर प्रेम की गंगा बहाए रखता है, जिसके कारण न तो वे एक-दूसरे के विपरीत आचरण करते हैं और न ही परस्पर वे द्वेष करते हैं, तब

वह दिव्य पावन ज्ञान हम एक ही कुटुम्ब के वासी मनुष्यों को, जो रक्त-सम्बन्ध से वैसे ही एक-दूसरे के साथ अपनत्व अनुभव करते हैं, क्यों नहीं संगठन और स्नेह के पावन सूत्र में हमें पिरो सकेगा ? अवश्य ही वह दिव्य ज्ञान हमें परस्पर इतना निकट ले आएगा—ऐसे स्नेह सूत्र में पिरो देगा कि यह परिवार एक आदर्श परिवार के रूप में खड़ा होकर दूसरों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन जाएगा ।

वेद पुनः आगे उपदेश देता है—

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वियौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः ।
अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान् वः संमनसस्कृणोमि ॥

हे परिवार में निवास करनेवाले मनुष्यो ! (ज्यायस्वन्तः चित्तिनः, संराधयन्तः, सधुराश्चरन्तः मा वियौष्ट) परिवार में वृद्धों का सम्मान करनेवाले, सम्यक् ज्ञान के धनी, एक-साथ मिलकर कार्य को सिद्ध करनेवाले, एक धुरी के नीचे रहकर कार्य करनेवाले अर्थात् कार्यभार को मिलकर आगे बढ़ानेवाले तुम लोग परस्पर पृथक् मत होवो । (अन्यः अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत) तुम सब कार्य करते हुए एक-दूसरे से सदा स्नेह आदि सम्मानपूर्वक बातचीत करते हुए आगे बढ़ो, (वः सध्रीचीनान् सम्मनसः कृणोमि) मैं तुम सबको एक-साथ मिल-जुलकर कार्य करनेवालों को समान मनवाला, एक मनवाला—समान संकल्पवाला बनाता हूँ, जिससे तुम अपने उद्देश्य में सदा सफल होते रहो ।

इस प्रकार एक परिवार में वृद्धों को सम्मान मिलता रहे और छोटों को प्यार और आशीर्वाद तथा उत्साह मिलता रहे और सब मिल-जुलकर प्रेम-पूर्वक परिवार के अभ्युत्थान में कृतसंकल्प हो जायें, तो उस परिवार के सुख-सौभाग्य में सन्देह रह नहीं सकता ।

परन्तु इस प्रकार परिवार में मिल-जुलकर प्रेमपूर्वक कार्य करने के परिणामस्वरूप घर में जो वैभव आए, उसके उपभोग में यदि कहीं भी द्वेषभाव आ गया तो परिवार के संगठन को ठेस लगने की सम्भावना हो सकती है । अतः वेद अग्रिम मन्त्र में उपदेश देता है—

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ ३. ३०. ६ ।

हे परिवार में प्रेमपूर्वक निवास करनेवाले मनुष्यो ! (प्रपा समानी) तुम्हारा दुग्धादि पदार्थों का पान समान हो (वः अन्नभागः सह) तुम्हारा भोजन एक-जैसा हो और साथ-साथ ही अर्थात् तुम्हारा खानपान एक-जैसा हो, उसमें किसी प्रकार का भेदभाव न हो । प्रेमपूर्वक सब एक-साथ मिलकर खाओ-पीओ, भले ही तुम्हारे पात्र पृथक्-पृथक् हों, क्योंकि इस प्रकार मिलकर साथ बैठकर खाने का भी एक अपने ढंग का आनन्द है । (समाने योक्त्रे वः सह युनज्मि) एक जुए में मैं तुम सबको साथ-साथ जोड़ता हूँ अर्थात् तुम सब अपने-आपको एक ही परिवार के बन्धन में, संगठन में बँधा हुआ समझो (नाभिम् अभितः अरा इव) ऐसे जैसे कि रथ की नाभि के चहुँ ओर अरे जुड़े हुए होते हैं । इस प्रकार तुम सब (सम्यंचः अग्निं सपर्यत) मिलकर एक-दूसरे का आदर-सम्मान करते हुए प्रकाशस्वरूप प्रभु की पूजा करो, अग्निहोत्र अर्थात् यज्ञ

करो अथवा मिल-जुलकर एक-जैसी संकल्पाग्नि को मन में प्रज्वलित करो और उसमें अपनी-अपनी सेवा की आहुति प्रदान कर घर के वातावरण को सुगन्धित करो।

इस मन्त्र के आधार पर जिस परिवार में सभी मनुष्य प्रातःकाल उठकर नहा-धोकर मिलकर एक-साथ बैठकर जब संध्या-उपासना और भजन करते होंगे, सब मिलकर वेद के पावन मन्त्रों से अग्नि देवता के चहुँ ओर बैठकर यज्ञ करते होंगे, अपने-अपने भाग की आहुति देते होंगे, सब मिलकर परिवार के अभ्युत्थान के लिए मनों में संकल्पाग्नि को प्रज्वलित करते होंगे, पुनः सब एक-साथ बैठकर दुग्धादि पदार्थों का पान वा भोजन करते होंगे, मिलकर कार्य करते होंगे, मिलकर स्वाध्याय-सत्संग तथा शयनादि के पावन मन्त्रों का पाठ करने के उपरान्त जब सो जाते होंगे तो उनका दैनिक व्यवहार ही मात्र प्रसन्नता और प्रेरणा का स्रोत नहीं रहेगा बल्कि उनका चैन से सोना भी सबको अपनी ओर आकर्षित किये विना नहीं रहेगा।

वेद आगे कहता है कि—

सध्रीचीनान् वः सम्मनसस्कृणोम्येकश्नुष्टीन्त्संवननेन सर्वान्।
देवा इवाऽमृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु॥ ३.३०.७॥

(संवननेन) इस प्रकार मिल-जुलकर पदार्थों के सेवन से या उत्तम सेवा-भाव से (वः सर्वान् सध्रीचीनान्-संमनसः एकश्नुष्टीन् कृणोमि) तुम सब को एक-साथ मिलकर पुरुषार्थ करनेवाला, एकमन होकर विचार करनेवाला तथा परिवार में एक को अपना बड़ा मानकर उसकी आज्ञा में चलनेवाला या एक ध्येय को लेकर कार्य करनेवाला बनाता हूँ। (अमृतं रक्षमाणाः देवाः इव) अपने अमरत्व की रक्षा करते हुए देवों के समान (सायं प्रातः वः सौमनसः अस्तु) प्रातः-सायं तुम सबका सौमनस्य बना रहे।

इस मन्त्र का भाव यह है कि परिवार के सभी सदस्य जब एक-साथ मिलकर विना भेदभाव के परिवार के पदार्थों का उपभोग करते हैं, तो वे सब उस घर के अभ्युत्थान के लिए अपनी-अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार समान रूप से एक मन होकर एक पताका के नीचे उद्योग करते रहते हैं। ऐसा करते हुए वे सब अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल होते हैं।

□

बालशिक्षा

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती द्वारा लिखित एक अनूठी पुस्तक।

माता-पिता बच्चों को कैसी शिक्षा दें? उनका आहार-व्यवहार कैसा हो? उनकी दिनचर्या कैसी हो? बालकों में किन गुणों का विकास हो आदि बीसियों विषयों का समावेश है।

६४ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल १.२५ रुपये, गोविन्दराम हासानन्द से प्राप्त।

वेद शब्द पर एक विचार

प्रो० भद्रसेन, होशियारपुर

हमारा पारस्परिक भावों के आदान-प्रदान का सारा व्यवहार शब्दों से होता है। तभी तो कहा है—शब्देष्वाश्रिता शक्ति विश्वस्यास्य निबन्धनी—(वाक्यपदीय १,११८) अर्थात् परस्पर के भावों के आदान-प्रदान की शक्ति शब्दों पर ही निर्भर है, क्योंकि (नास्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमाहते, वा० १,१२३) ऐसा कोई भी बोध नहीं है जो शब्दों के बिना हो। अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए हम जो शब्द बोलते हैं, वे तीन प्रकार के हैं—यौगिक, योगरूढ़ और रूढ़। यौगिक शब्द वे कहलाते हैं, जो प्रकृति-प्रत्यय के योग से बनते हैं या किसी कारण के आधार पर जिनका व्यवहार होता है। जैसे भोजन पकानेवाले को पाचक या रसोइया, घास काटनेवाले को घसियारा, हल चलानेवाले को हाली, ऐसे ही कारक, कर्त्ता, मालाकार, लोहकार आदि शब्द हैं अर्थात् जो भी कोई वह कार्य करता है, उसको तत्सम्बन्धी नाम से पुकारते हैं।

दूसरे प्रकार के शब्द हैं—योगरूढ़, ये शब्द बनते या प्रयुक्त तो पहले शब्दों की तरह होते हैं, परन्तु उस कार्य से सम्बन्ध रखनेवालों में से किसी एक के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। वैसा ही कार्य करने पर दूसरे उस नाम से नहीं पुकारे जाते हैं। जैसे जल से बहुत सारी चीजें उत्पन्न होती हैं, परन्तु केवल कमल को ही जलज, सरसिज, अम्बुज कहते हैं। ऐसे ही साधु, गौ, अश्व आदि शब्द हैं। तीसरे प्रकार के शब्द हैं—रूढ़, ये शब्द किसी कारण या आधार पर नहीं बनते या प्रयुक्त होते, अपितु ऐसे ही प्रयुक्त होते हैं; अथवा जिनके प्रकृति-प्रत्यय का कोई ज्ञान नहीं होता, जैसे कि डित्थ, कपित्थ, कागज, दवात आदि तथा हमारे नाम जो कि बिना आधार के प्रयुक्त होते हैं।

इन तीनों प्रकार के शब्दों में से वेद शब्द योगरूढ़ है। जैसे साधु शब्द का अर्थ है—अच्छा, परन्तु वह अब प्रायः केवल गेरवे वस्त्र धारण करनेवाले संन्यासी के लिए ही प्रयुक्त होता है। ऐसे ही वेद शब्द का अर्थ ज्ञान, शास्त्र होते हुए भी केवल ऋग्-यजुः-साम और अथर्ववेद के लिए ही पारिभाषिक रूप में प्रयुक्त होता है। वैसे तो आयुर्वेद, धनुर्वेद, उपवेद में भी वेद शब्द प्रयुक्त होता है। वेद शब्द को पारिभाषिक, योगरूढ़ न मानकर केवल ज्ञान अर्थ में मानने पर व्यवहार-निर्णय का फिर कोई आधार न होगा, तथा इससे परस्पर का भावबोधक व्यवहार अस्त-व्यस्त हो जाएगा। भारतीय साहित्य में अधिकतर वेद विशेष ग्रन्थ के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।

वेद-महिमा—सारा भारतीय साहित्य एक स्वर से वेद को प्रमाण और समादरणीय मानता है। विविध विषयों के भारतीय वाङ्मय का उद्भव और विकास वेद से ही हुआ है। तभी तो प्रत्येक क्षेत्र के शास्त्रकार ने वेद को प्रमाण-रूप में अंगीकार

करके अपने शास्त्र में समादरणीय स्थान दिया है। अतः वेद भारतीयों की पवित्र धरोहर, भारतीय साहित्य के मूलस्रोत एवं भारतीय संस्कृति तथा धर्म के अक्षय कोष हैं। तभी तो मनुस्मृति में कहा है—वेदोऽखिलो धर्ममूलम् २,६=सम्पूर्ण धर्म का मूल आधार वेद है, इसलिए ही आगे कहा है—धर्मजिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः २,१३=धर्म के रहस्यों को जाननेवालों के लिए वेद परम प्रमाण है, क्योंकि—ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां हि धर्मो निर्बभौ २,१०=वेद और वेदानुकूल स्मृति-ग्रन्थ धर्म के सम्बन्ध में बिना ननु,-नच के प्रामाण्य हैं यतोहि उनसे ही धर्म का विधि-विधान प्रकट हुआ है, अर्थात् धर्म का मूल आधार वेद ही है। इसी भाव को मीमांसा दर्शन-कार ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः १,१,२।

मनु की दृष्टि से समाज के हर वर्ग के लिए चाहे वे (पितृदेव मनुष्याणां वेदचक्षुः सनातनम् १२,९४) समाज में पालन-पोषण, ज्ञानप्रसार और सामान्य कार्य करनेवाले हों, सभी के लिए समान रूप से कल्प-अनुकल्प से आनेवाला चक्षु है, क्योंकि आँख की तरह सभी व्यवहार्य वस्तुओं के यथार्थ दर्शन कराता है। क्योंकि वेद "सर्वज्ञानमयो हि सः" २,७ सब प्रकार के अपेक्षित ज्ञानों से पूर्ण हैं, तभी तो सर्वं वेदात् प्रसिध्यति" १२,९७ सर्वविध क्षेत्रीय ज्ञान वेद से ही प्रसारित होता है अर्थात् भारतीय साहित्य के विविध विषयों के शास्त्रकारों ने वेद से ही प्रेरणा, विषय, बोध पाकर स्वग्रन्थ का प्रणयन किया है। तस्मादेतत् परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् १२,९९ इसीलिए मैं इसको मानव के लिए परम हितकर साधन मानता हूँ। मनुस्मृतिकार ने ही नहीं अपितु सभी भारतीय शास्त्रकारों ने वेद को बड़ी आदर की दृष्टि से देखा है और बारम्बार स्मरण किया है। वैशेषिक दर्शन के प्रणेता महर्षि कणाद ने वेद के स्वरूप और विषय को सामने रखकर क्या ही मार्मिक कहा है—"बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे" ६,१ अर्थात् वेद की वाक्य एवं वाक्यों की अन्तर्गभित विषयरचना बुद्धिपूर्वक है। अतः बुद्धिपूर्वक ही वेद के सर्वविध भाव और स्वरूप को हृदयंगम किया जा सकता है।

वेद के पर्यायवाची शब्द

संस्कृत साहित्य में वेद को निगम, आगम, छन्द, आम्नाय, अन्वध्याय और श्रुति शब्दों से स्मरण किया गया है। वेद शब्द विचार, ज्ञान, सत्ता, लाभ अर्थ वाली विद् धातु से घञ् प्रत्यय होकर बनता है। श्री सायणाचार्य ने वेद शब्द का भाव दर्शाते हुए लिखा है कि इष्टि और आपूर्त कर्मों की सिद्धि का जो अलौकिक उपाय बताए वह वेद है अथवा जो ज्ञान या उपाय प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण से प्राप्त नहीं होता, उसको बताने से ही वेद का वेदपन है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेद शब्द का अभिप्राय स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—सारी सत्य विद्याओं का जिनमें ज्ञान और विचार है तथा जिनसे इन सत्य विद्याओं को प्राप्त करते हैं वे वेद हैं। इन दोनों परिभाषाओं से सायणाचार्य और महर्षि दयानन्द सरस्वती का वेद-सम्बन्धी दृष्टिकोण स्पष्ट सामने आ जाता है।

निगम—निश्चित, निर्णीत ज्ञान के देने से वेद को निगम नाम से स्मरण किया

जाता है। **आगम** शब्द का अभिप्राय है मूल ग्रन्थ। जैनी बन्धु आज भी अपने मूल ग्रन्थों को आगम नाम से स्मरण करते हैं। वेद जहाँ भारतीयों और उनके सर्वविध साहित्य के मूल ग्रन्थ हैं, वहाँ धात्वर्थ के अनुसार मर्यादित, व्यवस्थित ज्ञान के अक्षय कोष होने के कारण आगम शब्द से पुकारे जाते हैं। **छन्दः**—छन्द शब्द लोक में किसी भाव को विशिष्ट ढंग से बँधे हुए शब्दों में कहने पर पद्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है। तथैव वेद में कहे गए भाव, विषय-विवेचन या शब्द गायत्री, उष्णिक्, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, पंक्ति, बृहती और जगती आदि वैदिक छन्दों में निबद्ध हैं। वेद के छन्द अपने-आप में अद्भुत एवं प्राचीनतम हैं। छन्दोबद्ध होने से ही वेद को छन्द के नाम से स्मरण किया जाता है।

आम्नाय—मर्यादा अर्थवाले आङ् उपसर्गपूर्वक म्ना (अभ्यासे) धातु से आम्नाय शब्द बनता है, जिसका अभिप्राय है कि उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आदि स्वरों की मर्यादा का ध्यान रखते हुए वेद के मन्त्रों का पाठ, अभ्यास किया जाता है। अतः वेद को आम्नाय भी कहते हैं। **अन्वध्याय**—गुरु के उच्चारण के अनन्तर या निर्देश के अनुसार शिष्य मन्त्रों का पाठ करता है। इसीलिए वेद को अन्वध्याय के नाम से याद किया जाता है। इसी तरह अनुश्रव भी संज्ञा है, जैसे कि योगदर्शन में १,१५ की भोजवृत्ति में कहा है—गुरुमुखादनुश्रूयते इति अनुश्रवो वेदः। गुरुमुख से इनका श्रवण किया जाता है, अतः वेद अनुश्रव शब्द से संकेतित किए जाते हैं। **श्रुतिः**—वेद अपने प्रादुर्भाव के समय से ही गुरु-परम्परा से स्मरण करके सुरक्षित रखे गए हैं अर्थात् श्रवण करके विशेष रूप से कण्ठस्थ किए जाते हैं। अतः आज भी कुछ वेदपाठी मिलते हैं, जिन्होंने सस्वर एक या अधिक वेदों को स्मरण किया हुआ है। प्राचीन काल में मुद्रण की सुविधा न होने से तथा कण्ठस्थ करने की महिमा के कारण श्रवण-परम्परा से ही अधिकतर वेदों का संरक्षण, अध्ययन होता था। अतः श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयः (मनु २,१०) वेदों को श्रुति भी कहते हैं।

भारतीय साहित्य की यह दृढ़ धारणा और मान्यस्पद आर्यसिद्धान्त है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। चिकित्सक जैसे रोगी से उसका हाल जानने के बाद केवल औषधि देकर भेज नहीं देता, अपितु औषधि की सेवनविधि तथा पथ्यापथ्य भी बताता है अन्यथा दवा लाभ देने के स्थान पर हानिकारक भी हो सकती है। यन्त्र के साथ जैसे उसके प्रयोग के सम्बन्ध में यथोचित ज्ञान की उपयोगिता होती है, वैसे ही परमेश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में मानवों के कल्याण के लिए जहाँ सूर्य, चन्द्र, वायु, जल, पृथिवीस्थ पदार्थ दिए, वहाँ उनसे यथोचित उपयोग लेने के लिए अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा नामवाले ऋषियों के हृदयों में क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञान दिया—ईश्वरीय ज्ञान दिया। ईश्वरीय ज्ञान होने के कारण ईश्वरप्रदत्त अग्नि, वायु आदि की तरह इन पर मानवमात्र का समान अधिकार है। जगदीश्वर ने नेत्रों की सहायता के लिए जहाँ सूर्य, अग्नि आदि का प्रकाश दिया, वहाँ मानव-बुद्धि के सहाय तथा विकास के लिए वेदज्ञान दिया, क्योंकि मनुष्यों का अधिकार ज्ञान-नैमित्तिक है। जैसा-जैसा निमित्त प्राप्त होता है, वैसा ही मानव के ज्ञान का विकास होता है।

ज्ञान के प्रसार का मुख्य आधार भाषा है। अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के साथ तुलनात्मक भाषा-विज्ञान का भी सूत्रपात हुआ। इसमें जहाँ भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन और रचनात्मक स्वरूप तथा भाषा-विकास पर अच्छा प्रकाश डाला गया है, वहाँ संसार में सर्वप्रथम भाषा का प्रादुर्भाव कैसे हुआ, इस सम्बन्ध में भी अनेक कल्पनायें की गईं। वे सारी कल्पनायें स्वयं ही एक-दूसरे पक्ष ने दोषयुक्त मान ली हैं तथा एकांगी हैं, क्योंकि वे सब कल्पनायें भाषा के विकसित रूप को सामने रखकर आज की जा रही हैं और केवल अनुमान ही हैं। अब तो भाषा के प्रारम्भिक प्रादुर्भाव के विचार को भाषाशास्त्रियों ने अतीतकाल की घटना होने से छोड़ दिया है। कुछ भाषा-वैज्ञानिकों का विचार है कि निर्णय का कोई आधार न होने से यह भाषा-विज्ञान का विषय ही नहीं है।

वेद में मानव-जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक के प्रत्येक पहलू पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। अतः वेद सार्वकालिक, सार्वभौमिक और विश्वजनीन सन्देशों का स्रोत है। तभी तो देशी-विदेशी सभी विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से वेदों की प्रशंसा की है। वेदरूपी अनुपम सागर में गोते लगाने का एकमात्र आधार संस्कृत भाषा ही है। इसी द्वारा ही हम वेद की भावनाओं को हृदयंगम कर सकते हैं। अतः वेदों के अनमोल रत्नों को प्राप्त करने के लिए संस्कृत भाषा का तन-मन व धन से संवर्धन और संरक्षण करना चाहिए। विशेष रूप से संस्कृत के लेखकों को प्रोत्साहित करना चाहिए जिससे वे आज के विज्ञापन के युग में पत्र-पत्रिकाओं के सक्षम, सरल, विस्तृत, शीघ्र-व्यापी और सर्वजन-सुविधापूर्ण माध्यम का सहारा लेकर संस्कृत साहित्य के अनुपम रत्नों को जनता के समक्ष प्रस्तुत कर सकें। क्या धनी-मानी जन और ट्रस्ट-संगठन एक-एक संस्कृत-लेखक को भी संरक्षण और प्रोत्साहन देने का शुभ प्रयास करेंगे? देखें, इस क्षेत्र में कौन पहल करता है!

□

वेदप्रकाश के व्यवस्थापक श्री सोमदेव जी को मातृशोक

श्री सोमदेव जी की माता जी का देहान्त २६ जून को ३-३० बजे हो गया। हम वेदप्रकाश परिवार की ओर से श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। प्रभु दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करें और शोक-सन्तप्त परिवार को धैर्य।

गोरक्षा-रहस्य

(ले०—श्री अम्बिका सहायजी, किला ग्वालियर)

साधारण कृषक गोरक्षा के लाभ जानता है—

प्रश्न—ओ कृषक, बतलाओ तो गोरक्षा से क्या लाभ-हानि है ?

उत्तर—सब प्रकार लाभ ही लाभ है, हानि कुछ नहीं।

प्रश्न—क्या-क्या लाभ होते हैं ?

उत्तर—गोमाता की प्रजा बैलों की जोड़ी से हम खेती करते हैं। नाना प्रकार के अन्न, गेहूँ, चना, ज्वार, बाजरा, मटर, अरहर, उड़द, मूंग, धान, ईख आदि भोजन के पदार्थ और वस्त्रों के निमित्त कपास, बोरियों के लिए सन, पाट आदि उत्पन्न करते हैं। हम अनाज गाड़ियों में भरकर बेचने को ले जाते हैं। वे गाड़ियाँ बैल चलाते हैं। बैल हमारे भारवाहक हैं।

गौ से उत्पन्न बछियाँ बड़ी होकर अर्थात् स्वयं गौवें बनकर हमें निज माता के समान ही स्नेह और स्वास्थ्यवर्द्धक दूध देने लगती हैं। शुद्ध दूध से हम दही, मक्खन, छाछ, घृत, मलाई, रबड़ी, मिष्ठान्न, पकवान बना लेते हैं। हमारे जीवन-निर्वाह के प्रायः सभी पदार्थ गौमाता और उसकी प्रजा द्वारा उपलब्ध होते हैं।

प्रश्न—गोपालन में व्यय क्या होता है ?

उत्तर—गेहूँ हम खाते हैं, भूसा गाय-बैलों को देते हैं। हम फसल पर गेहूँ की बालें और चने भूनकर खुद खाते हैं और चनों के हरे पत्ते गौओं-बैलों को देते हैं। ज्वार-बाजरा हम खाते हैं, उनके डण्ठलों की कुट्टी पशुवर्ग के काम आती है। सरसों, तिल आदि से जो तेल निकलता है, वह हमारे काम आता है और खली पशु खाते हैं। ईख से रस निकालकर हम अपने लिए गुड़, राब, खांड बना लेते हैं, डण्ठल पशु खा लेते हैं। इस प्रकार जो वस्तु हमारे काम से बच रहती है, वह हमारे पशुवर्ग के काम में आ जाती है। इसके अतिरिक्त हम उन्हें दाना और भोजन के कुछ पदार्थ भी देते रहते हैं। परम्परा की रीति है कि रसोई में पहिली रोटी गाय के लिए निकाली जाती है। केवल घास के लिए कुछ व्यय करना होता है।

हम गौ आदि की पूजा इसलिए करते हैं कि उनसे हमको और उनको भी जीवन-निर्वाह के पदार्थ मिलते रहते हैं। गौ-संवर्धन हमारा कर्त्तव्य है, गोधन हमारा मुख्य धन होता है।

गौ से होनेवाले लाभों के विषय में एक लेख प्रोफेसर श्यामकुमार राव ने 'आर्य संसार' नामक मासिक पत्रिका में जो आर्यसमाज कलकत्ता द्वारा प्रकाशित होती है, निकाला है। उसमें कतिपय पाश्चात्य विद्वानों की सम्मतियाँ दी हैं, जो साभार उद्धृत की जाती हैं—

Ralph Hayne (Agricultural expert U.S.A.)

"Where cow is kept and cared for, civilization advances, lands grow richer, homes grow better, debts grow fewer; the cow is one of the greatest blessings to the human race."

भाषान्तर—संयुक्त राज्य अमेरिका के कृषि-कला के दक्ष श्री राल्फ हेय ने कहा है कि "जहाँ गौ पाली और भली प्रकार देखी जाती हैं, वहाँ सभ्यता प्रगति करती है, भूमियाँ अधिक उपजाऊ हो जाती हैं, घरों में समृद्धि बढ़ती है, ऋण कम होने लगते हैं। गौ मानव-जाति के किए एक बहुत बड़ा वरदान है।"

प्रश्न—गौ आदि पशुवर्ग के गोबर और गोमूत्र से भी क्या कुछ लाभ होते हैं ?

उत्तर—गोबर और गोमूत्र दोनों खाद के काम में आते हैं। गोबर से कण्डे भी पाथे जाते हैं जो ईंधन के काम आता है।

प्रश्न—कतिपय व्यक्ति कहते हैं कि जब कोई गौ दूध देना बन्द कर दे तब उसे मार डालना चाहिये। ऐसी गौवें बहुत हैं, क्या आप यह बहुत उचित समझते हैं ?

उत्तर—गौ-वध हमारी संस्कृति में महापाप है। दूध न देनेवाली गौ से होनेवाले लाभ भी 'आर्य संसार' में लिखे हैं—

One ton of dry cow-dung produces 155 lbs of Ammonium sulphate and 8000 lbs of cow's urine contains as much Nitrogen as there is in 18000 lbs of dry cow-dung. In India annually mil. tons of cow-dung is used as fuel and 700 mil. tons is simply wasted. Properly utilized this can more than meet the total fertilizer requirements of the country. Thus it is not in the least uneconomic to save even the old and non-milch cows.

भाषान्तर—'गाय के एक टन सूखे गोबर से १५५ पाउण्ड अमोनियम सल्फेट (नौसादर) निकलता है और गाय के ८००० पाउण्ड मूत्र में इतना नाइट्रोजन होता है जितना १८००० पाउण्ड सूखे गोबर में। भारत में हर साल ४० करोड़ टन गोबर ईंधन के काम में आता है और ७० करोड़ टन यों ही नष्ट हो जाता है। यदि उसका ठीक ढंग से प्रयोग किया जाय तो देश की खेती की भूमि उर्वरा बनाने की सामग्री आवश्यकता से भी अधिक प्राप्त हो सकती है। इसका निष्कर्ष यह है कि बूढ़ी और दूध न देनेवाली गौओं की रक्षा तनिक भी आर्थिक लाभरहित नहीं है।'

1. ARMSBY

Only 3·5% of the total digested food is recovered in the form of beef while of milk 18% of solid material is obtained.

आर्म्सबाई—गौमांस से केवल ३·५% सुपाच्य भोजन की प्राप्ति होती है जबकि गोदुग्ध से अठारह प्रतिशत ठोस पौष्टिक पदार्थ मिल जाता है।

काम

काम से तात्पर्य अपने शरीर, माता, पिता, स्त्री, सन्तान आदि परिवार, नगर-निवासी, देशवासी तथा मनुष्यमात्र के लिये शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक सुख की सामग्री की उपलब्धि है। पशुवर्ग का रक्षण, भूमण्डल पर ऐसे चक्रवर्ती राज्य की स्थापना जिसमें व्यवस्था ऐसी रहे कि परिवार का प्रत्येक व्यक्ति निज कार्य में स्वतन्त्र रहे किन्तु परिवार में उसका अंग बनकर सहानुभूतिपूर्वक रहे; प्रत्येक परिवार अपने आन्तरिक कार्य में स्वतन्त्र रहे किन्तु नगर के सब निवासी मिलकर रहें; ऐसे ही देश-देशान्तर और फिर भूतल के सब मनुष्य व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र रहकर भी सामूहिक रूप से संगठित रहें; भूमण्डल पर प्रेम का साम्राज्य हो; सर्वत्र शान्ति रहे।

मनुष्य और अन्य चरों में यह भेद है कि मनुष्येतर जीवधारी अपने स्वाभाविक ज्ञान के सहारे जीवन-निर्वाह करते हैं। कारागार में रहनेवाले अपराधियों के समान उनके कार्य-क्षेत्र सीमित हैं। वे दैवी न्यायालय की व्यवस्था के अनुसार भोग-योनि के जीवन बिताते हैं। कोई घटना हो जाय तो वे एकत्र होकर विचार-विनिमय नहीं कर सकते। उन्हें उन्नति के साधन उपलब्ध नहीं।

एक सर्वज्ञ अद्भुत रचयिता ने मनुष्य को विवेक-बुद्धि प्रदान की और कर्मशील जीवन दिया। उसी अन्तर्यामी ने मनुष्य को माता-पिता, आचार्य आदि के निमित्त से भाषासहित नैमित्तिक ज्ञान दिलाकर इस योग्य बनने की व्यवस्था की कि वह उस ज्ञान को विकसित करके कर्मशील बने और सन्मार्ग पर चलकर ब्रह्मानन्द प्राप्त कर सके।

वेद से पुराना कोई ग्रन्थ मनुष्य के पुस्तकालय में नहीं। वेद का ज्ञान मनुष्य-मात्र के लिये जैसा लाभकारी सृष्टि के आदि में था, वैसा अब भी है और आगे भी रहेगा।

वेद मानव-समाज के लिये ईश्वर-प्रदत्त विधान है। सामाजिक जीवन में शासन भी आवश्यक है। वेद में शासक के गुण ये लिखे हैं—

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति। (अथर्ववेद काण्ड २१ सूक्त ५ मन्त्र १७)

ब्रह्मचर्य और तप के बल पर राजा राष्ट्र की रक्षा करता है। राजा शब्द का अर्थ है वह प्रकाशमान अग्रणी जो अपने सदाचरण के रंग में जनसाधारण के हृदयों को रंग सके; प्रकाशित कर सके।

शुभ गुणयुक्त तपस्वी शासक ही भलीभाँति राष्ट्र की रक्षा कर सकता है।

रक्षा मा किर्नो अघशंसः ईशत मानो दुःशंसः ईशत।
मा नो अद्य गवां स्तेनो माऽवीनां वृक ईशत॥

(अथर्ववेद काण्ड १९ सूक्त ४७ मन्त्र ६)

अर्थ—रक्षा करो कि कोई पापी या पाप-चिन्तक शासक न बने, न कोई दुराचारी बुरा शासन कर सके। गाय-बैल की चोरी करनेवाला और कोई भेड़िया आज एक दिन को भी भेड़ों का स्वामी न बने। शासक अत्याचारी न हो।

जब तक वेदों का प्रचार रहा, मानवता की महत्ता रही, वेद-प्रचार रुक जाने पर मनुष्य सहृदय न रहकर निर्दयी हो चला।

आज मनुष्य ने बड़े-बड़े प्रासाद, विविध प्रकार के यन्त्र और यान बना लिये और अपने आराम के साधन जुटा लिये, किन्तु मानवता के नाते उसने कोई उन्नति नहीं की। मनुष्य उत्थान की ओर न जाकर पतन की ओर चला जा रहा है। मानव दानव बनता जा रहा है।

इसका मुख्य कारण यह है कि मनुष्य अपने स्वाभाविक भोजन, अन्न, फल, दूध आदि पर सन्तोष न करके मांसाहार की ओर प्रवृत्त होता जाता है और व्यसनों में फँसता जा रहा है। उसकी मनोवृत्ति तामसी हो गई और होती जा रही है।

काम शब्द से तात्पर्य यह है कि कर्म योनिवाला मनुष्य वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में व्यवहारकुशल हो, मनुष्य-जन्म को सार्थक करे।

हमारे वैयक्तिक, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में सात्विक तथा स्वास्थ्य-प्रद दूध देनेवाली गौ का मुख्य स्थान है। अतः गौ को काम की सिद्धि का मुख्य साधन समझा जाना चाहिये।

□

बाबू पूर्णचन्द जी एडवोकेट

सार्वदेशिक सभा के भूतपूर्व प्रधान का ८ जून को निधन हो गया। आप जीवन-भर आर्यसमाज की सेवा करते रहे। आपने अनेक ग्रन्थ भी लिखे। परम पिता परमातमा दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करें और उनके शोकसन्तप्त परिवार को इस दुःख को सहन करने की शक्ति एवं सामर्थ्य। 'वेदप्रकाश'-परिवार की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

—जगदीश्वरानन्द

मन्युरसि मन्युं मयि धेहि

पं० श्री सत्यपाल जीविद्यालंकार

उपर्युक्त वेदमन्त्र का अर्थ जो प्रायः सब जगह देखने में आता है वह यह है—"हे प्रभो ! तुम क्रोध रूप हो, हम में क्रोध का आधान करो।" किसी भाष्यकार ने अपराध-चेतना (Guilty conscience) से ग्रस्त होकर "क्रोध-रूप" के स्थान पर "रौद्र-रूप" अर्थ करके उस चेतना से मानो मुक्ति पा ली है। पर बात वहीं-की-वहीं है। रौद्र रस का स्थायीभाव भी तो क्रोध ही है। किसी भारी-भरकम शब्द की पनाह लेकर गलत बात ठीक तो नहीं हो जाती। उपर्युक्त वेद-मन्त्र में क्या सचमुच क्रोध की प्रार्थना की गई है ?

मनु महाराज कहते हैं—

दशकामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च। व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥

प्राचीन मनीषियों ने क्रोध को "अनर्थों का मूल" कहा है। भगवान् कृष्ण ने इसे महापाप (महाशनो महापाप) कहकर पुकारा। तब सोचने की बात यह है कि यहाँ 'मन्यु' का अर्थ कुछ और तो नहीं है ? 'मन्त्र' शब्द की व्युत्पत्ति ही यह है—"मननात् त्रायते इति मन्त्रः।" अर्थात् मनन और चिन्तन के बिना वेदमन्त्रों का भीतरी रहस्य उद्घाटित नहीं हो सकता। सौन्दर्य तो और भी दूर की बात है।

क्रोध है क्या ?

क्रोध मन का वह आवेग है जो बुद्धि पर पर्दा डाल दे, उसे मोहाच्छन्न कर दे। गीता कहती है—

"क्रोधात् भवति संमोहः।"

काम और क्रोध रजोगुणी विकार हैं। लोभ और मोह तमोगुणी और अहंकार सतोगुणी। यहाँ प्रसंग क्रोध का है। अतः शेष की विवेचना अप्रासंगिक होगी। क्रोध में रजोगुण सर्वाधिक प्रधान रहता है। यही कारण है कि क्रोध आने पर पानी पी लेने की सलाह दी जाती है। त्रिदोष-सिद्धान्त के अनुसार क्रोधी व्यक्ति में पित्त प्रकुपित रहता है और उसमें पित्त-जन्य रोगों की आशंका अधिक रहती है। क्रोधी व्यक्ति कम मोटा होता है। इसे यों भी कह सकते हैं कि मोटे आदमी को क्रोध कम आता है। रजोगुण अग्नि का गुण है। जो सदा जलता ही रहेगा उस पर मांस कहाँ से चढ़ेगा ? स्वामी विरजानन्द जी महाक्रोधी थे। शायद यही कारण हो कि वे हड्डियों का ढाँचा थे। आँख मूँदकर किसी मोटे आदमी की कल्पना करो तो हँसता नजर आयेगा। पागल अक्सर मोटे होते हैं, क्योंकि उन्हें कोई बात चुभती ही नहीं। मस्ती और मोटापन शायद पर्यायवाची हैं।

मन के किसी भी विकार का सामने से होकर मुकाबला नहीं किया जा सकता। करना लाभप्रद भी नहीं है । योगदर्शन व्यास-भाष्य का नुस्खा है—"प्रतिपक्ष-भावनम् ।" किसी भी विकार के उदय होने पर उसकी विरोधी भावना का संकल्प अधिक प्रभावी होता है। कामवासना में वात्सल्य, क्रोध में धैर्य, लोभ में उदारता, मोह में विवेक और अहंकार में नम्रता का संकल्प ही महौषध है। इसे ही सकारात्मक चिंतन (Positive thinking) कहते हैं। विकारों के सामने अखाड़े में उतर आना नकारात्मक चिंतन (Negative thinking) है। अखाड़े में उतरे भी क्यों? मन के आगे ताल ठोककर अखाड़े में उतर आना ऐसा ही उपहासास्पद है, जैसा कि दारासिंह का किसी बच्चे को चुनौती देना। हम भूल जाते हैं कि हम जीवात्मा हैं और जीवन-भर भूले रहते हैं। यही स्मृति अर्जुन के नहीं रही थी और भगवद्गीता के सात सौ श्लोक इसी स्मृति के पुनरुद्धार में लगे रहे। ज्यों ही वह स्मृति लौटी, हर्षातिरेक से गद्गद होकर अर्जुन कह उठा—नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा। गीता के प्रसिद्ध श्लोकांश—"संमोहात्स्मृतिविभ्रमः" में भी स्मृति का अर्थ यही है। जेठ की भरी दुपहरी में ऋषि दयानन्द ने गुरु विरजानन्द का द्वार खटखटाया। क्रोध में भरकर गुरु ने पूछा—कौन? ऋषि बोले—भगवन्! मुझे यही याद रहता कि मैं कौन हूँ, तब मैं यहाँ आता ही क्यों? इसी के लिए योग-सूत्र के व्यास-भाष्य में कहा गया है—"एकमेव दर्शनं ख्यातिरेव दर्शनम्" अर्थात्, सच्चा ज्ञान तो वही है जिसमें जीवात्मा अपने-आपको जीवात्मा समझता रहे। अद्वैतवादियों का "अहं ब्रह्मास्मि" का घोष वास्तव में जीवात्मा को निरन्तर अपनी गरिमा स्मरण कराने की "ओवरडोज" है और कुछ नहीं।

ऊपर कहा गया है कि क्रोध की प्रतिपक्षी भावना धैर्य है। कहावत है कि "क्रोध अन्धा होता है।" इतना ही नहीं बल्कि वह बुद्धि की आँखों पर पट्टी बाँध देता है। धैर्य ही उस पट्टी का प्रतिकार है। वैदिक साहित्य हो या लौकिक साहित्य—बुद्धिमान के लिए 'धीर' शब्द का प्रयोग सर्वत्र पाया जाता है। यजुर्वेद के ३४वें अध्याय का दूसरा मन्त्र है—

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो
यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।

यहाँ 'मनीषी' और 'धीर' पर्यायवाची हैं। इसी प्रकार महाकवि भर्तृहरि के निम्नलिखित श्लोक में भी 'धीर' शब्द बुद्धिमान् के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

क्रोध के अंधड़ के आगे धैर्य जबर्दस्त ब्रेक है। नीचे की घाटी में दौड़ती हुई साइकल का सवार जिस प्रकार अपना सम्पूर्ण ध्यान ब्रेक पर केन्द्रित कर लेता है, उसी प्रकार क्रोध आने पर धैर्य को कसकर पकड़ लेना चाहिए। एक बार नियन्त्रण में

आया हुआ क्रोध अगले नियन्त्रण को सहज बना देता है, वह उससे अगले को, और वह उससे अगले को। सफलता अवश्यम्भावी है, क्योंकि जीवात्मा मन से बलवान् है और संकल्प जीवात्मा का ब्रह्मास्त्र है। पर इस सारी प्रक्रिया में ध्यान की दिशा 'क्रोध' की नहीं, 'धैर्य' की रहनी चाहिए। 'मैं क्रोध नहीं करूँगा' यह नकारात्मक चिंतन है; 'मैं हर हालत में शान्त रहूँगा' यह सकारात्मक। ज्वर चढ़ जाने पर बार-बार थर्मामीटर नहीं लगाया जाता। औषध और पथ्य का ही सदैव ध्यान रखना चाहिए। थर्मामीटर हाय-तौबः है, औषध शामक। बात यह छोटी-सी लगती है, पर दरअस्ल बहुत बड़ी बात है।

मन एक ग्रहणशील (Receptive) बालक की तरह है। एक बूढ़ा आदमी रेलवे के पास एक संडास में जाने लगा। बाहर बालक खेल रहे थे। बोला—"देखो बच्चो! मैं संडास में जा रहा हूँ, मुझे पत्थर न मारना।" अपने उपदेश की गलती उसे तब महसूस हुई जब भीतर जाते ही उस पर पत्थर बरसने लगे।

समस्त दैवी गुणों में धैर्य सबसे बड़ा गुण है। धर्म के दस लक्षणों में उसकी प्रतिष्ठा सबसे पहले की गयी है, अक्रोध की सबसे अन्त में। अक्रोध तो स्वयं सध जाता है, साधना धैर्य की करनी चाहिए। पूरा श्लोक इस प्रकार है—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

'धैर्य' एक व्यापक अर्थों वाला शब्द है। संकटकाल में अच्छे दिनों का इन्तजार भी धैर्य है। फलाफल में 'मन को सम रखना' भी धैर्य है। पीड़ा और अपमान में 'कोई बात नहीं' ऐसा कह सकना भी धैर्य है और क्रोध में 'शान्ति का आह्वान' भी धैर्य है।

मन्यु क्या है ?

क्रोध में सोच-विचार नहीं रहता पर 'मन्यु' शब्द तो बना ही 'मनन' से है। सोच-विचारकर किया गया क्रोध मन्यु है, जबकि सोच-विचार पर हावी हो जानेवाला आवेग क्रोध। ऊपर से सूरत-शक्ल दोनों की एक-सी लगती हैं पर मन्यु भीतर से ठंडा होता है। क्रोध में भीतर और बाहर दोनों जल उठते हैं। एक को हम 'सयाना गुस्सा' और दूसरे को 'अयाना गुस्सा' कहें तो शायद बात के हम काफी नजदीक होंगे।

क्रोध में (अहं) को पलीता लगता है, मन्यु में परार्थ-भावना प्रबल हो उठती है। माँ, बाप और गुरु के लिए मन्यु एक साधना है और क्रोध तो किसी भी साधना का शत्रु है।

संस्कृत का शब्द 'अमर्ष' मन्यु के अधिक निकट है यद्यपि मन्यु के 'मनन' का भाव-गांभीर्य उससे नहीं है। अंग्रेजी में भी राथ (Wrath) शब्द करीब-करीब मन्यु का अर्थ देता है। प्रियजन के अमंगल की आशंका जब असहनीय हो उठे तो मन्यु को जन्म देती है। उससे क्रोध नहीं, पर क्रोध का अभिनय अवश्य होता है। सफल अभिनय उसी बात का सम्भव है जिसकी अनुभूति वस्तु-जगत् में पहले हो चुकी हो।

बालब्रह्मचारी से दुष्यन्त के सफल अभिनय की आशा रखना व्यर्थ है। जिसे कभी क्रोध नहीं आया उसके लिए 'मन्यु' की साधना कुछ अर्थ नहीं रखती। क्रोध का ऊर्ध्वीकरण (Sublimation) ही मन्यु है। इस दृष्टि से क्रोध सर्वथा तिरस्करणीय न होकर कल्याणमार्ग का संकेतवाहक भी हो सकता है। उस संकेत का ग्रहण कर सकना ही पुरुषार्थ है। ऊर्ध्वीकृत 'काम' कलाओं को जन्म देता है, ऊर्ध्वीकृत 'क्रोध' मन्यु को, ऊर्ध्वीकृत 'लोभ' मितव्ययिता को, ऊर्ध्वीकृत 'मोह' कष्टसहन या तितिक्षा को और ऊर्ध्वीकृत 'अहंकार' आत्मविश्वास को जन्म देनेवाला है। मन के ये पाँचों विकार पहली नज़र में बेशक शत्रु हैं, पर समझबूझ के द्वारा इन्हें महा-उपयोगी मित्र भी बनाया जा सकता है। इसीलिए, इन्हें मनोविकार (Mental pollutions) न कहकर मानसिक आवेग (Mental Aberrations) पुकारना अधिक समीचीन होगा। विकार शब्द तो कदर्यता का द्योतक है, ये पाँचों आवेग नितान्त कदर्यता नहीं हैं।

मन्यु की साधना में एक बात का सदा ध्यान रखना चाहिए। क्रोध के अभिनय का नाम मन्यु है, पर होता यह है कि अभिनय करते-करते सचमुच का क्रोध भी पदार्पण करने लगता है। आँखों में उग्रता हो, वाणी भी परुष हो, तर्जनी भी सहयोग दे रही हो, पर भीतर-ही-भीतर मन मुस्करा रहा हो। दूसरे शब्दों में 'जल बिच अगिन' लगी हो। यह साधना कठिन अवश्य है, पर भरपूर पुरस्कार देनेवाली भी है। साधना से किसी भी गुण का धीरे-धीरे विकास होता है। क्रमिक विकास का नाम ही 'आधान' है। इसलिए वैदिक ऋषि की प्रार्थना 'धेहि' है, 'देहि' नहीं। मन्युदान में प्राप्त होनेवाली चीज नहीं, साधना से प्रकट होनेवाली सिद्धि है। इस सिद्धि के हस्तगत होते ही घरों और कक्षाओं की उच्छृङ्खलता अनायास उड़नछू हो जाती है। इतना ही क्यों, मनस्वी व्यक्ति के आगे संसार हाथ बाँधे खड़ा हो जाता है। क्रोध का विशेषण क्रोधी है और मन्यु का विशेषण मनस्वी।

मन्यु अपनी ऊपरी सतह पर तो क्रोध का अभिनय है, पर भीतरी सतह पर वह तीव्र हितचिन्ता और सच्चा प्यार है। भीतरी सतह अगर खोखली है तो केवल ऊपरी सतह को सान पर चढ़ाने से कोई फायदा नहीं। कीमती चाकू का फलक अपनी धार ही में तेज नहीं होता, उसका स्टील भी दामी होता है। ऐसा चाकू पेंसिल को छीलता नहीं, गढ़ता है। क्रोध छीलता है, मन्यु गढ़ता है। क्रोध रार मोल ले लेता है, मन्यु सावधान शल्यचिकित्सक है। क्रोध होली जलाता है, मन्यु यज्ञ रचता है। क्रोधाग्नि में ईंधन की चिरचिराहट है, मन्यु की अग्नि से उठता है मन्त्र-पूत सुरभित धूम।

दोनों में समानता है जरूर, पर दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है।

सुकरात की पत्नी बड़े क्रोधी स्वभाव की थी। उतने ही शान्त स्वभाव का सुकरात था। एक बार किसी बात पर पत्नी आपे से बाहर हो गयी। उसकी बकझक का अन्त नहीं था। उधर, सुकरात की शान्ति अटूट थी। खीझ से भरकर पत्नी ने पानी की गागर उठाई और सुकरात के सिर पर उँडेल दी।

सुकरात बोला—भागवान! सुना है, जो गरजते हैं सो बरसते नहीं। पर आज मालूम हुआ, यह जरूरी नहीं है।

फूल तोड़ना मना है

(महामहोपाध्याय आचार्य विश्वश्रवाः व्यास वेदाचार्य एम० ए०)

एक छोटा-सा फूलों का बाग था, उस पर एक बोर्ड लगा था कि "फूल तोड़ना मना है", "यहाँ कूड़ा डालना मना है"। जब मैं काश्मीर गया तो वहाँ श्रीनगर में एक बहुत बड़ा फूलों का बाग देखा। उसके चारों तरफ ऐसे ही बोर्ड लगे थे। दस या पन्द्रह बोर्ड थे जिन पर लिखा था "फूल तोड़ना मना है", "यहाँ कूड़ा डालना मना है"।

पुलिस के सुपुर्द

बाग के मालिक को चिन्ता है कि मैंने परिश्रम करके इतना सुन्दर फूलों का बाग बनाया। यदि इसके फूलों को कोई तोड़ डाले या यहाँ गन्दगी डाल जाये तो मेरी सारी पुष्पवाटिका बर्बाद हो जायेगी, अतः उसने एक और बोर्ड लगा दिया जिस पर लिखा था "यदि कोई फूल तोड़ेगा या गन्दगी डालेगा तो वह पुलिस के सुपुर्द किया जायेगा।"

वहाँ एक व्यक्ति आया, गन्दगी डाल गया, फूलों को तोड़ने लगा। बाग के मालिक ने उसको पुलिस के सुपुर्द कर दिया। उस व्यक्ति ने जवाब दिया कि मैं पढ़ा-लिखा नहीं हूँ, मुझे नहीं पता कि इन बोर्डों पर क्या लिखा है। पुलिस ने कहा कि अगर तू नहीं पढ़ा है तो किसी से पढ़वाकर सुन लेता कि इस पर क्या लिखा है। पुलिस ने उसे क्षमा नहीं किया।

प्रभु की सुन्दर सृष्टि

जब हम प्रभु की सृष्टि पर दृष्टि डालते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि परमात्मा को सौन्दर्य अति प्रिय है। संसार के प्राणियों को अपना सौन्दर्य-सृजन दिखाने के लिए उस जगत्कर्ता ने अपनी सृष्टि में दो महान् दीपक जला दिए हैं—दिन में सूर्य और रात्रि में चन्द्र। देखो! देखो संसार के प्राणियो! मेरा रचा सौन्दर्य! जब हम रात्रि में आकाश की ओर दृष्टि डालते हैं तो चन्द्र-नक्षत्र जड़े हुए रत्नों जैसे दीखते हैं।

१—नाना रंग के फूल और एक-एक फूल में कई-कई रंग।

२—नाना रंग के फल, कोई हरा, कोई लाल, कोई पीला, एक-एक फल में कई-कई रंग।

३—नाना रंग के पत्ते, लाल, पीले, गुलाबी, हरे, एक-एक पत्ते में कई-कई रंग।

४—पक्षियों के पर कई रंग के, मोर के पंखों में कितने रंग प्रभु ने दिखाए हैं।

५—कितने ही रंग की मछलियाँ, अजायबघर में जाकर देखो देखते ही रहोगे।

६—नाना रंग के पक्षी, एक-एक पक्षी में कई-कई रंग प्रभु ने दिखाये हैं।

७—जंगल के भयानक पशु भी कितने सुन्दर रचे हैं।

८—हिरनों की श्रेणी अपने नाना प्रकार के सींगों से सुशोभित है।

९—समुद्र की लहरें देखते ही बनती हैं, कभी समुद्रतट पर जाकर बैठ जाओ।

१०—पहाड़ों की उच्च अट्टालिकाओं पर जहाँ मनुष्य पहुँच नहीं पाता है वहाँ न जाने किसको भेजकर प्रभु ने सुन्दर फूल-पत्तों का बाग रचा है।

११—और किसकी कहें, हमारे बच्चे जो प्रभु ने पैदा किये कितने सुन्दर, कितने भोले, छलकपट-रहित। गधे का, सुअर का भी बच्चा कितना सुन्दर रचा। फिर संसार में आकर हमारे सम्पर्क में रहकर सब धीरे-धीरे बिगड़ते हैं। हम उनके बिगाड़ने-वाले हैं। हम उन्हें झूठ बोलना सिखाते हैं। जब कोई हमसे मिलने आता है, हम बच्चे से कहते हैं जाओ दरवाजे पर जाकर कह आओ बाबू जी नहीं हैं। बच्चा जाकर कह आता है कि बाबूजी कह रहे हैं बाबूजी नहीं हैं। धीरे-धीरे वह झूठ बोलना सीख जाता है, छलकपट जान जाता है। उसकी शक्ल भी बदलती जाती है; पर प्रभु ने इसे अत्यन्त सुन्दर रचा था।

प्रभु की सुन्दर पुष्प-वाटिका में बोर्ड

हे प्रभो! तूने इतनी सुन्दर सृष्टि रची। तुझे भी बोर्ड लगाने चाहिए थे कि "फूल तोड़ना मना है", "यहाँ कूड़ा-करकट डालना मना है"। पर तेरी सृष्टि तो विशाल है, अति महान् है। इसमें तो कई हजार बोर्ड लगाने पड़ेंगे।

चारों वेदों में जो लगभग बीस हजार मन्त्र हैं, ये बोर्ड ही तो हैं। हे प्राणी! ऐसा कर, ऐसा मत कर, नहीं तो मेरी पुष्प-वाटिका बिगड़ जाएगी! अगर तू वेद नहीं पढ़ सकता है तो किसी से सुन ले कि मैंने क्या लिखा है। तुझे सन्देशवाहक भेजा जिसने तुझको कहा कि—

"वेद का पढ़ना-पढ़ाना सुनना-सुनाना सबका परम धर्म है।" यदि तू न पढ़कर जानेगा और न सुनकर जानेगा और मेरी पुष्प-वाटिका को बिगाड़ेगा अपने दुष्कर्मों से तो मैं तुझे अपनी पुलिस के सुपुर्द कर दूंगा। प्रभु का दण्ड-विधान प्रभु का कर्म-फल-प्रदान पुलिस ही तो है और क्या। यदि तूने मेरी पुष्प-वाटिका को अपनी गन्दगी से अपवित्र किया तो तुझे सुअर बना दूंगा, जो डाला था उसे मुख से खा। जो तूने मूत्रादि के द्वारा मेरा रचा पवित्र जल गन्दा किया तो मछली-कछुआ बन जा, पानी साफ कर। मेरे रचे शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु को अपने प्रश्वासों से विषैला बनाया था, अब सांप-बिच्छू आदि बन और वायु को शुद्ध कर।

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। (अथर्व०)

अर्थात्, पृथिवी माता है और हम सब उसके सगे पुत्र हैं।

हे बुद्धि का दुरुपयोग करनेवाले मूर्ख मनुष्य! अपने गन्दे शरीर पर विचार करके इससे उपेक्षा कर और परमार्थ में लग।

यज्ञ की उत्पत्ति

सहयज्ञा प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ (गीता)

अर्थात्—प्रभु ने सृष्टि रचकर यज्ञ को साथ में लगा दिया और प्रजापति परमात्मा ने कहा कि इसके द्वारा सकल सिद्धियाँ प्राप्त करो। ये यज्ञ तुम्हारी कामनाओं को पूर्ण करनेवाले होंगे।

यह ठीक है कि मैंने ही तेरे शरीर को गन्दा बनाया पर यह सब-कुछ तेरे कल्याण के लिए किया है। तेरे शरीर के द्वारा जो मेरी सृष्टि गन्दी होती है, नित्य सायं-प्रातः यज्ञ करके मेरी सृष्टि को शुद्ध कर दिया कर। तुझे कोई दण्ड नहीं मिलेगा। विवशता से किये हुए कर्म का प्रायश्चित्त मेरी सृष्टि में है। यज्ञ करके तू निष्पाप रहेगा। इस यज्ञ के द्वारा तुझे मेरी सृष्टि-रचना का ज्ञान भी हो जावेगा। यज्ञ में डाली आहुतियाँ सृष्टि को शुद्ध करके प्रायश्चित्त करा देती हैं और यज्ञ की पद्धति का ज्ञान सृष्टि-रचना को समझाता है। इस यज्ञ से दुहरा लाभ है।

पर हे प्रभो! मेरी समझ में यह नहीं आ सकता कि मेरे संसार में लाखों की संख्या नर-नारियों की है और सब ही संसार को गन्दा कर रहे हैं। एक मेरे यज्ञ करने से क्या तेरी सृष्टि शुद्ध हो जायेगी?

हे महाबुद्धि मनुष्य सुन! एक उदाहरण देकर तुझे समझाता हूँ। दस महिलाएँ अपने-अपने गोद के बच्चे को लिए किसी बहन के यहाँ किसी पर्व पर गईं। उसके आँगन में गाना-बजाना हो रहा है। पर वहाँ उन सब अबोध बच्चों ने उस बहन के आँगन को अपने-अपने मल-मूत्र से गन्दा कर दिया। उन दस महिलाओं में से नौ महिलाएँ आँगन गन्दा छोड़कर चली गईं। पर एक महिला ने अपने बच्चे की गन्दगी उठाकर साफ की और तब गई। उस बहन का आँगन तो गन्दा ही रहा। एक के साफ करने से उसका आँगन साफ नहीं हुआ। पर घर की मालकिन, वह बहन यह तो अवश्य कहेगी कि एक महिला बहुत सभ्य थी। जब कभी यह दुबारा आवेगी तो उसका स्वागत करेगी, और वे नौ महिलाएँ जब कभी दुबारा आवेंगी तो उन्हें वह बहन अपने घर में घुसने भी नहीं देगी। घर गन्दा रहने पर भी वह बहन उस एक महिला से अत्यन्त प्रसन्न होगी। इसी प्रकार सब सृष्टि गन्दी करते रहें पर तू अपनी फैलाई गन्दगी की शुद्धि कर दिया कर, मैं तुझसे प्रसन्न रहूँगा, और बार-बार मनुष्य-योनि ही दूँगा। यज्ञ न करनेवाले को दुबारा मनुष्य-योनि में घुसने नहीं दूँगा।

ठीक, अब बात समझ में आई! मैं तो यज्ञ का लाभ हवा शुद्ध करना ही समझता था। क्या महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने पञ्चमहायज्ञविधि में इसीलिए लिखा है कि—

प्रभु की प्रसन्नता के लिए मैं यज्ञ करता हूँ (पञ्चमहायज्ञविधि)

जिससे प्रभु प्रसन्न हो जावें उसे क्या नहीं मिल जाता! ठीक इसीलिए प्राचीन ऋषियों ने भी कहा था कि—

"यमेवैष वृणुते तेनैव लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूं स्वाम्" (कठोपनिषत्)
अर्थात्, जिसको भगवान् स्वीकार करता है वही परमात्मा को प्राप्त करता है।

यज्ञ के अन्त में वामदेव्य गान

यज्ञ करने के बाद महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने नीचे लिखा वामदेव्यगान बोलने को लिखा है; वे मन्त्र ये हैं—

कया नश्चित्र आभुवदूती सदा वृध सखाः।
कया शचिष्ठया वृता ॥

भावार्थ—हे प्रभो! मैं तुझे कैसे प्रसन्न करूँ? तुम या तो उससे प्रसन्न होते हो जो अपनी बहुत बड़ी सम्पत्ति परोपकार के कार्य में लगा देता है या उससे प्रसन्न होते हो जो आपकी वेदवाणी का रक्षक विद्वान् है। पर मुझमें वे दोनों गुण नहीं अतः कैसे तुझे रिझाऊँ?

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु ॥

भावार्थ—परन्तु मैं जानता हूँ कि सबसे अधिक प्रसन्न आप उससे होते हो जो आपकी सुन्दर सृष्टि को सुन्दर और हरा-भरा रखने के लिए यज्ञों को करता है। वह मैंने आपकी प्रसन्नता के लिये कर लिया।

अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम्।
शन्तते भवास्यूतये ॥

भावार्थ—मैं अपना यज्ञ करानेवाले पुरोहितों का भार अपने ऊपर लेता हूँ जिससे यह यज्ञ-प्रक्रिया जीवित रहे। उस यज्ञ-विद्या को जाननेवाले विद्वानों की वंश-परम्परा सुरक्षित रहे और प्रभु मेरी रक्षा का भार आप अपने ऊपर ले ले।

संस्कारविधि में कितने सुन्दर मन्त्र यज्ञ के अन्त में बोलने को महर्षि ने लिखे हैं! पर यह यज्ञ करनेवाला आर्यसमाज सारी यज्ञ-प्रक्रिया करके अन्त में द्यौः शान्ति बोल देता है कि सब शान्त, सब समाप्त। यज्ञ के अन्त में द्यौः शान्ति बोलना महर्षि ने कहीं नहीं लिखा है। महावामदेव्यगान का विधान संस्कारविधि में है जिसका भावार्थ ही यहाँ दिया है। हमारे यज्ञमहाभाष्यम् में इन मन्त्रों तथा अन्य समस्त मन्त्रों के पद-पदार्थ प्रत्येक शब्द को देखो तथा सम्पूर्ण यज्ञ की बड़ी पद्धति पर मीमांसा पढ़ो।

१. आओ प्रभु की सुन्दर वाटिका इस सृष्टि को सुगन्धित बनावें।
२. उसकी प्रसन्नता प्राप्त करें।
३. उसकी प्रसन्नता से उसके दरबार का सब-कुछ हमें मिल जावेगा।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

के प्रकाशन

नये प्रकाशन

षड्दर्शन — स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ३५.००
सत्यार्थ सरस्वती — पं० मदनमोहन विद्यासागर २५.००
वेदभगवान बोले — प्रो० विष्णु दयाल (मोरीशस) ६.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (सरल अध्ययन) — प्रो० विश्वनाथ विद्यालंकार २.००

एक विशिष्ट प्रकाशन

पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर) सजिल्द २५.००
सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपी सुनहरी जिल्द, उपहार में देने योग्य राज संस्करण) १०१.००
दयानन्द चित्रावली — रामगोपाल विद्यालंकार ८.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें

दुनिया में रहना किस तरह ३.५०
तत्त्वज्ञान ७.००
मानव और मानवता १०.००
प्रभुमिलन की राह ८.००
घोर घने जंगल में ८.००
प्रभुभक्ति ३.००
महामन्त्र ३.००
आनन्द गायत्री-कथा २.००
उपनिषदों का सन्देश ६.००
एक ही रास्ता ३.००
मानव-जीवन-गाथा ४.००
शंकर और दयानन्द २.००
सुखी गृहस्थ २.००
सत्यनारायणव्रत-कथा २.००
प्रभु-दर्शन ४.००
दो रास्ते ४.००
यह धन किसका है ? ६.००
भक्त और भगवान् ३.००
बोध कथाएँ ४.००
Anand Gayatri Discourses ३.००

श्री रणवीर लिखित

श्री महात्मा आनन्द स्वामी (उर्दू) १०.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे संकड़ा १५.००
आर्य सत्संग गुटका (बड़ा) १०० पैसे ,, ७५.००
वैदिक यज्ञ प्रकाश ७५ पैसे ,, ५५.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका २.५०
सन्ध्या-हवन-दर्पण (उर्दू) २.००

चित्र - चित्र - चित्र

महर्षि दयानन्द रंगीन २०×३० २.००
महर्षि दयानन्द एक रंग १८×२२ १.००
गुरु विरजानन्द एक रंग १८×२२ १.००
स्वामी श्रद्धानन्द ,, ,, १.००
स्वामी दर्शनानन्द ,, ,, १.००
मं० हंसराज ,, ,, १.००
पं० लेखराम ,, ,, १.००

पं० बिहारीलाल शास्त्री

ऋग्वेद के दशम मण्डल के रहस्य १.५०

डा० लक्ष्मीनारायण शर्मा

हृदयरोग कारण निवारण ८.००

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ०.५०
सु-राज्य की रूपरेखा ०.५०

स्वामी दर्शनानन्द

कथा-पच्चीसी २.५०
वालशिक्षा-धर्मशिक्षा ०.६०

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००
आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५
व्यवहारभानु १.००

स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत

वाल्मीकि रामायण ४०.००
शिवसंकल्प ४.००
ब्रह्मचर्य गौरव ३.००
वेदसौरभ ४.००
वेदसौरभ (संक्षिप्त) १.००
घरेलू ओषधियाँ ३.५०
वैदिक विवाहपद्धति २.५०
विद्यार्थियों की दिनचर्या ३.००
वैदिक उदात्त भावनाएँ ३.००
ऋग्वेदशतक २.००
यजुर्वेदशतक २.००
सामवेदशतक २.००
अथर्ववेदशतक २.००
कुछ करो कुछ बनो ३.००
चतुर्वेद शतकम् ८.००
मर्यादा पुरुषोत्तम राम ३.००
दिव्य दयानन्द ३.००
सत्यनारायणव्रतकथा ०.५०
सामवेद सूक्ति-सुधा ३.००
यजुर्वेद-सूक्ति-सुधा ३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा २०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन ७.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश (जीवन-चरित्र) २५.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

रामचन्द्र देहलवी लेखावली ७.००
वेद व्यावहारिक है ०.७५
शंका-समाधान ०.७५
पूजा क्या क्यों कैसे ! ०.७५
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई ०.७५
वेद का इस्लाम पर प्रभाव ०.७५

भजन पुस्तकें

गीत भण्डार नन्दलाल वानप्रस्थी ४.००
गीत श्रद्धांजलि १.५०

पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार

वैदिक शिष्टाचार ०.५०

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय १.५०

स्वामी मंगलानन्द पुरी

श्रीमद्भगवद्गीता १.५०

पं० इन्द्रविद्यावाचस्पति

महर्षि दयानन्द ४.००

श्री रामशरण वासिष्ठ

पशुहिंसा विषयक पाश्चात्य
विद्वानों की समालोचना १.००
वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान १.५०
वेदार्थ विज्ञान १.००
वेद और आत्मा २.००

पं० नरेन्द्र

हैदराबाद के आर्यों की साधना
व संघर्ष ४.००

संकलन

महर्षि के सपनों का आर्यसमाज ५.००

प्रशान्तकुमार वेदालंकार

महर्षि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित
राज्य-व्यवस्था ८.००

आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति

वेदोद्यान के चुने हुए फूल १५.००

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला ३.००

स्वामी वेदानन्द सरस्वती

स्वाध्यायसंग्रह ४.००

पं० राजनाथ पाण्डेय

वेद का राष्ट्रगान (पृथिवी सूक्त) १.००

सुरेशचन्द्र वेदालंकार एम० ए०

यज्ञ की महिमा १.५०

बालोपयोगी

त्रिलोकचन्द विशारद

महर्षि दयानन्द १.५०
स्वामी श्रद्धानन्द १.००
गुरु विरजानन्द १.००
पं० लेखराम १.००
पं० गुरुदत्त १.००
स्वामी दर्शनानन्द १.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा	प्रथम भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	द्वितीय भाग	०.६०
नैतिक शिक्षा	तृतीय भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	चतुर्थ भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	पंचम भाग	१.००
नैतिक शिक्षा	षष्ठ भाग	१.२५
नैतिक शिक्षा	सप्तम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	अष्टम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	नवम भाग	१.५०
नैतिक शिक्षा	दशम भाग	१.५०

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते ?		२.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ?		२.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ?		२.००
जो चाहें सो कैसे पायें ?		२.००
अपना खर्च कैसे घटायें ?		२.००
अवसर को पहचानो !		२.००
अपने आपको पहचानिए !		२.००
आप सफल कैसे हों ?		२.००
उन्नति कैसे करें ?		२.००
धनकुबेर कैसे बनें ?		२.००
अमर भारती	सीताराम सहगल	३.००
महाभारत	मनहर चौहान	३.००
रामायण		३.००

महिला-उपयोगी

सुबोध मेक-अप		४.००

विविध पुस्तकें

सुबोध टेलिविजन गाइड	हयात	४.००
रेडियो ट्रांजिस्टर मैकेनिक	,,	४.००
सुबोध ट्रांजिस्टर गाइड	,,	४.००
सुबोध ट्रांजिस्टर सर्विसिंग	,,	४.००
अंग्रेजी बोलना कैसे सीखें	अनिल कुमार	४.००
स्वास्थ्य और योगासन	भगवानदेव	४.००
घरेलू इलाज	डा० समरसेन	४.००
मोटापा कैसे घटायें		४.००
जूडो कुंगफू कराटे		४.००
प्राकृतिक चिकित्सा		४.००

पं० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

भूतपूर्व संसद्-सदस्य तथा उपकुलपति—गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय द्वारा रचित एक अनूठी कृति—

वैदिक विचारधारा का वैज्ञानिक आधार

मूल्य २०.०० रु० मात्र

म० नारायण स्वामी

प्राणायामविधि		१.००
कर्त्तव्य-दर्पण		४.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली		८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय	,,	१.००

पहली बार पूरे छह दर्शन एक साथ

षड्दर्शनम्

मरल-सुबोध संक्षिप्त हिन्दी-भाष्य

मूल्य : मात्र पैन्तीस रुपये

गोविन्दराम हासानन्द द्वारा प्रसारित

अन्य प्रकाशन

वैद्य गुरुदत्त

वेद प्रवेशिका	६.००
सांख्य दर्शन	४०.००
विश्वेदेवा:	६.००
अद्वैत मीमांसा	६.००
इतिहास की परम्परा	१२.००
भारत गांधी-नेहरू की छाया में	१८.००
भारत में राष्ट्र	४.००
ब्रह्मसूत्र I	३०.००
,, II	२४.००
प्रजातन्त्र अथवा वर्णाश्रम व्यवस्था	५.००
धर्म तथा समाजवाद	१४.००
द्वितीय विश्वयुद्ध	३.००
महर्षि दयानन्द	३.००
विज्ञान और विज्ञान	८.००
श्रीमद्भगवतगीता	२४.००
दो लहरों की टक्कर (दो खण्ड)	६६.००

बलराज मधोक

भारत में लोकतन्त्र	१२.००
भारत की सुरक्षा	६.००
भारत की विदेशनीति	६.००
हिन्दू राष्ट्र	२.००
भारत और संसार	८.००
डा० श्यामाप्रसाद मुखर्जी	१०.००
पाकिस्तान का आदि और अन्त	५.००

स्वामी वेदानन्द

स्वाध्याय सन्दोह	२०.००
स्वाध्याय सन्दीप	१०.००
स्वाध्याय संग्रह	४.००
सावित्री प्रकाश [गायत्री]	२.००
सत्यार्थ प्रकाश का प्रभाव	२.००
सन्ध्यालोक	२.५०
ब्रह्मोद्योपनिषत्	२.५०
जीवन की भूलें	१.००

पं० उदयवीर शास्त्री

सांख्यदर्शन का इतिहास	५०.००
वेदान्तदर्शन का इतिहास	३०.००
सांख्य सिद्धान्त	२५.००
सांख्य दर्शन	२०.००
वेदान्त दर्शन	३५.००
वैशेषिक दर्शन	२५.००
न्याय दर्शन	३०.००
योग दर्शन	३०.००

ब्र० वेब्रदत मीमांसक

ज्योतिष विवेक	१६.००

नाथूराम गुप्त

वेद और जीवन	१२.००

ऋग्वेद भाषा भाष्य ५ भाग
स्वामी दयानन्द १५०.००
अथर्ववेद ,, ३
क्षेमकरणदास त्रिवेदी ६०.००
यजुर्वेद ,, १ स्वामी दयानन्द ३०.००
सायवेद ,, १ स्वामी तुलसीराम ३०.००
चारों वेद एक साथ मंगाने पर
रियायती मूल्य २२५.००

महर्षि दयानन्द कृत

महर्षि ने ऋग्वेद के दस मण्डल में से साढ़े छ: मण्डलों का भाष्य ६ जिल्दों में किया है।

ऋग्वेद भाष्यम्	प्रथम	खण्ड	१८.००
,, ,,	द्वितीय	,,	१५.५०
,, ,,	तृतीय	,,	१४.००
,, ,,	चतुर्थ	,,	१२.००
,, ,,	पंचम	,,	१४.००
,, ,,	षष्ठ	,,	१०.००
,, ,,	सप्तम	,,	१७.००
,, ,,	अष्टम	,,	१८.००
,, ,,	नवम	,,	१२.००
,, ,,	दसवां मण्डल भाग I		३०.००

इन सभी भागों में संस्कृत भाष्य एवं हिन्दी भाष्य दोनों हैं।

केवल हिन्दी भाषा भाष्य भी पृथक् उपलब्ध हैं।

ऋग्वेद भाषा भाष्य प्रथम	८.००
,, ,, ,, द्वितीय	७.००
,, ,, ,, तृतीय	७.००

योग दर्शन पं० तुलसीराम स्वामी	३.००
वैशेषिक दर्शन ,,	३.००
न्याय दर्शन ,,	४.००
वेदान्त दर्शन ,,	३.००
सांख्य दर्शन ,,	३.५०
श्रीमद्भगवद्गीता स्वामी सम्पूर्णानन्द	५.००
श्रीमद्भगवद्गीता भाई परमानन्द	१२.००

वैद्य नारायण दत्त सिद्धान्तालंकार

महर्षि दयानन्द जीवन और दर्शन	६.००
शंकराचार्य जीवन और दर्शन	४.००
ऋग्वेद भाषा भाष्य चतुर्थ	६.००
,, ,, ,, पंचम	७.००
,, ,, ,, षष्ठ	७.५०
,, ,, ,, सप्तम	८.००
,, ,, ,, अष्टम	८.००
,, ,, ,, नवम	६.००
,, ,, दसवां मण्डल I भाग	१५.००
यजुर्वेद भाष्यम् प्रथम	१६.००
,, ,, द्वितीय	२४.००
,, ,, तृतीय	१६.००
,, ,, चतुर्थ	१४.००
यजुर्वेद भाषा भाष्य २ खण्डों में महर्षि दयानन्द I	१५.००
भाग II	२५.००

पं० जयदेव विद्यालंकार कृत

चारों वेद भाष्य

ऋग्वेद ७ खण्डों में	११६.००
अथर्ववेद ४ ,,	६४.००
यजुर्वेद २ ,,	२४.००
सामवेद १ ,,	२०.००

दर्शन ग्रन्थ

आचार्य श्रीराम कृत

योग	५.७५
वैशेषिक	५.७५
सांख्य	५.७५
न्याय	५.७५
वेदान्त	५.७५
मीमांसा	७.००
वेद महाविज्ञान	१२.००

स्वामी दर्शनानन्द

उपनिषद् प्रकाश	१२.००
न्याय दर्शन	७.००
सांख्य दर्शन	६.००
वैशेषिक दर्शन	८.००
वेदान्त	१२.००

गंगाप्रसाद उपाध्याय कृत

जीवात्मा	७.००
शंकर भाष्यालोचन	७.००
जीवन-चक्र	७.००
सन्ध्या क्या क्यों कैसे ?	३.००
पूजा क्या क्यों कैसे ?	३.००
भारतीय पतन और उत्थान की कहानी	२.५०
आर्य स्मृति	३.००
भगवत् कथा	१.५०
सनातन धर्म	१.००
धर्म-सुधासार	०.९०
राष्ट्रनिर्माता स्वामी दयानन्द	१.००
Philosophy of Dayanand	१५.००
Vedic Culture	५.००

विश्वप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी०

उपनयन वेदारम्भ संस्कार	०.६०
मृतक संस्कार	०.६०
चूड़ाकर्म	०.६०
अन्नप्राशन	०.६०
नामकरण	०.७०

म० प्रभु आश्रित जी महाराज कृत

गृहस्थ सुधार	४.००
सेवा धर्म	१.७०
गायत्री रहस्य (हिन्दी)	५.००
प्रभु का स्वरूप	२.७०
डरो वह बड़ा जबरदस्त है	१.००
पृथिवी का स्वर्ग	२.७०
यज्ञ रहस्य	४.५०
मन्त्रयोग (चार भाग)	८.५०
गृहस्थाश्रम प्रवेशिका	१.७०

स्वामी ब्रह्ममुनि

बृहदारण्यक कथामाला	३.००
स्वाध्यायसंग्रह स्वामी वेदानन्द	४.००

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

गोरक्षा परम कर्त्तव्य	०.५०

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, से प्रसारित किया।

९26 (VIII)

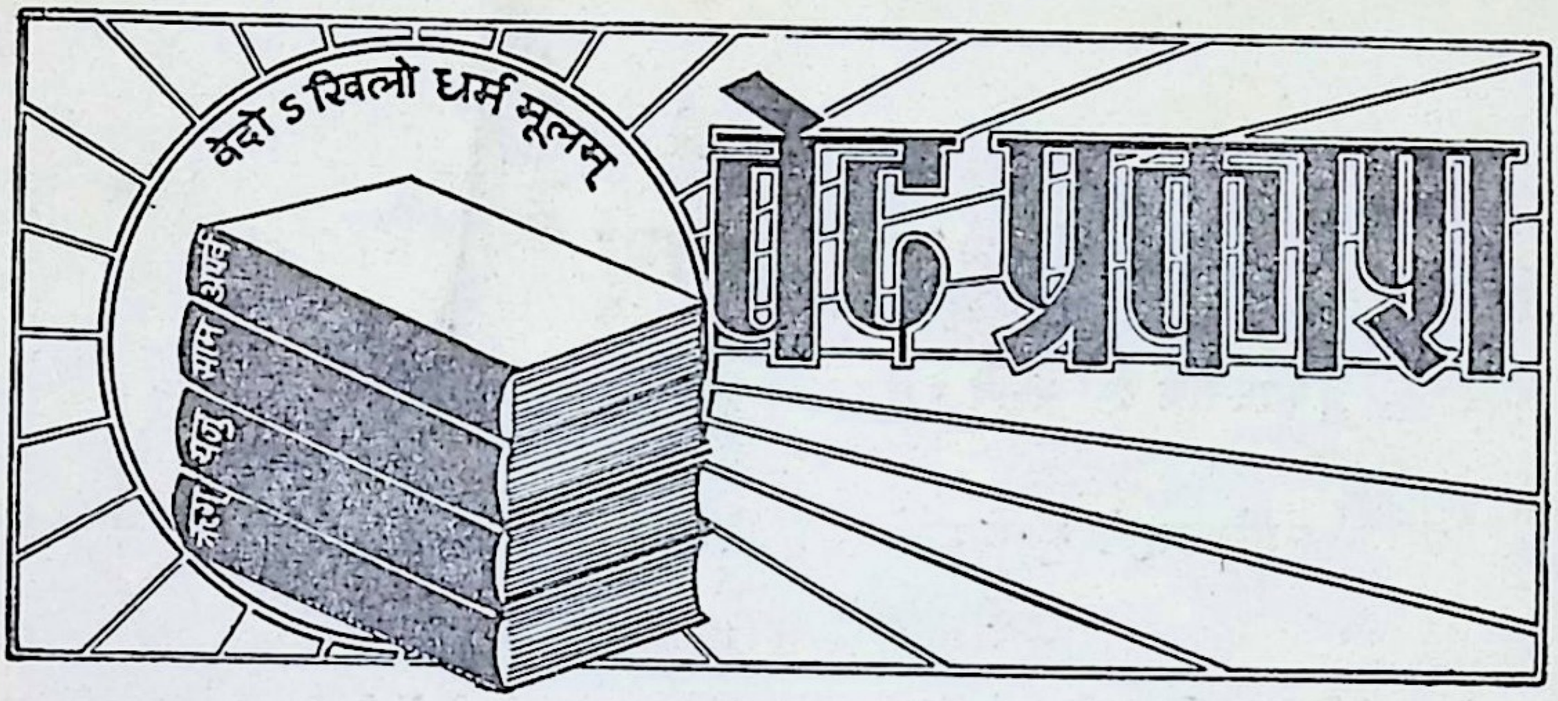

उद्योगी सुख पाते हैं

इच्छन्ति देवा सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति ।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः ॥—अथर्व० २०।१८।३

शब्दार्थ—(देवाः) विद्वान् लोग (सुन्वन्तम्) उद्योगी को (इच्छन्ति) चाहते हैं, प्रेम करते हैं। वे (स्वप्नाय) सोनेवाले आलसी से (न स्पृहयन्ति) प्रेम नहीं करते। जो (अतन्द्राः) आलस्यरहित, सदा जागरूक और सावधान होते हैं, वे (प्रमादम्) प्रकृष्ट=अत्यधिक आनन्द को, ऐश्वर्य को, सुख को (यन्ति) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—प्रसिद्ध लोकोक्ति है—'मनुष्य का काम प्यारा है चाम=चमड़ा नहीं।' देव=विद्वान् भी कर्मशील से ही प्रेम करते हैं। आलसी प्रमादी को कोई नहीं चाहता। जो कर्मशील हैं वे ही संसार में नाना प्रकार का ऐश्वर्य पाते हैं, वे ही सुखी होते हैं अतः उद्योगी बनो।

—जगदीश्वरानन्द

मनुष्य क्या है, किसे कहते हैं अपने तथा अन्यों के प्रति क्या कर्त्तव्य हैं इस पर आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने मानवता से ओत-प्रोत किसी एक मत, एक देश, एक जाति के लिए नहीं, अपितु मानव मात्र के लिये ऐसे आदेश दिये हैं जो शायद ही किसी अन्य मतवादी ने दिये हों।

महर्षि ने हजारों स्थानों पर मनुष्यता का वर्णन किया है उनमें से कुछेक का संग्रह आपकी सेवा में प्रस्तुत है।

(अन्दर पढ़िये)

षड्दर्शनम्

[भारतीय छह दर्शन मूल एवं अनुवाद सहित एक ही जिल्द में]

अनुवादक

आर्यजगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में रत

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

वैदिक साहित्य में दर्शनों का विशेष महत्त्व है। वे वेदों के उपाङ्ग हैं। वेद में ईश्वर, जीव, प्रकृति, पुनर्जन्म, मोक्ष, योग, कर्मसिद्धान्त, यज्ञ आदि का बीजरूप में वर्णन है, दर्शनों में उन्हीं विचार-बिन्दुओं पर विस्तृत विवेचन है।

० यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में क्या है ?

० यदि आप जानना चाहते हैं कि दर्शनों में विरोध नहीं है।

० यदि आप जानना चाहते हैं कि यज्ञों का प्रकार क्या है ?

० यदि आप जानना चाहते हैं कि भारतीय दर्शनों की विशेषताएँ क्या हैं तो इस 'षड्दर्शनम्' को पढ़ जाइए। **संसार के इतिहास में प्रथम बार छहों दर्शन अनुवाद सहित एक जिल्द में छपे हैं।** उत्तम कागज, दिव्य मुद्रण, आकर्षक गैट-अप, अन्त में सूत्र-सूची, आरम्भ में विस्तृत भूमिका। मूल्य : ३५ रुपये

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं—

लेखक ने छहों दर्शनों को सरल हिन्दी में लिखकर अध्ययनशील जिज्ञासु जनता का बड़ा उपकार किया है।

आचार्य शिवपूजनसिंह जी कुशवाहा लिखते हैं—

आपने छह दर्शनों का आर्यभाषा में अनुवाद करके आर्यजगत् पर एक महान् उपकार किया है। 'मीमांसा दर्शन' पर तो पूर्ण भाष्य किसी भी आर्य विद्वान् का नहीं था, आपने इस कमी को भी पूरा कर दिया। पुस्तक की छपाई, सफाई आकर्षक है।

श्री भवानीलाल जी भारतीय सम्पादक परोपकारी लिखते हैं—

एक ही जिल्द में दर्शन के मूल वाङ्मय को प्रस्तुत करना सराहनीय है।

आचार्य रमेशचन्द जी एम० ए० सम्पादक आर्यमित्र लिखते हैं—

गम्भीर चिन्तनशील विद्वान् और साधारण प्रारम्भिक विद्यार्थी दोनों अपनी योग्यता और मापदण्ड के अनुसार व्याख्याकार के प्रति आभारी रहेंगे।

पं० आनन्दप्रिय जी लिखते हैं—

स्वाध्यायशील व्यक्तियों के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी एवं मूल्यवान् सिद्ध होगा।

◈ ओ३म् ◈

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २६, अंक ३] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [अक्टूबर, १९७९

सम्पा० : **विजयकुमार** आ० सम्पादक : **स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती**

महर्षि दयानन्द के मत में

मनुष्य

[संकलनकर्त्ता–स्व० लाला चतुरसेन गुप्त]

मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने-कराने के यिए है न कि वाद-विवाद विरोध करने-कराने के लिए।

मनुष्य लोग सत्याऽसत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग करने-कराने में समर्थ होवें।

जो मनुष्य पृथिवी से लेके सूर्य-पर्यन्त पदार्थों को जानते हैं वे धनवान् होकर सबको सुखी करें।

मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे। अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व-सामर्थ्य से धर्मात्माओं कि चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों—उनकी रक्षा, उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करें। इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवे।

जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तरों का विरुद्ध वाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या-द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना-कराना चाहें तो हमारे लिए यह बात असाध्य नहीं है।

जैसे पशु वलवान् होकर निर्बलों को दु:ख देते और मार भी डालते हैं। जव मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभावयुक्त नहीं, किन्तु पशुवत् हैं। और जो वलवान् होकर निर्वलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानि मात्र करता रहता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।

मनुष्य की यही महिमा है जो श्रेष्ठों की पालना और दुष्टों की हिंसा करना।

जो मनुष्य पशुओं की संख्या और बल को वढ़ाते हैं वे आप भी बलवान् होते और जो पशुओं से उत्पन्न हुए दूध और उससे उत्पन्न हुए घी का सेवन करते वे कोमल स्वभाववाले होते हैं और जो खेती आदि करने के लिए इन वैलों को युक्त करते हैं वे धन-धान्ययुक्त होते हैं।

मनुष्यों को चाहिए कि सदा इस संसार में यथार्थ वक्ता पुरुषों की वृद्धि की इच्छा करें और सत्य की कामना करें जिससे सम्पूर्ण इच्छा पूर्ण होवे।

माता, पिता, आचार्य और अतिथि की सेवा करना देवपूजा कहाती है। और जिस-जिस कर्म से जगत् का उपकार हो वह-वह कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य कर्म है।

मनुष्य जव सत्य बोलते हैं तव उनके मुख की आकृति मलीन नहीं होती और जव झूठ वोलते हैं तव उनका मुख मलीन हो जाता है।

जो मनुष्य विद्वानों का अनुकरण करें तो वे महात्मा होवें।

सब मनुष्यों को इस प्रकार सदा इच्छा करनी चाहिए कि किसी के सुख की हानि कभी न करनी चाहिए, मित्रता को भंग न करना चाहिए, सव सज्जनों की सदा रक्षा करनी चाहिए। निरन्तर सज्जनों के लिए सुख माँगना चाहिए।

प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि किसी सज्जन वा किसी पदार्थ का नाश और नशा करनेवाले द्रव्य का सेवन सदा ही न करें और सदा विद्वानों और माता-पिता की शिक्षा को ग्रहण करे।

जैसे मैं अपना वा दूसरे मतमतान्तरों का दोष पक्षपात रहित होकर प्रकाशित करता हूँ इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट, मेल होकर आनन्द में एकमत होके सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो।

जो मनुष्य पाचक के समान पवित्र, जल के समान कोमल, सिंह के समान पराक्रम करनेवाले, वायु के समान वलिष्ठ होकर अन्याय की निवृत्ति करें वे समस्त सुख को प्राप्त हों।

मनुष्य जैसे अपने लिए गुण, कर्म, स्वभाव और सुख को चाहे वैसे औरों के लिए भी चाहें। जैसे अपनी उन्नति की चाहना करें, वैसे परमेश्वर और विद्वानों के निकट से अन्यों की उन्नति की प्रार्थना करें। केवल प्रार्थना ही न करें किन्तु सत्य आचरण भी करें।

जब-जब विद्वानों के निकट जावें तब-तब सबके कल्याण के लिए प्रश्न और उत्तर किया करें।

मनुष्यों को चाहिए कि परस्पर एक-दूसरे से प्रीति के साथ और दुष्टों में अप्रीति के साथ वर्त्त कर व्यापक ईश्वर की भक्ति में प्रयत्न करे।

मनुष्यों को चाहिए कि अन्याय से बिना आज्ञा पर पदार्थ के ग्रहण की इच्छा कभी न करे किन्तु धर्मयुक्त व्यवहार से यथाशक्ति धन संचय करें।

सब मनुष्यों को चाहिए कि वे जैसे अपने लिए उत्तम पदार्थ चाहते हैं वैसे ही अन्य जनों के लिए भी इच्छा करें।

जो मनुष्य किसी की उन्नति के नाश की इच्छा नहीं करते, किन्तु सब के ऐश्वर्य को बढ़वाते हैं वे सूर्य के समान उपकारवाले होते हैं।

मनुष्यों को चाहिए कि सत्कार के योग्य का सत्कार और निरादर के योग्य का निरादर करके विद्या और धर्म को निरन्तर बढ़ाया करें।

जो मनुष्य परोपकार करनेवाले विद्वानों से द्रोह करता है वह सदा दुःखी और जो प्रीति करता है वह सुखी होता है।

परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करें कि सबसे परस्पर मेल और एक-दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों।

सर्व शक्तिमान् परमात्मा एक मत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे।

मनुष्य को चाहिए कि जो इस जगत् में श्रेष्ठ विद्वान् हैं उनके प्रति सदैव प्रिय वचन कहें और अनुकूल आचरण करें और उनके गुण, कर्म, स्वभावों को अपने में ग्रहण करें।

जब सब मनुष्य विरोध को छोड़कर सब के उपकार करने में प्रयत्न करते हैं तब शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, जिससे सब मनुष्यों को ईश्वर की कृपा से निरन्तर उत्तम आनन्द प्राप्त होते हैं।

जब तीन उत्तम शिक्षक—एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।

विद्या ही मनुष्यों को सुख देनेवाली है जिसने विद्या धन न पाया वह भीतर से सदा दरिद्र-सा वर्त्तमान रहता है।

सब सज्जनों को सबके प्रति ऐसा कहना चाहिए कि जो हमारे पदार्थ हैं वे आपके सुख के लिए हों जैसे तुम लोग हम लोगों को आनन्दित करो वैसे हम लोग तुमको आनन्दित करें।

जो मनुष्य नीचों का संग छोड़ के उत्तम पुरुषों की संगति करते हैं वे सब व्यवहारों की सिद्धि से ऐश्वर्यवाले होते हैं। जो अनालसी होके सिद्धि के लिए यत्न करते वे सुखी और जो आलसी होते वे दरिद्रता को प्राप्त होते हैं।

मनुष्यों को चाहिए कि सदा ही पुरुषार्थ से धन, अन्न, राज्य, प्रतिष्ठा और विद्या आदि उत्तम गुणों की उन्नति होती है इस प्रकार निरन्तर इच्छा करनी चाहिए।

मनुष्यों को चाहिए कि श्रेष्ठों के सत्कार, भूख से पीड़ितों को अन्न देने, चक्रवर्त्ति राज्य की रक्षा, जाने-आनेवालों को डाकू आदि से बचाने, यज्ञोपवीत के धारण करने और शरीरादि की पुष्टि के साथ प्रसन्न रहें।

जिस कुल के बीच बड़े महात्माजन उत्पन्न होते हैं वहाँ सुख बढ़ता है और जहाँ शरीर और आत्मा से बलयुक्त मनुष्य हों वहाँ शत्रुजन पीड़ा नहीं कर सकते हैं। और बलवान् पुरुष झूठ, अधर्मयुक्त कामों को उत्साह नहीं करते हैं।

हे मनुष्यो ! जिस मार्ग से यथार्थ वक्ता पुरुष जावे उसी मार्ग से आप लोग भी चलो। जो बड़ी वृद्धि भी होवें तो भी माता का अपमान किसी को न करना चाहिए।

सब मनुष्यों को चाहिए कि यथार्थवक्ता विद्वानों से मित्रता सदा ही करें जिससे वे उत्तम उपदेश से सबको सृष्टि-विद्या के जाननेवाले धर्मात्मा करके बहुत ही उत्तम विज्ञान को देकर सुखी करें।

वे ही मनुष्य असुर, दैत्य, राक्षस, दुष्ट तथा पिशाच आदि हैं जो आत्मा में और जानते, वाणी से और बोलते, और करते कुछ और ही हैं वे कभी अविद्यारूप दुःखसागर से पार हो आनन्द को प्राप्त नहीं हो सकते।

हे मनुष्यो ! जैसे जल से प्राण-धारण, अन्न आदि की उत्पत्ति और सुन्दर और दीर्घ अवस्था होती है वैसे ही सत्य आचरण से सम्पूर्ण ऐश्वर्य, विद्या और बहुत कालपर्यन्त जीवन होता है इससे निरन्तर सत्य ही का आचरण करो।

हे मनुष्यो ! तुमको चाहिए कि सदैव विद्वानों के अनुकरण से शरीर और आत्मा के बल को बढ़ानेवाले खान-पानों का सेवन किया करो जिससे तुम्हारी महिमा बढ़े।

हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर मित्र के तुल्य सबका सुखकर्त्ता, सत्य का उपदेश देनेवाला, उत्पन्न करनेवालों का उत्पन्नकर्त्ता, पालन करनेवालों का पालनकर्त्ता, सब कर्मों का देखनेवाला न्यायाधीश, अन्तर्यामी अभिव्याप्त है उसी को जानकर उपासना करो।

जो अग्नि, दूत के तुल्य सब विद्याओं का संग करानेवाला होता है उसका मनुष्य खोज करें, जिससे सब गुणों की प्राप्ति हो।

जो मनुष्य सुन्दर विचार के साथ स्वीकार करने योग्य नित्य पदार्थों को प्राप्त होते और विद्वानों के वचनों के श्रोता होकर, सत्य झूठ का विवेचन कर और असत्य छोड़ सत्य सत्य का ग्रहण करते हैं वे यशस्वी धनाढ्य होते हैं और वही जगत् में सत्कार पाते हैं।

मनुष्यों को चाहिए कि ऐसी वाणी ग्रहण करें और सुनें कि जिससे धन-संग्रह होता है। सत्य की रक्षा की जाती और जीवन बढ़ता है।

जो मनुष्य सम्यक् विचार करते हुए, विद्वानों के संग में प्रीति रखते, यज्ञ के समान परोपकारी, माता-पिता के तुल्य सबकी उन्नति चाहते और संग्रामों को जीतते, न्याय से प्रजा का पालन करते वे सदा सुखी होते हैं।

जो मनुष्य सत्यभाव से परमेश्वर की उपासना करते, न्याययुक्त व्यवहार से धन पाने को चाहते और जो सदा आप्त विद्वानों का संग करते हैं वे कभी दरिद्र नहीं हो सकते।

हे मनुष्यो ! जिसको वज्र के समान दृढ़, अग्नि के समान पवित्र, कृपालु, दर्शनीय शरीर, विद्वान् और धर्मात्मा जानो उसीको इनमें से राजा मानो ।

हे मनुष्यो ! धर्मयुक्त पुरुषार्थ से ही जिस धन को प्राप्त हो उसीको अपना धन मानो, किन्तु अन्याय से उपार्जित धन को अपना मत मानो । ज्ञानियों के मार्ग को, पाखण्डियों के उपदेश से मत दूषित करो, जैसे धर्मयुक्त पुरुषार्थ से धन प्राप्त हो वैसा ही यत्न करो ।

मनुष्यों को चाहिए कि जगदीश्वर की सृष्टि में परम प्रयत्न से मित्रों की उन्नति करें और समस्त सामग्री को धारण करके यथायोग्य आहार और विहार अर्थात् परिश्रम से शरीर की आरोग्यता का विस्तार कर अपना और पराया उपकार करें ।

धन का स्वभाव है जहाँ यह इकट्ठा होता है उन जनों को निद्रालु, आलसी और कर्महीन कर देता है । इससे धन पाकर भी मनुष्य को पुरुषार्थ ही करना चाहिए ।

मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं उनमें पहले तो वे, जो ब्रह्मचर्य, गुरु की सेवा, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, सत्संग, ईश्वर की उपासना और सत्य भाषण आदि दुःखसागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वे जिनसे समुद्रादि जलाशयों के इस पार उस पार जाने-आने को समर्थ हों ।

हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अणु-से-अणु, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, बड़े-से-बड़ा, सनातन, सर्वाधार, सर्वव्यापक, सबको उपासना करने योग्य है उसीका आश्रय सब करें ।

यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में ईंधन और घी डालने से बढ़ता जाता है वैसे ही कामों के उपभोग से काम शान्त कभी नहीं होता किन्तु बढ़ता ही जाता है । इसलिए मनुष्य को विषयासक्त कभी न होना चाहिए ।

वह कुल धन्य ! वह सन्तान बड़ी भाग्यवान् ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों ।

धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे ।

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दर शील-स्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियम पालनयुक्त और जो अभिमान, अपवित्रता से रहित, अन्य की मलिनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जनों के दुःखों को दूर करने से सुभूषित वेद विहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं वे नर और नारी धन्य हैं ।

मनुष्यों को उन लोगों की ही प्रशंसा करनी चाहिए कि जो सबके सुखों की वृद्धि करें ।

जो मनुष्य भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान काल का यथायोग्य उपयोग लेने को जानते हैं उनके पुरुषार्थ से समीप वा दूर के सब कार्य सिद्ध होते हैं । इससे किसी मनुष्य को कभी क्षण-भर भी व्यर्थ काल खोना न चाहिए ।

हे मनुष्यो ! जो विद्वानों में अग्रणी, सूर्य के तुल्य, सत्य न्याय का प्रकाशक, अविद्यादि दोषों से रहित, धर्मात्मा, विद्वान्, पुत्र के तुल्य प्रजा का पालन करता है वही अतिथि के तुल्य सत्कार करने योग्य होता है ।

जो मनुष्य विद्वानों के साथ से विद्वान् होकर सत्य सुनें, सत्य देखें, और जगदीश्वर की स्तुति करें तो वे बहुत अवस्थावाले हों।

मनुष्यों को चाहिए कि असत्य का सुनना, खोटा देखना, झूठी स्तुति, प्रार्थना, प्रशंसा और व्यभिचार कभी न करे।

जो मनुष्य विद्वानों से महान् विद्याओं को ग्रहण करते हैं वे सब काल में वृद्धि को प्राप्त होते हुए पूर्ण लक्ष्मी और दीर्घ आयु को प्राप्त करते हैं।

हे मनुष्यो ! तुम लोगों को चाहिए कि इस जगत् में मनुष्यों का शरीर धारण कर विद्या, उत्तम शिक्षा, अच्छा स्वभाव, धर्म, योगाभ्यास और विज्ञान का सम्यक् ग्रहण करके मुक्ति सुख के लिए प्रयत्न करो। यही मनुष्य जन्म की सफलता है—ऐसा जानो।

मनुष्यों को चाहिए कि जब-जब ईश्वर की प्रार्थना तथा विद्वानों का संग करें तब-तब बुद्धि की ही प्रार्थना वा श्रेष्ठ पुरुषों की चाहना किया करें।

सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना सुनना, परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना। दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना।

जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं कहता तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर गुणी नहीं हो सकता।

मनुष्यों को चाहिए कि सज्जनों के निकट और दुष्टों से दूर रहकर लक्ष्मी की उन्नति करें।

धर्म कुछ भी न करे परन्तु धर्म के नाम से लोगों को ठगे, सर्वदा लोभ से युक्त, कपटी, संसारी मनुष्य के सामने अपनी बड़ाई के गपोड़े मारा करे, प्राणियों का घातक, अन्य से वैर बुद्धि रखनेवाला, सब अच्छे और बुरों से भी मेल रक्खे, उसको विडाल के समान धूर्त्त और नीच ममुष्य समझो।

जो मनुष्य परस्पर की वृद्धि करते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं। किसी को अच्छी कामना नहीं छोड़नी चाहिए।

कभी नास्तिक, लम्पट विश्वासघाती, चोर, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली, आदि दुष्ट मनुष्यों का संग न करे। आप्त जो सत्यवादी धर्मात्मा परोपकार प्रियजन हैं उनका सदा संग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है।

जो विद्वान् लोग अग्नि आदि विद्या के प्रयोगों से मनुष्यों के दारिद्रय का नाश करके ऐश्वर्य के योग को उत्पन्न करते हैं वे ही सब लोगों को सत्कार करने योग्य और सबों में भाग्यशाली होते हैं।

हे बुद्धिमान् मनुष्यो ! जैसे उत्पन्न हुआ पदार्थ जीव को आनन्द देता है, जैसे यथावत् वेद, विद्या और आप्त जन धार्मिक धनाढ्य को विद्वान् करते हैं वैसे उत्पन्न हुई विद्या आत्मा को सुख देती है और शुभ गुण धनाढ्य को बढ़ाते हैं और सत्संग से ही मनुष्य को जीवन प्राप्त होता है।

मनुष्यों को चाहिए कि विद्वानों के शरण को पहुँचकर अविद्या और दारिद्रय का नाश तथा विद्या और लक्ष्मी को उत्पन्न कर निरन्तर आनन्द बढ़ावें।

हे मनुष्यो ! जो कामी, लम्पटजन हों वे तुम लोगों को कदापि वन्दना करने योग्य नहीं, वे हम लोगों को कभी प्राप्त न हों, इसको तुम लोग जानो। और जो धर्मात्मा जन हैं वे वन्दना करने तथा सेवा करने योग्य हैं।

कामातुरों को धर्म, ज्ञान और सत्यविद्या कभी नहीं होती।

वे ही मनुष्य दयालु हैं कि जो अन्य जनों के ऐश्वर्य की वृद्धि की इच्छा करें और ऐश्वर्यवालों को आते हुए देख के प्रसन्न होवें।

जो मनुष्य शरीर और आत्मा के बल को प्रतिदिन बढ़ाते हैं उनके शत्रु जन दूर से ही भागते हैं।

मनुष्यों को चाहिए कि निवास-स्थान, उत्तम जल, स्थल और पवन जहाँ हों उस देश में घर बनाकर वहाँ बसें, सबके सुखों को बढ़ाने के लिए धनादि पदार्थों से अच्छी रक्षा कर सबों को आनन्दित करें।

जो मनुष्य सत्य न्यायवृत्ति से राज्यभक्त हों वे राज्य में सत्कार किये हुए निरन्तर बसें।

यदि सब मनुष्य सत्य के उपदेश करनेवाले हों तो राजा कभी ज्ञानहीन न हो, जब राजा धर्मिष्ठ हो तब सब मनुष्य धर्मात्मा हों, ऐसे परस्पर की रक्षा से सदैव सुख तुम लोग पाओ।

जो मनुष्य जैसे पुत्र पिता की उपासना करता है वैसे राजा की जो सेवा करते हैं वे समस्त ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं।

हे मनुष्यो ! जो यहाँ असत्य बोलते हैं वे अधर्मात्मा हैं और जो सत्य बोलते हैं वे धर्मात्मा हैं ऐसा निश्चय जानो।

जो मनुष्य, वैद्यक-शास्त्र की रीति से उत्पन्न किये हुए सर्वरोग हरने और बुद्धि-बल के देनेवाले, बड़ी-बड़ी औषधियों के रस को पीते हैं वे सुख और ऐश्वर्य पाते हैं।

जिसका धर्म से उत्पन्न हुआ धन है और सुपात्रों के लिए जो दान देता है उसी मनुष्य को उत्तम जानो।

जो मनुष्य पृथिवी से लेकर सूर्यपर्यन्त पदार्थों को जानते हैं वे धनवान् होकर सबको सुखी करें।

हे मनुष्यो ! यदि तुम शक्ति को बढ़ाकर धर्म, कर्म से ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति की अभिलाषा बढ़ाओ तो तुमको पुष्कल ऐश्वर्य प्राप्त हो।

जो मनुष्य पृथिवी आदि से धान्य आदि को प्राप्त होकर विद्या को प्राप्त होते हैं और जो विद्वानों के संग से समस्त विद्या के रहस्यों को ग्रहण करते हैं वे कभी दुःखी नहीं होते हैं।

इस संसार में जो मनुष्य धनाढ्य हों वह निर्धनों को उद्योग कराके निरन्तर पालन करें।

जो मनुष्यों का हितकारी, पिता के समान पालने और उपदेश करनेवाले के समान, पापाचरण से अलग रखनेवाला, सभा में स्थित होकर न्यायकर्त्ता तथा धन, ऐश्वर्य और पराक्रम को निरन्तर बढ़ाता है उसीको सब मनुष्य राजा मानें ।

मनुष्यों को ऐसे शील की धारणा करनी चाहिए जिससे आप्त सज्जन प्रसन्न हों, जिनकी प्रीति से सारे पशु भी, विद्वान् और पितृजन प्रसन्न होकर सुख करनेवाले होवें ।

हे मनुष्यो ! वे ही इस संसार में पशु के तुल्य पामरजन हैं जो स्त्रियों में आसक्त रहते हैं ।

हे मनुष्यो ! जैसे राजा सब में दया का विधान कर, विद्वानों का सत्कार करके अपने राज्य में धनाढ्यों को बसावें वैसे प्रजाजन भी राजा के हितैषी होवें ।

हे मनुष्यो ! जो सब प्रजा को नियम-व्यवस्था में रखता, सूर्यादि प्रजा का प्रकाशक, सबका उपास्य देव है, वही पूजने, सुनने, जानने, विचारने और मानने योग्य है ।

हे मनुष्यो ! जिसके उत्तम कर्म राज्य और विद्वानों को बढ़ाते हैं और राज्य को सुखयुक्त करते हैं उसीका सत्कार सबको करना चाहिए ।

मनुष्यों को चाहिए कि शुभ कार्य आदि के उत्सवों में परस्पर एक-दूसरे का आह्वान करके अन्न और जल आदिकों से सत्कार करें ।

सब मनुष्यों को योग्य है कि सब से शुभ, गुण, सुमति और सुविद्या का ग्रहण करें । दोषों को कदापि ग्रहण न करें ।

हे मनुष्यो ! जिसमें सब दिशाएँ, चारों वेद, वायु, रात्रि आदि काल के अवयव सम्बद्ध हैं उसी समग्र ऐश्वर्य के देनेवाले सूर्य के समान स्वयं प्रकाशित परमात्मा का नित्य ध्यान करो ।

हे मनुष्यो ! उसी का धन सफल है जिसने न्याय से उपार्जन किया धन धर्मयुक्त व्यवहार में व्यय किया होवे ।

जो मनुष्य धार्मिक न्यायाधीशों वा धनाढ्यों से मित्रता करते हैं वे यशस्वी होकर सब दुःख निवारण के लिए सूर्य के तुल्य होते हैं ।

हे मनुष्यो ! जो परमात्मा धन, ऐश्वर्य, प्रशंसनीय विद्वान् और पुरुषार्थियों के लिए राज्य देता है उसकी प्रीतिपूर्वक निरन्तर उपासना किया करो ।

जो मनुष्य एक-दूसरे के लिए सुख देवें जो मिलकर दुष्टों पर क्रोध करें वे पुत्र पौत्रवाले होके मनुष्यों के सुख की उन्नति के लिए समर्थ विद्वान् होने योग्य होते हैं ।

जो मनुष्य धर्मयुक्त कार्यों को करते हैं वे सब के शिरोमणी होते हैं ।

जो मनुष्य अपने तुल्य सबको जानते और विद्वानों के साथ विचार कर सत्यासत्य का निर्णय करते हैं वे दीर्घ अवस्था, पूर्ण विद्याओं, समग्र ऐश्वर्य और विजय को प्राप्त होते हैं ।

जो मनुष्य धनाढ्य हैं वे दरिद्रों का पालन करें तथा जो राजा और प्रजा के पुरुष हैं वे प्रजा के पशुओं को कभी न मारें जिससे प्रजा में सब प्रकार का सुख बढ़े ।

मनुष्य को चाहिए कि जैसा सुख अपने लिए चाहें वैसा ही औरों के लिए भी।

इस जगत् में जो विद्वान् हों वे आप अधर्माचरण से पृथक् होके औरों को भी वैसे करें।

मनुष्यों को योग्य है कि सदा वीर्य बढ़ावें, विद्यादि शुभ गुणों को धारण करें, प्रतिदिन सुख बढ़ावें, जैसे अपना सुख चाहें, वैसे औरों के लिए भी सुख की आकांक्षा किया करें।

हे मनुष्यो ! माँगनेवालों के लिए उदारता से सुवर्णादि दे तथा दुष्टाचारियों का तिरस्कार कर और धार्मिक जनों को सुख देके प्रतिदिन सूर्य तुल्य प्रशासित होओ।

वे ही धर्मात्माजन हैं जो अपने आत्मा के सदृश सम्पूर्ण प्राणियों को मानें।

किसी से भी द्वेष न करें और मित्र के सदृश सबका सदा सत्कार करें।

जो मनुष्य पशुओं की उन्नति और पुष्टि करते हैं वे नाना प्रकार के सुखों को पाते हैं।

जो धनाढ्य हैं वे दरिद्रों का पालन करें तथा जो राजा और प्रजा के पुरुष हैं वे प्रजा के पशुओं को कभी न मारें जिससे प्रजा में सब प्रकार का सुख बढ़े।

मनुष्यों को चाहिए कि भूगर्भ विद्यानुसार बालू, मिट्टी आदि से सुवर्ण आदि धातुओं को निकाल बहुत ऐश्वर्य को बढ़ाके अन्यों का पालन करें।

मनुष्य और बन्दर की आकृति भी बहुत-सी मिलती है। जैसे मनुष्यों के हाथ, पग और नख आदि होते हैं, वैसे ही बन्दरों के भी हैं। इसलिए परमेश्वर ने उपदेश किया है कि जैसे बन्दर मांस कभी नहीं खाते और फलादि खाकर निर्वाह करते हैं, वैसे तुम भी किया करो।

परम धन्य वे मनुष्य हैं कि जो अपने आत्मा के समान सुख में सुख और दुःख में दुःख अन्य मनुष्यों को जानकर धार्मिकता को कदापि नहीं छोड़ते।

देखिये, जब कोई सभ्य मनुष्य विद्वानों की सभा में वा किसी के पास जाकर अपनी योग्यता के अनुसार नम्रतापूर्वक 'नमस्ते' आदि करके बैठके दूसरे की बात ध्यान दे सुन, उसका सिद्धान्त जान निरभिमानी युक्त प्रत्युत्तर करता है, तब सज्जन लोग प्रसन्न होकर उसका सत्कार और जो अण्ड-बण्ड बकता है उसका तिरस्कार करते हैं।

मनुष्य को उचित है कि सब प्रकार का पुरुषार्थ करके अवश्य धार्मिक हों।

देखो ! मांसाहारी मनुष्य में दया आदि उत्तम गुण होते ही नहीं, किन्तु वे स्वार्थवश होकर दूसरे की हानि करके अपना प्रयोजन सिद्ध करने में ही सदा तत्पर रहते हैं।

हे मांसाहारियो ! तुम लोगों को जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का भी मांस छोड़ोगे वा नहीं ?

जिससे सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़े, उसके करने को परोपकार कहता हूँ।

जब मनुष्य धार्मिक होता है तब उसका विश्वास और मान्य शत्रु भी करते हैं और जब अधर्मी होता है तब उसका विश्वास और मान्य मित्र भी नहीं करते।

जो मनुष्य अग्नि, वायु आदि सृष्टिस्थ पदार्थों को जानें तो इनसे वहुत उपकारों को ग्रहण कर सकते हैं।

हे मनुष्यो ! तुम लोग, जैसे सूर्य सब पदार्थों से रस को खींचके, वर्षा के, सब पदार्थों को पुष्ट करता है वैसे विद्या और विनय से सबको पुष्ट करो।

अहोभाग्य उस मनुष्य का है कि जिसका जन्म धार्मिक विद्वान् माता, पिता और आचार्य के सम्वन्ध में हो क्योंकि इन तीनों ही की शिक्षा से मनुष्य उत्तम होता है।

जैसे बन्दरों का दृष्टान्त सांगोपाँग मनुष्यों के साथ घटता है, वैसे अन्य किसी का नहीं। इसलिए मनुष्यों को अति उचित है कि मांस खाना सर्वथा छोड़ देवें।

सज्जन लोगों को मद्य के पीने का नाम भी न लेना चाहिए।

जिन मनुष्यों को राज्य-धन प्राप्त भी है परन्तु विद्या और उत्तम शिक्षा के विना नष्ट-भ्रष्ट हो जाते और श्रेष्ठ विद्या सुशिक्षा से युक्त दरिद्र भी राज्य और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं।

परोपकार के लिए शरीर और मन से अत्यन्त उद्योग और धन से नाना प्रकार के व्यवहार तथा कारखाने खड़े करने, कि जिनमें अनेक मनुष्य कर्म करके अपना-अपना जीवन सुख से व्यतीत किया करें।

जितने मनुष्य से भिन्न जातिस्थ प्राणी हैं उनमें दो प्रकार का स्वभाव है— बलवान् से डरना, निर्बल को डराना और पीड़ा देकर दूसरे का प्राण तक निकालके अपना मतलब साध लेना देखने में आता है। जो मनुष्य ऐसा ही स्वभाव रखता है उसको भी इन्हीं जातियों में गिनना उचित है। परन्तु जो निर्बलों पर दया, उनका उपकार और निर्बलों को पीड़ा देनेवाले अधर्मी बलवानों से किञ्चिनमात्र भी भय-शंका न करके इनको परपीड़ा से हटाके निर्बलों की रक्षा तन, मन और धन से सदा करता है वही मनुष्य-जाति का निजगुण है। क्योंकि जो बुरे कामों के करने में भय और सत्य कामों के करने में किंचित् भी भय-शंका नहीं करते वे ही मनुष्य धन्यवाद के पात्र कहाते हैं।

क्या कोई भी स्थान वा कर्म है कि जिसको आत्मा और परमात्मा न देखता हो, जो मनुष्य इस प्रकार आत्मा और परमात्मा की साक्षी से अनुकूल कर्म करते हैं वे ही धर्मात्मा कहाते हैं।

जो मनुष्य विद्या पढ़ने का सामर्थ्य तो नहीं रखते और वह धर्माचरण किया चाहे तो विद्वानों के संग और अपने आत्मा की पवित्रता और अविरुद्धता से धर्मात्मा अवश्य हो सकता है।

मनुष्यों को भुजा का बल, अपने अंग की पुष्टि, दुष्टों को ताड़ना और न्याय का प्रकाश आदि काम सदा करने चाहिएँ।

हे मनुष्यो ! जो तुम्हारे लिए सुख देवे, दुष्टों को मारे और महान् ऐश्वर्य को बढ़ावे वह तुम लोगों को सत्कार करने योग्य है।

जिस ईश्वर ने मनुष्यों के सुख के लिए धनों, वेदों और खाने-पीने योग्य वस्तुओं को उत्पन्न किया है उसीकी उपासना सब मनुष्यों को सदा करनी चाहिए।

मनुष्यों को चाहिए कि अग्नि की खींचने की, पृथिवी आदि के धारण करने की, पवनों के अच्छे प्रकार चढ़ने की, सूर्य आदि के रोकने की, और मेघों के जल वर्षाने की क्रिया को जानकर सब कामों में सम्यक् निरन्तर उपयुक्त किया करें।

जो लोग अधर्म को छोड़कर सब प्रकार से धर्म का आचरण करते हैं उनके लिए पृथिवी आदि सृष्टि के सब पदार्थ अत्यन्त मंगलकारी होते हैं।

मनुष्य को सबसे यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि-लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ, अन्यथा बुरा समझता हूँ।

सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

□□

पाठकों के विशेष आग्रह पर

वर्षों बाद पुनः प्रकाशित

श्रीमद्दयानन्द चित्रावली

यह पुस्तक स्वामी दयानन्द जी के तपोनिष्ठ जीवन की एक अनूठी झाँकी प्रस्तुत करने के साथ, उनके जीवन की कुछ अविस्मरणीय घटनाओं के इकरंगे और बहुरंगे चित्रों से भी सुसज्जित है।

छपाई मोटे अक्षरों में और बढ़िया कागज़ पर कराई गई है। अधिक प्रतियाँ मँगवाने पर अधिक कमीशन दिया जाएगा।

मूल्य : आठ रुपये मात्र

विश्वरत्न

—सज्जन

कुछ पाने के लिए "नम्रता" पहली शर्त्त है। यह पूरी नहीं करोगे, तो क्या पा सकोगे ? कुछ भी नहीं। अतः नम्रतापूर्वक ही कोई विषय समझा जा सकता है।

—सज्जनामृत

"विश्वरत्न" कौन ? परमोत्कृष्ट रत्न-भरे वेद (ईशाज्ञा) का पूर्ण-पूर्ण जो पालक; सांसारिक, पारमार्थिक—हेतु सत्य-सत्य मार्ग-दर्शक जो !

ऐसा परम पुरुषार्णी पुरुष एक "व्याकरण-सूर्य" महर्षि दयानन्द ही। क्योंकि उन्होंने आयु-भर परम रत्नकोष वेद (ईशवाणी) का रत्न कर्म किया। अन्य कोई भी ध्यक्ति, ऐसा परमरत्न कर्म करने को असमर्थ रहा। असमर्थ रहने का कारण ? अन्यों में महर्षि के-से ब्रह्मचर्य, योगाभ्यास, विद्वत्ता, सत्यता, परोपकारिता आदि सभी दिव्य-गुण बहुत न्यून थे। और फिर उन्होंने (महर्षि) अपने क्रियात्मक प्राकृतिक (ईश-वैदिक) जीवन-द्वारा, विश्व को पूर्णतया लाभान्वित किया तथा अब (मरणोपरान्त) भी उनकी सत्कृतियाँ सत्य ही एवं पूर्ण मार्गदर्शन करते हुए विश्व को लाभान्वित, आनन्दित कर रही हैं—करती ही रहेंगी सदा-सर्वदा ही। ऐसे ही सर्व दिव्यगुणों सत्कर्मों करने-कारण, वे ही निस्सन्देह "महान् विश्वरत्न" हैं। सचमुच ही ऐसे ही परम-महान् सत्पुरुष-युग पुरुष के साथ ही "विश्वरत्न का विशेषण" सर्वथा-सर्वथा ही उपयुक्त है ! अन्यों के भाग्य में, यह कहाँ ? वास्तव में, पवित्र=परमेश्वर ने अपनी पवित्र कल्याणीवाणी वेद का लोप होते देख, पुनः अपने पवित्र वेद का प्रकाश (विश्व-कल्याण) करने निमित, अनुकूल (पात्र) ही अर्थात् पवित्र-पवित्र ही आत्मा "दयानन्द" को प्रकट-प्रेरित-अग्रसर किया। इसीलिए तो इस पवित्र महान् विभूति ने अर्थात् इसी महान् विश्वरत्न ने जीवन-पर्यन्त ही ईशाज्ञा वेदपवित्र का पूर्णतया ही पालन कर, परमोत्कृष्ट रत्न कर्म कर दिखाया। जो कि एक ही "विश्वरत्न" की पूर्ण शुद्ध "परिभाषा" है !

निःसन्देह इन विश्वरत्न का सम्पूर्ण ही विश्व की समस्त ही मनुष्य-जाति पर महान्-महान् ही उपकार है; और फिर उनका बड़ा-बड़ा ही भारी ऋण; जिसे विश्व के प्रत्येक ही मनुष्य को उऋण ही करना होगा ! पूछोगे कैसे ? उत्तर सत्य—उनके दर्शाये सत्य (पवित्र वेद) मार्ग में ही चलने से ! अन्य कोई भी मार्ग नहीं है, कोई भी उपाय नहीं है उऋण होने का; पार भी उतरने का ! देख लें, देख लेना···!

"अच्छा, यह तो माना—"विश्वरत्न" ! कुछ और भी प्रकाश, कि हमारा कल्याण हो जाए।"

हाँ तो, सुदर्शन सुश्रवण कीजिए नम्रता-पूर्वक ही इन्हीं "विश्वरत्न" के ये ही पवित्र व मार्मिक शब्द—

"मैं चाहता हूँ कि जन्म से लेकर मृत्यु-पर्यन्त संसार का प्रत्येक व्यक्ति मुस्कराता रहे। सच्चे अर्थों में मनुष्य को मनुष्य बनाना—मनुष्य-मनुष्य के मध्य की समस्त वर्ग-जाति-नस्ल-रंग-देश आदि की दीवारों को समाप्त करके ईश्वर के पुत्र के नाते भाई-भाई की तरह धरती पर रहना सिखाना चाहता हूँ—अर्थात् आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्थाओं का ऐसा निर्माण कि धरती पर दुःख, कष्ट, क्लेश, युद्ध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष का लेश भी शेष न रह जाए—सुख, शान्ति और आनन्द का साम्राज्य स्थापित हो जाए।"

"महाराज! कोई ऐसी विधि भी है, जिससे मुझ-जैसे अज्ञानी जीव का भी कल्याण हो जाये।" खन्दोई (उ० प्र०) में एक दिवस एक धुनिया ने महर्षि से सविनय पूछा। महर्षि जी ने उसे "ओ३म्" का जप करने का आदेश दिया और कहा कि व्यवहार में सच्चे रहो, जितनी रुई कोई तुम्हें धुनने को दे उसे उतनी ही रुई धुनकर लौटा दो। इसी (ओ३म्-जप तथा शुद्ध व्यवहार) से तुम्हारा कल्याण हो जायेगा।"

सोरों (उ० प्र०) में एक दिन साधु मायाराम ने कहा—"दयानन्दजी! आप खण्डन-मण्डन के झमेले में क्यों पड़ गए। हमारी तरह आनन्द से खा-पीकर सुख में रहा करो। क्यों बैर बढ़ाते हो?" महर्षिजी ने उत्तर दिया—"हम तो ब्रह्मानन्द में रहते हैं और जो आनन्द वेद-प्रचार में आता है, वह तो तुलनातीत है।"

फर्रूखाबाद में एक साधु ने महर्षि से प्रश्न किया—'मनुष्य को क्या करना चाहिए?" महर्षिजी ने उत्तर दिया—"जैसे ईश्वर दयालु है, मनुष्य को भी सब पर दया करनी चाहिए। जैसे ईश्वर सत्य है, मनुष्य को भी सत्य मानना, बोलना और करना चाहिए।"

एक बार प्रयाग में गंगा-तट पर एक बहुत वृद्ध महात्मा ने महर्षिजी से मिलते समय कहा—"बच्चा! यदि आप पहले के ही निवृत्ति-मार्ग पर स्थित रहते, परोपकार के झगड़े में न पड़ते, तो आपकी इसी जन्म में मुक्ति हो जाती। अब तो आपको एक और जन्म धारण करना पड़ेगा।" महर्षिजी ने कहा—"महात्मन्! अब मुझे अपनी मुक्ति का कुछ भी ध्यान नहीं है। जिन लाखों-मनुष्यों की मुक्ति की चिन्ता मेरे चित्त को चलायमान कर रही है, उनकी मुक्ति हो जाये; मुझे भले ही कई जन्म क्यों न धारण करने पड़ें। दुःखों के त्रास से, दीन दशा से और दुर्बल अवस्था से परमपिता के पुत्रों को मुक्ति दिलाते, मैं आप-ही-आप मुक्त हो जाऊँगा।" इत्यादि अनेक-अनेक ही रत्न उपदेश हैं इन विश्वरत्न महानुभाव के। कहाँ तक अंकित हों। स्थान व समय-अभाव से यहीं समाप्त-पूर्ति की जाती है—नीचे उपदेशों का सार देकर—

"सर्वसत्य का प्रसार कर सबको ऐक्य मत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीति युक्त कराके सबसे सबको सुख-लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमपिता की कृपा, सहाय और आप जनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे, जिससे सब लोग सहज से धर्मार्थ काम-मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें। यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।"—विश्वरत्न महर्षि दयानन्द।

राजा प्रजा दोनों सुखी ?

"सज्जन" सम्पादक—"सारे संसार के कल्याणार्थ"

राजा व प्रजा दोनों सुखी सदा कैसे हो सकते हैं ? ईशाज्ञा वेद-पवित्र, जब सुदर्शन वा सुश्रवण किये जाते हैं ! पवित्र वेद, पवित्र (उन्नत-सुखी) ही होने के, तथा अन्य भी प्रत्येक विषय के सत्यमार्ग दर्शन, आदि सृष्टि से ही करा रहे हैं !

लीजिये, यह बात सर्वविदित है कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम तथा उनकी प्रजा दोनों अत्यन्त सुखी थे ! कारण ? बस उनका पारस्परिक व्यवहार, वेद-अनुसार—"राजा प्रजा-धर्म कर्त्तव्य-पालन, रक्षण आदि" होता था ।

और भी देखिये—राजा भोज, राजा नौशेरवाँ, अशोक महान्, काश्मीर नरेश रणवीर सिंह, महाराजा रणजीत सिंह आदि, वेदानुसार सादा-तपस्वी-त्यागी रह, अपनी प्रजाओं का खूब (पुत्र समान) ध्यान रखते थे । फलस्वरूप वे स्वयं एवं उनकी प्रजाएँ सभी सन्तुष्ट व सुखी थे ।

उपरोक्त सब राजाओं का आचरण सदा वेदानुसार रहा—यथा—"यदि राजा धर्मपूर्वक प्रजा का पालन न करे तो जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, उसी प्रकार बलवान् लोग मदान्ध होकर निर्बल का सब-कुछ छीन लिया करते हैं" तथा "जिस देश में भयानक काले रंग का एवं लाल-लाल आँखोंवाला किन्तु धर्म पर आधारित राजदण्ड (राजा का भय) विचरण करता रहता है, वहाँ अपराधी लोग नहीं रहा करते ।"—महाभारत । "जब तक दार्शनिक लोग शासक नहीं बन जाते, या जब तक शासक लोग दर्शनशास्त्र नहीं पढ़ लेते, तब तक आदमी की मुसीबतों का अन्त नहीं हो सकता ।"—अफ़लातून । अथर्वोपदेश—"राष्ट्र तभी बलशाली और ओजस्वी होगा जब राष्ट्र के कर्णधार सुख-कल्याण को जाननेवाले, ज्ञानी पुरुषों के सदृश सबका हित चाहनेवाले और तपस्वी तथा उत्तम लक्ष्य की सिद्धि के लिए पूर्णतः दीक्षित हो इस मार्ग का अवलम्बन करेंगे । ऐसे राष्ट्रनेता के सम्मुख विश्व की दिव्य-शक्तियाँ स्वयं समीप आ झुक जाती हैं ।—अथर्ववेद १९।४१।।

अतएव पवित्र वेद, भगवान् राम आदि (सब उपरोक्त) से, शिक्षा-प्रेरणा ग्रहण करते हुए निश्चय ही परम यश, परम सुख, परम शान्ति आदि सब ही दर्शन में आ जावें । अर्थात् ऐसे ही (सर्वोपरोक्त-अनुसार) आचरण से, राजा प्रजा दोनों ही अवश्य सदा सुखी हो सकते व रह सकते हैं ! अन्य कोई मार्ग नहीं है, कि राजा प्रजाएँ सब, सदा सुखी हो सकें व रह सकें ।

वैदिक स्वराज्य

—पं० सुरेशचन्द्र जी वेदालंकार

ब्राह्मण ग्रन्थों में आठ प्रकार के राज्यों का उल्लेख किया गया है। ऐतरेय-ब्राह्मण अध्याय आठ में लिखा है—

"स्वस्ति। साम्राज्यं, भौज्यं, स्वराज्यं, वैराज्यं, पारमेष्ठ्यं राज्यं, महाराज्यं, आधिपत्यममं समन्तपर्यायी स्यात्, सार्वभौमः सार्वामुषः आन्ताद् आपरार्द्धात्, पृथिव्यै समुद्रपर्यान्नाया एकराड् इति।"

इन आठ राज्यों का उल्लेख मिलता है। इन राज्यों के विषय में हम इस प्रकार समझ सकते हैं।

(१) साम्राज्यम्—साम्राज्य से तात्पर्य यह था कि जब समीपस्थ किसी प्रदेश में अत्याचार या अन्याय बहुत अधिक बढ़ जाता था और वहाँ की जनता अपनी पीड़ा और कष्ट को शक्तिशाली व्यक्ति के सामने प्रगट करने में असमर्थ समझती थी उस दशा में राजा दूसरे देश पर आक्रमण करके वहाँ के किसी योग्यतम पुरुष को राज्य सौंपकर उसे माण्डलिक बना लेते थे। वहाँ अपना विधान भी लागू कर देते थे। आजकल के राजाओं की भाँति स्वयं शासन नहीं करते थे। बस इतना ही वैदिककाल के लोगों का साम्राज्य था। वे न तो पराजित राज्य को लूटते थे, न आग लगाते थे। रामचन्द्र जी ने अत्याचारी राजा रावण को पराजित किया था; परन्तु लंका का लूटना और आग लगाना तो दूर रहे, लंका के भीतर तक वे न आए और विभीषण को माण्डलिक राजा बनाकर और उसे राज्य देकर वापस आ गए।

(२) भौज्य—प्राकृतिक सीमाओं से घिरे हुए प्रदेश का नाम भौज्य था। भौज्य के अनुसार शासक प्राकृतिक सीमा से घिरे हुए देशे के ऊपर ही शासक राज्य करते थे, दूसरों पर आक्रमण नहीं करते थे। ब्रिटेन भौज्य का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त भारत भी पहले भौज्य ही था।

(३) तीसरा स्वाराज्य या स्वराज्य था। स्वराज्य की महिमा बहुत अधिक मानी गई थी। अथर्ववेद १०।७।३१ मन्त्र में स्वराज्य के विषय में कहा गया है—

यदजः प्रथमं सबभूय स ह तत् स्वराज्यमियाय।
यस्मान्नान्यत् परममस्ति भूतम्।

(अजः) हलचल करनेवाला (प्रथमं) सबसे प्रथम (यत्) जब (संबभूव) मिल-जुलकर प्रकट होता है (तत्) तब (सः ह) वही (स्वराज्यं) स्वराज्य को (इयाय) प्राप्त करता है, (यस्मात्) जिस स्वराज्य से (अन्यत्) दूसरा कोई (परं) श्रेष्ठ (भूतं न अस्मि) हुआ नहीं है।

वेद का यह मन्त्र स्वराज्य की महिमा बता रहा है। 'अज' शब्द का अर्थ हलचल करनेवाला नेता, संचालक, चलानेवाला आदि है। इसका तात्पर्य यह है कि स्वराज्य का नेता, अर्थात् राजा वह व्यक्ति होना चाहिए जो आगे बढ़ने के लिए हलचल करता है, जो अन्यों का नेता होकर उनको आगे बढ़ाता है। ऋग्वेद ५।६६।६ मन्त्र से 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है।

आ यद् वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्टे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये।

(मित्र) हे मित्रता रखनेवालो अर्थात् जिनमें विरोध नहीं है ऐसे सज्जनो! (ईय चक्षसौ) जिनकी दृष्टि विशाल हुई है ऐसे सज्जनो! तुम सब तथा (वयं) हम सब (सूरयः) विद्वान् मिलकर (व्यचिष्टे) विस्तृत तथा (बहुपाय्ये) अनेकों की सहायता से जिसका पालन होता है ऐसे (स्वराज्ये) स्वराज्य में (आयतेमहि) स्वराज्य के लिए भिन्न दृष्टिवाले लोग, विस्तृत दृष्टिवाले लोग और ज्ञानी लोग ये तीन प्रकार के लोग योग्य होते हैं अर्थात् आपस में झगड़नेवाले, संकुचित दृष्टिवाले और अज्ञानी लोग स्वराज्य चलाने में समर्थ नहीं हो सकते। ऋग्वेद १।८०।१ में कहा गया है—

इत्था हि सोम इन्यदे ब्रह्मा चकार वर्धनम्। शविष्ट वज्रिन्तोजसा पृथिव्या निःशशा अहिमर्चन्‍तनु स्वराज्यम्।

हे (शविष्ठ वज्रिन) बलवान् शस्त्रधारी (इत्था) इस प्रकार (मदे सोमे हि) आनन्दकारक, शान्तिकारक सोम के विषय में ही (ब्रह्मा) ज्ञानी (इत्) निःसन्देह (वर्धनं चकार) संवर्धन करता है। तू (ओजसा) शक्ति के साथ (पृथिव्या अहिम्) भूमि के शत्रु को (निःशश) दण्ड दो और (स्वराज्यं) स्वराज्य का (धनु अर्चन्) योग्य पूजा करनेवाला बन।

अर्थात् स्वराज्य में ज्ञानी सुविचारों का संवर्धन करते हैं। शस्त्रधर अथवा बलवान् शत्रुओं का प्रतिकार करते हैं और सब मिलकर स्वराज्य शासन का महत्त्व फैलाते हैं।

वास्तव में स्वराज्य आत्मिक शक्ति के विकास पर बल देता है। यम नियम का पालन करना, निष्काम सेवा करना और प्रजा को सुख, सुविधा और उत्तम विचार देना यह स्वराज्य का लक्ष्य था। इस स्वराज्य में अधिकार और राज्य-प्रसार की वासना नहीं थी। चोरबाजारी, भ्रष्टाचार, घूसखोरी आदि का नाम तक न था।

(४) चौथे वैराज्य में राजा नहीं रहता था। सारी जाति मिलकर नियम बनाती थी और शासन करती थी। यह शासन एक विस्तृत देश में सम्भव न था। यह एक सीमित क्षेत्र में ही सम्भव था। इसमें कोई विशेष पुरुष शासनभार नहीं संभालता था।

(५) पाँचवा पारमेष्ठ्य राज्य था। इसका तात्पर्य परमेश्वर राज्य से है जिसे आजकल की भाषा में हम रामराज्य कह सकते हैं। इसके अनुसार सभी व्यक्ति परमेश्वर की सन्तान समझे जाते थे और परमेश्वर की सन्तान होने के कारण सबका पारस्परिक सम्बन्ध एवं अधिकार समान माने जाते थे। शासक भी प्रभु को सर्वत्र समझकर न्याय और धर्म से शासन करना चाहता था। यही हमारे शासन का लक्ष्य था।

(६) महाराज्य छठा राज्य है। यह आजकल के संघ राज्यों की भाँति होता था। केन्द्रीय राज्य अत्यन्त शक्तिशाली होता था। सभी सम्मिलित होकर शासन विधान बनाते थे। सभी छोटे-बड़े राज्यों के अधिकार समान थे।

(७) सातवाँ आधिपत्यमय राज्य था। अधिपति ही इसमें सर्वेसर्वा था। उसीके बनाए नियम इसमें चलते थे। राज्य के अधिकारियों का इसमें प्रभुत्व था। परन्तु, आजकल की दुनिया में फैली नौकरशाही या 'ब्यूरोक्रेसी' से यह राज्य भिन्न था।

(८) आठवाँ राज्य 'समन्त पर्यायी' कहा जाता था। 'सामन्त' माण्डलिक राजाओं को कहते थे। किसी बड़े शासक के अधीन माण्डलिक होते हैं। कई सूर्यवंशी शासकों के अधीन सामन्त राज्य थे। परन्तु मध्ययुगीन सामन्त राज्यों से वे भिन्न थे।

इन आठों राज्यों के रहते हुए भी वैदिक आर्यों का प्रसिद्ध और प्रिय राज्य 'जनराज्य' या 'गणराज्य' ही था। इसे 'जानराज्य' भी कहा जाता था। यह राज्य सर्वसम्मति या बहुमत से संचालित राज्य था।

एक नवीन प्रकाशन

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की शताब्दी के अवसर पर महर्षि के ग्रन्थों के आधार पर संकलित

सत्यार्थ-सरस्वती

[सत्यार्थ प्रकाश का भाष्य]

इसके संकलनकर्त्ता हैं पं० मदनमोहन जी विद्यासागर

ग्रन्थ में १४ प्रवाह हैं। आरम्भ के १० प्रवाह बहुत विस्तृत हैं। सत्यार्थप्रकाश के साथ ही अनेक बातों को महर्षि के अन्य ग्रन्थों से लेकर उस-उस विषय के साथ ग्रथित कर दिया गया है। अनेक स्थानों पर नवीन प्रश्नोत्तर भी जोड़ दिये गये हैं; कठिन स्थलों को सरल बना दिया गया है। जो विषय यत्र-तत्र फैले हुए थे, उन्हें एक स्थान पर रख दिया गया है। अन्त में 'आर्योद्देश्य-रत्नमाला' भी संग्रहीत कर दी गई है। पुस्तक का कागज और छपाई उत्तम है। संकलन में परिश्रम किया गया है।

सजिल्द पुस्तक का मूल्य है २५ रुपये।

पुस्तक सीमित संख्या में छपी है। तुरन्त आदेश भेजें।

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

लेखक : वेदमार्तण्ड आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति। प्रकाशक : गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली। पृ० सं० २४८। मूल्य १५·००

सुधी व्याख्याता ने ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक की मानस-भूमि को उर्वरा बनाने के लिए एक विस्तृत भूमिका दी है। मुख्य ग्रन्थभाग को कई गुच्छकों में बाँटा है जिससे सारे ग्रन्थ में एक सुसंगति और क्रम दृष्टिगोचर होता है। वेद, ईश्वर, सृष्टि, उपासना, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और राष्ट्र-निर्माण खण्ड के साथ ही प्रकीर्ण खण्ड भी संकलित है। इहलोक-परलोक, भुक्ति और मुक्ति, समष्टि और व्यष्टि, व्यक्ति और राष्ट्र, इन सबके प्रति सन्तुलित दृष्टिकोण जो वेद का प्रतिपाद्य है, उसके पोषक विविध मन्त्र सूक्त-अन्वयार्थ और सरल-स्पष्ट भाषा में व्याख्या-सहित मननशील स्वाध्याय-प्रेमियों के लिए प्रस्तुत है।

जो लोग वेदों के नाम से बिदकते हैं, वे भी यदि इस ग्रन्थ को एक बार पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो यह और ऐसे अन्य ग्रन्थ उनके नित्य स्वाध्याय की सामग्री बन जाएँगे। यह बात नये अध्येता के सामने भी स्पष्ट हो जाएगी कि वेदों में हमारे दैनन्दिन जीवन को सँवारने की प्रभूत सामग्री विद्यमान है। इसमें आपको पद, अर्थ, रस और संगीत का चमत्कार भी दृष्टिगोचर होगा। 'देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति' की एक स्पष्ट झलक आपको इन मन्त्रों में मिलेगी।

प्रबुद्ध लेखक ने मन्त्रों के चयन और गुच्छकों के रूप में उनके विन्यास में चतुर मालाकार की कला-दृष्टि का परिचय दिया है, लोकमंगल की भावना और आध्यात्मिक चेतना के सतत विकास पर लेखक की पैनी दृष्टि स्थिर रही है। सच्चिदानन्द के सान्निध्य में वास चाहने वालों के लिए सुवर्ण, सुरूप और सुवासयुक्त ये पुष्प-गुच्छ पाथेय रूप हैं।

—सन्तराम वत्स्य

वैदिक सम्पदा [पं० वीरसेन वेदश्रमी]

'वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है' तथा 'वेद में आधुनिक सभी समस्याओं का समाधान है' की व्याख्या में लिखा गया यह विशद ग्रन्थ वेद के सभी विद्वानों द्वारा सराहा गया है।

पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड लिखते हैं—वैदिक समाजशास्त्र, वैदिक समाजवाद में पारिवारिक आदर्श, गृहस्थ-निर्माण, आदर्शवाद, सामाजिक समस्याएँ, वेद में यातायात, वेद में चिकित्सा विज्ञान, वैदिक अर्थशास्त्र, वैदिक गणित, विज्ञान, रेखागणित, शासन (राजनीति), शिक्षा विज्ञान, वेदों में भाषा विज्ञान, ऋतु विज्ञान, भूतत्त्व विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, अग्नि विज्ञान, विमान विज्ञान, जल विज्ञान, वृष्टिविज्ञान, धर्म; इस प्रकार विभाजन करते हुए वेदों के आधार पर इन पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

श्रीमद्वाल्मीकि रामायण

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान्, निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न, रामायण के समालोचक एवं मर्मज्ञ

लेखक—स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

- यदि आप अपने प्राचीन गौरवमय इतिहास की झाँकी देखना चाहते हैं,
- यदि आप मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन का अध्ययन करना चाहते हैं,
- यदि आप प्राचीन राज्यव्यवस्था का स्वरूप देखना चाहते हैं,
- यदि आप रामायण के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्त धारणाओं का समाधान पाना चाहते हैं,
- यदि आप भ्रातृ-प्रेम, नारी-गौरव, आदर्श सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श राज्य, आदर्श पुत्र के स्वरूपों का अवलोकन करना चाहते हैं,
- यदि आप रामायण का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहते हैं,

तो यह रामायण पढ़ जाइए। सैंकड़ों टिप्पणियों से समलंकृत सम्पूर्ण रामायण ६००० श्लोकों में समाप्त। मूल्य : ४० रुपये

आचार्य शिवपूजनसिंह कुशवाहा लिखते हैं—

"सम्पादन और टीका-टिप्पणी लौह-लेखनीधारी स्वामी जगदीश्वरानन्द द्वारा हुई है। पं० आर्यमुनि, पं० राजाराम शास्त्री, पं० चन्द्रमणि विद्यालंकार ने भी रामायण की टीका क्षेपक-रहित प्रकाशित की थीं। उनमें पादटिप्पणियों का अभाव था। इस टीका में टिप्पणियों की भरमार है जिनसे विषय का प्रतिपादन भलीभाँति हो जाता है।···स्वामी जगदीश्वरानन्द जी का परिश्रम, स्वाध्याय, विद्वत्ता प्रत्येक अध्याय में दृष्टिगोचर होते हैं।"

श्री अमर स्वामी जी महाराज (भूतपूर्व ठा० अमरसिंह जी महाराज) लिखते हैं—

"रामायण को देखकर ऐसा लगा कि इसमें कोई आवश्यक बात छूटी नहीं तथा कोई अनावश्यक और अनर्गल बात रहने नहीं पाई। टिप्पणियों तथा शंकाओं के समाधानों ने तो सोने में सुगन्ध उत्पन्न कर दी है।"

महात्मा नारायण स्वामी जी की अनुपम पुस्तक

कर्त्तव्य-दर्पण

छपकर तैयार, पूरी कपड़े की जिल्द, मूल्य ४·००

सत्यार्थप्रकाश

कई महत्त्वपूर्ण परिशिष्टों से युक्त एक संग्रहणीय संस्करण

आठ परिशिष्ट

१. प्रथम समुल्लास में आए ईश्वर के १०८ नामों की अकारादि क्रम से सूची।
२. सत्यार्थप्रकाश में व्याख्यात पारिभाषिक शब्दों की अकारादि क्रम से सूची।
३. सत्यार्थप्रकाश में निर्दिष्ट व्यक्तियों, स्थानादि की अकारादि क्रम से सूची।
४. सत्यार्थप्रकाश के १३वें समुल्लास में भाषा में निर्दिष्ट विभिन्न शब्दों का रोमन लिपि में निर्देश (जैसे हारून का Haron)।
५. चतुर्दश समुल्लास में उद्धृत कुरान की आयतों के अनुवाद के सम्बन्ध में पं० रामचन्द्र देहलवी का वक्तव्य।
६. सत्यार्थप्रकाश की आधार-ग्रन्थ-सूची।
७. सत्यार्थप्रकाश पर उठी शंकाओं का समाधान चतुर्वेद भाष्यकार पं० जयदेव विद्यालंकार द्वारा।
८. अन्त में अकारादि क्रम से प्रमाण-सूची।

विशेषताएँ

१. यह शताब्दी-संस्करण पं० भगवद्दत्त रिसर्च-स्कॉलर द्वारा महर्षि की मूल प्रति से सम्पादित है। सत्यार्थप्रकाश के इतिहास पर पं० भगवद्दत्त जी की एक विवेचनापूर्ण भूमिका इस शताब्दी-संस्करण में दी गई है।
२. प्रत्येक पृष्ठ के ऊपर उस पृष्ठ में आ रहे विषय का उल्लेख।
३. अनुच्छेदों (पैराग्राफ) पर क्रम-संख्या।
४. आरम्भ में एक विस्तृत विषय-सूची समुल्लास-अनुसार।

वढ़िया कागज। १६ प्वाइँट के मोनो टाइप में छपा। सुन्दर नयनाभिराम छपाई। मशीन द्वारा मजवूत जुजवन्दी की सिलाई। सम्पूर्ण कपड़े की जिल्द। स्वर्णाक्षरों में पुस्तक का नाम। मूल्य रु० २५·००।

सत्यार्थप्रकाश के इस संस्करण का आर्ट पेपर पर छपा राज-संस्करण भी तैयार है। बहुत ही आकर्षक प्लास्टिक कवर के साथ कपड़े की सुनहरी जिल्द।
विवाह आदि के अवसर पर भेंट देने योग्य। मूल्य १०१·००

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-११०००६

गोविन्दराम हासानन्द, ४४०८ नई सड़क, दिल्ली-६

नये प्रकाशन

षड्दर्शन	स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती	३५.००
सत्यार्थ सरस्वती	पं० मदनमोहन विद्यासागर	२५.००
वेदभगवान बोले	प्रो० विष्णु दयाल (मोरीशस)	६.००
ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (सरल अध्ययन)	विश्वनाथ विद्यालंकार	२.००

पं० भगवद्दत्त रिसर्चस्कॉलर द्वारा सम्पादित

सत्यार्थप्रकाश (आठ परिशिष्ट, मोटे अक्षर) सजिल्द		२५.००
सत्यार्थप्रकाश (आर्ट पेपर पर छपी सुनहरी जिल्द, राज संस्करण)		१०१.००
दयानन्द चित्रावली	रामगोपाल विद्यालंकार	८.००

म० आनन्द स्वामी कृत पुस्तकें		स्वामी जगदीश्वरानन्द कृत	
दुनिया में रहना किस तरह	३.५०	वाल्मीकि रामायण	४०.००
तत्त्वज्ञान	८.००	शिवसंकल्प	४.००
मानव और मानवता	१०.००	ब्रह्मचर्य गौरव	३.००
प्रभुमिलन की राह	८.००	वेदसौरभ (संक्षिप्त)	४.००
घोर घने जंगल में	८.००	वेदसौरभ	१.००
प्रभुभक्ति	३.००	घरेलू ओषधियाँ	३.५०
महामन्त्र	३.००	वैदिक विवाहपद्धति	२.५०
आनन्द गायत्री-कथा	२.००	विद्यार्थियों की दिनचर्या	३.००
उपनिषदों का सन्देश	६.००	वैदिक उदात्त भावनाएँ	३.००
एक ही रास्ता	३.००	ऋग्वेदशतक	२.००
मानव-जीवन-गाथा	४.००	यजुर्वेदशतक	२.००
शंकर और दयानन्द	२.००	सामवेदशतक	२.००
सुखी गृहस्थ	२.००	अथर्ववेदशतक	२.००
सत्यनारायणव्रत-कथा	२.००	कुछ करो कुछ बनो	३.००
प्रभु-दर्शन	४.००	चतुर्वेद शतकम्	८.००
दो रास्ते	४.००	मर्यादा पुरुषोत्तम राम	३.००
यह धन किसका है ?	६.००	दिव्य दयानन्द	३.००
भक्त और भगवान्	४.००	सत्यनारायणव्रतकथा	०.५०
बोध कथाएँ	४.००	सामवेद सूक्ति-सुधा	३.००
Anand Gayatri Discourses	३.००	यजुर्वेद-सूक्ति-सुधा	३.००

पं० वीरसेन वेदश्रमी

वैदिक सम्पदा २०.००

पं० सत्यकाम विद्यालंकार

वैदिक वन्दन ७.००

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

दयानन्द प्रकाश (जीवन-चरित्र) २५.००

पं० रामचन्द्र देहलवी कृत

रामचन्द्र देहलवी लेखावली ७.००
वेद व्यावहारिक है १.००
शंका-समाधान १.००
पूजा क्या क्यों कैसे ? १.००
ईश्वर ने दुनिया क्यों बनाई १.००
वेद का इस्लाम पर प्रभाव १.००

भजन पुस्तकें

गीत भण्डार **नन्दलाल वानप्रस्थी** ४.००
गीत श्रद्धांजलि १.५०

श्री रामशरण वासिष्ठ

पशुहिंसा विषयक पाश्चात्य विद्वानों की समालोचना १.००
वेदों में मूल प्रकृति विज्ञान १.५०
वेदार्थ विज्ञान १.००
वेद और आत्मा २.००

म० नारायण स्वामी

प्राणायामविधि १.००
कर्त्तव्य-दर्पण ४.००

पं० रामगोपाल विद्यालंकार

दयानन्द चित्रावली ८.००

स्वामी अनुभवानन्द सरस्वती

आर्यसमाज का परिचय ,, १.००

स्वामी दर्शनानन्द

कथा-पच्चीसी २.५०
बालशिक्षा-धर्मशिक्षा ०.६०

महर्षि दयानन्द सरस्वती

सत्यार्थप्रकाश २५.००
आर्योद्देश्यरत्नमाला ०.२५
व्यवहारभानु १.००

नित्यानन्द वेदालंकार

पूर्व और पश्चिम ७.५०
सु-राज्य की रूपरेखा ५.००

पं० सत्यभूषण वेदालंकार एम० ए०

नैतिक शिक्षा प्रथम भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा द्वितीय भाग ०.६०
नैतिक शिक्षा तृतीय भाग १.००
नैतिक शिक्षा चतुर्थ भाग १.००
नैतिक शिक्षा पंचम भाग १.००
नैतिक शिक्षा षष्ठ भाग १.२५
नैतिक शिक्षा सप्तम भाग १.५०
नैतिक शिक्षा अष्टम भाग १.५०
नैतिक शिक्षा नवम भाग २.००
नैतिक शिक्षा दशम भाग १.५०

जीवनोपयोगी

स्वेट मार्डन

आप क्या नहीं कर सकते ? २.००
चिन्तामुक्त कैसे हों ? २.००
हँसते-हँसते कैसे जियें ? २.००
जो चाहें सो कैसे पायें ? २.००
अपना खर्च कैसे घटायें ? २.००
अवसर को पहचानो ! २.००
अपने आपको पहचानिए ! २.००
आप सफल कैसे हों ? २.००
उन्नति कैसे करें ? २.००
धनकुबेर कैसे बनें ? २.००
अमर भारती **सीताराम सहगल** ३.००
महाभारत **मनहर चौहान** ३.००
रामायण ३.००

कर्मकाण्ड की पुस्तकें

वैदिक सन्ध्या २० पैसे सैंकड़ा १५.००
आर्य सतसंग [illegible] (बड़ा) [illegible]०० पैसे ,, ७५.००
वैदिक यज्ञ प्रकाश ७५ पैसे ,, ५५.००
पंचयज्ञ प्रकाशिका २.५०
सन्ध्या-हवन-दर्पण (उर्दू) २.००

प्रकाशक—मुद्रक, विजयकुमार ने सम्पादित कर अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-३२ में मुद्रित करा वेदप्रकाश कार्यालय, ४४०८ नई सड़क, से प्रसारित किया।